वा. मि. बुयानोव

प्राथमिक उपचार

В. М. Буянов

ПЕРВАЯ МЕДИЦИНСКАЯ ПОМОЩЬ

Издательство «Медицина», Москва

विषय-सूची

भूमिका

निर्विलंब आयुरी सहायता का संगठन यदि आदर्शतम हो, तब भी आकस्मिक बीमारी या दुर्घटना की स्थिति में वह देर कर जा सकती है, इसीलिये यदि निकट स्थित लोग ठीक समय पर उचित प्राथमिक उपचार करने में समर्थ होंगे, तो आक्रांत व्यक्ति की आगे चिकित्सा से जान बचाने की संभावना बढ़ जाएगी। इसीलिये प्राथमिक आयुरी सहायता या प्राथमिक उपचार के नियमों और विधियों से हर आदमी को अवगत होना चाहिए।

प्राथमिक उपचार की मूल अवधारणाएं. प्राथमिक उपचार उन निर्विलंब आयुरी युक्तियों के संकुल को कहते हैं, जो आकस्मिक रोग या दुर्घटना से ग्रस्त व्यक्ति की जान बचाने के लिए वहीं घटना-स्थल पर तथा उसे किसी आयुर-प्रतिष्ठान तक पहुँचाने के दौरान अपनायी जाती हैं।

प्राथमिक उपचार कई प्रकार का हो सकता है; उपचारकर्ता कौन है, इस दृष्टि से प्राथमिक उपचार के निम्न भेद हैं:

1) अकुशल प्राथमिक उपचार ऐसे व्यक्ति से प्राप्त होता है, जिसके पास न तो आयुर का आवश्यक ज्ञान होता है, न आवश्यक दवाएं और साधन ही ;

2) कुशल प्राथमिक उपचार (डाक्टर से पहले) विशेष प्रशिक्षण प्राप्त लोग ही दे पाते हैं, जैसे – कंपाउंडर, नर्स, दंत-तकनीशियन, आदि ;

3) डाक्टर द्वारा प्राथमिक उपचार कोई डाक्टर ही करता है, जिसके पास आवश्यक उपकरण, दवाएं, रक्त-प्रतिस्थापक (रक्त की जगह काम आने लायक द्रव) आदि मौजूद रहते हैं।

प्राथमिक उपचार की आवश्यकता उन लोगों को होती है, जिनके साथ कोई दुर्घटना घट जाती है या जो आकस्मिक रूप से किसी गंभीर घातक रोग का शिकार हो जाते हैं। (इन्हें आहत कहेंगे)

दुर्घटना आदमी के अंगों की किसी क्षति अथवा उनके कार्यों में किसी गड़बड़ी को कहते हैं, जो परिवेशी घटकों की आकस्मिक अभिक्रिया से उत्पन्न होती है।

दुर्घटनाएं अक्सर ऐसी परिस्थितियों में घटती हैं, जब निर्विलंब आयुरी सेवा-केंद्र को शीघ्रता से खबर नहीं भेजी जा सकती। ऐसी स्थिति में प्राथमिक उपचार अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता है, जो डाक्टर के आने या आहत को अस्पताल पहुँचाने से पहले किया जाता है।

दुर्घटना होने पर आहत, उसके संबंधी, पड़ोसी या संयोगवश उसके समीप स्थित लोग किसी निकटतम आयुरी प्रतिष्ठान-(दवा की दुकान, दंत-चिकित्सक, बालवाड़ी,

बहुमारीलोचनी केंद्र आदि)–से सहायता पहुँचाने का अनुरोध करते हैं। इन प्रतिष्ठानों के आयुरी कर्मचारी निर्विलंब सहायता पहुँचाने के लिये कानून से बाध्य होते हैं।

यही कारण है कि प्रयोगशाला, दंतशाला आदि के कर्मचारियों तथा अन्य आयुरी कर्मचारियों के प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम में "प्राथमिक उपचार" एक अनिवार्य विषय है। दुर्घटना या आकस्मिक रोग से आक्रांत व्यक्ति की सहायता करने के लिए सभी आयुरी कर्मचारियों में इतनी क्षमता अवश्य होनी चाहिए कि वे विभिन्न प्रकार की क्षतियों तथा आकस्मिक रोगों के लक्षण पहचान सकें और यह मूल्यांकन कर सकें कि क्षति अथवा रोगावस्था आहत के लिये किस हद तक खतरनाक (घातक) है।

डाक्टर के आने से पहले प्राथमिक उपचार तीन चरणों में संपन्न होता है:

1) बाह्य क्षतिकारी घटकों–करेंट, अति उच्च या निम्न तापक्रम, भारी वस्तु से दबना (संपीडन), आदि –की अभिक्रिया को यथाशीघ्र (निर्विलंब रूप से) दूर करना और आहत को प्रतिकूल परिस्थितियों से बाहर निकालना, जैसे–आग या पानी से निकालना, विषैली गैस से भरे कमरे से निकालना, आदि।

2) चोट, दुर्घटना या आकस्मिक रोग की प्रकृति के अनुसार आहत का प्राथमिक उपचार करना, जैसे–रक्तस्राव रोकना, घाव पर पट्टी बांधना, कृत्रिम साँस दिलाना, हृदय की मालिश करना, प्रतिविष देना, आदि।

3) आहत को शीघ्रतम अस्पताल पहुँचाने का (परिवहन का) प्रबंध करना।

प्रथम चरण में उठाये गये कदमों को महज प्राथमिक सहायता ही कहा जा सकता है, ये प्राथमिक आयुरी सहायता (अर्थात् प्राथमिक उपचार) की गिनती में नहीं आते। यह एक-दूसरे की और खुद की सहायता के रूप में की जाती है, क्योंकि इतना तो सभी जानते हैं कि यदि डूबते हुए को पानी से नहीं निकाला जाये, जलते आदमी को आग से दूर नहीं किया जाये या मलबे से दबे आदमी को मुक्त नहीं किया जाये, तो उसकी मृत्यु निश्चित है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि आदमी उपरोक्त घटकों के प्रभाव में जितना ही अधिक देर रहेगा, क्षति उतनी ही गहरी और गंभीर होगी। इसीलिये प्राथमिक सहायता इन्हीं कार्यों से शुरू की जाती है।

दूसरे चरण में प्राथमिक आयुरी सहायता दी जाती है (जो प्राथमिक उपचार है)। यह आयुरी कर्मचारी या ऐसे लोग कर सकते हैं, जिन्होंने क्षतियों के मुख्य लक्षणों तथा प्राथमिक उपचार की विधियों का अध्ययन किया है।

प्राथमिक उपचार में भी सबसे महत्वपूर्ण ऐसे कार्य होते हैं, जो आहत को जल्द से जल्द अस्पताल पहुँचाने के लिए किये जाते हैं। आहत का परिवहन शीघ्र ही नहीं, सही भी होना चाहिये अर्थात् उसे इस स्थिति (मुद्रा) में ले जाना चाहिये, जो उसके लिये सबसे अधिक निरापद हो और रोग या चोट की प्रकृति के अनुरूप हो; उदाहरणार्थ, बेहोशी की अवस्था में या वमन का खतरा होने

पर उसे करवट के बल लिटाना चाहिये; आदमी का अस्थि-भंग होने पर तदनुरूप अंग को निश्चल कर लेने के बाद उसे भी करवट के बल ही ले जाते हैं।

आहत के परिवहन के लिये विशेष वाहनों (ऐंबुलेंस गाड़ी, ऐंबुलेंस विमान) का उपयोग उत्तम रहता है। इनकी अनुपस्थिति में परिवहन किसी भी साधन द्वारा करना चाहिये, जो मूर्त्त परिस्थितियों में उत्तम हो। बहुत प्रतिकूल परिस्थितियों में आहत को हाथ पर पहुँचाते हैं विशेष या काम-चलाऊ रूप से बनाये गये स्ट्रेचर, बोरे, त्रिपाल आदि जैसे साधनों का उपयोग करना पड़ता है।

परिवहन कुछ मिनटों से लेकर कुछ घंटों तक जारी रह सकता है। आयुरी कर्मचारी का उत्तरदायित्व होता है कि वह आहत के सही परिवहन और एक वाहन से दूसरे पर सही ढंग से स्थानांतरण का प्रबंध करे, रास्ते में प्राथमिक उपचार करे, क्लिष्टताओं की रोकथाम (निरोध) का उपाय करे, जो वमन, परिवहनजनित निश्चलीकरण में गड़बड़ी, ठंड, हिचकोलों आदि से उत्पन्न हो सकती हैं। (क्लिष्टता – रोगावस्था का नयी आक्रांतियों से बदतर होना)

प्राथमिक आयुरी सहायता का अतिमूल्यांकन असंभव है। ठीक समय पर सही ढंग से किया गया प्राथमिक उपचार आहत की जान ही नहीं बचाता, रोग या क्षति के इलाज की सफलता में भी सहायक होता है, गंभीर क्लिष्टताओं (अभिघात, घाव के पूयन, रक्त के सार्विक सृपन की रोकथाम करता है, आहत की श्रम-क्षमता की हानि

को कम करता है।

"सोवियत संघ और संघीय गणतंत्रों की विधिसंहिता" में आयुरी कर्मचारी के अधिकार और कर्तव्य शुद्धता के साथ सूत्रबद्ध किये गये हैं। राह में, सार्वजनिक स्थल पर, घर में या कहीं भी आहत की सहायता के लिये बुलाहट आते ही वहाँ पहुँचना उसका वैधानिक कर्तव्य है; आकस्मिक रोग या दुर्घटना से ग्रस्त व्यक्ति के सही प्राथमिक उपचार की विधियों का उसे पूरा-पूरा ज्ञान होना ही चाहिये। अनुच्छेद 17 में इंगित किया गया है कि इस वृत्तिक कर्त्तव्य का पालन नहीं करने पर उसे संहिता द्वारा निश्चित अनुशासकीय दंड भुगतना होगा, (यदि आयुर कर्मचारी का आचरण अपराध दंड-संहिता के अंतर्गत नहीं आ जाता)। अनुच्छेद 37 के अनुसार स्थानीय सोवियतों की कार्यकारिणी समितियां, प्रतिष्ठानों के नेतृत्वकारी जैसे लोग आहत का प्राथमिक उपचार करने वाले आयुरी कर्मचारियों को परिवहन, संचार आदि से संबंधित सभी प्रकार की सहायता पहुँचाने के लिये कानून द्वारा बाध्य होते हैं।

आयुर के क्षेत्र में काम करने को इच्छुक लोगों को यह अवश्य जान लेना चाहिये कि वे एक अत्यंत कठिन वृत्ति चुनने जा रहे हैं, इसमें अथक और कभी-कभी तो भारी श्रम की आवश्यकता पड़ती है, निरंतर अपना ज्ञान विकसित करते रहना पड़ता है।

रोगी का जीवन और स्वास्थ्य आयुर कर्मचारियों के लिये उनके व्यक्तिगत हितों से ऊपर होना चाहिये।

अथक श्रम और रोगियों के प्रति असीम प्रेम के कारण सोवियत आयुर-कर्मी लोक-श्रद्धा के पात्र हैं, उनकी सुख-सुविधा का ख्याल रखा जाता है, उनके ज्ञान वर्धन के लिये अनेकानेक संस्थानों तथा प्रतिष्ठानों में निःशुल्क अध्ययन की व्यवस्था की जाती है, अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम संगठित किये जाते हैं।

प्राथमिक उपचारकेंद्र सोवियत संघ में प्राथमिक आयुरी सहायता पहुँचाने के लिये विशेष प्रतिष्ठान संगठित किये गये हैं – द्रुत सहायता-केंद्र और निर्विलंब सहायता-केंद्र (चोटलोचनी, दंतलोचनी, हृदलोचनी, आदि)।

द्रुत सहायता-केंद्र का काम जटिल और बहुविध है, उसके निम्न उत्तरदायित्व हैं: आकस्मिक रोग तथा दुर्घटना की स्थिति में आहत का प्राथमिक उपचार करना, उसे शीघ्र अस्पताल पहुँचाना, प्रसूता को प्रसूति-गृह पहुँचाना। द्रुत सहायता-केंद्र की ऐंबुलेंस गाड़ियां किसी भी बुलाहट की अवहेलना नहीं कर सकतीं; घटना-स्थल पर पहुँच कर केंद्र का डाक्टर या कम्पाउंडर आहत को प्राथमिक आयुरी सहायता पहुँचाता है, कुशल परिवहन द्वारा उसे किसी आवासीय तल्पालय में पहुँचाता है।

द्रुत सहायता का संगठन सतत विकासशील है। आज सोवियत संघ के सभी बड़े शहरों के द्रुत सहायता-केंद्रों में विशेष संजीवन-गाड़ियां हैं, जो आहत को उच्च दक्षता के साथ सहायता पहुँचाने के लिये आवश्यक आधुनिकतम उपकरणों से लैस होती हैं। ऐसी गाड़ियों में काम करने वाले डाक्टर या कंपाउंडर आवश्यकता पड़ने पर घटना-

स्थल पर ही आहत में रक्त या रक्त-प्रतिस्थापक द्रव का आधान कर सकते हैं, वे हृदय की मालिश कर सकते हैं, विशेष उपकरणों की सहायता से कृत्रिम श्वसन, वेद-नाहर प्रसाधन, प्रतिविष तथा अन्य दवाएं दे सकते हैं। ऐसी गाड़ियों के होने से द्रुत, निर्विलंब आयुरी सहायता की कारगरता बहुत ऊँची हो जाती है।

द्रुत आयुरी सहायता-केंद्रों में विशेष प्रकार के ब्रिगेड होते हैं, जो अस्पताल तक रोगी का कुशल परिवहन कर सकते हैं। वे तल्पालयों, आयुरी-स्वास्थ्य विभागों, निर्विलंब सहायता-केंद्रों आदि के डाक्टरों के अनुरोध पर इन आयुर प्रतिष्ठानों के रोगियों की सहायता करते हैं।

सोवियत संघ में अनावासी दवाखानों, डाक्टरखानों (पौरतल्पालयों), आयुर-स्वास्थ्य विभागों, प्रसूतिक केंद्रों का जाल संगठित किया गया है, जो दिन के समय तदनुरूप इलाके के लोगों को प्राथमिक डाक्टरी सहायता भी पहुँचाते हैं, अस्पताल में भरती कराने की आवश्यकता और निर्विलंबता का मूल्यांकन करते हैं, परिवहन का साधन निर्धारित करते हैं।

औषधालयों, परीक्षणालयों, दंत-चिकित्सालयों, बहुमारी लोचनी-केंद्रों आदि में आहत व्यक्ति किसी भी क्षण सहायता की मांग कर सकता है। इसीलिये इन प्रतिष्ठानों में प्राथमिक उपचार के लिये आवश्यक उपकरणों और दवाओं का सेट भी अवश्य होना चाहिये। औषध-पेटी में निम्न प्रसाधन होने चाहिये: हाइड्रोजन पेरोक्साइड का घोल, टिंचर का अल्कोहलिक घोल, अमोनियम हाइड्रोक्साइड,

वेदनाहर (अनाल्जीन, अमीदोपीरीन), हृत्कुंभिक तंत्र का कार्य बेहतर करने वाले प्रसाधन (वालेरिआन टिंचर, कौफेइन, वालीडोल, नाइट्रोग्लीसेरिन, कोर्डिआमिन, पैपाजोल), ज्वरशामक (आस्पीरिन, फेनासेटिन), प्रति-शोथी प्रसाधन (सुल्फोनामीद और प्रतिजीवक), विरे-चक (दस्तावर) दवाएं, रक्तस्तंभक दवाएं, थर्मोमीटर, पट्टी के पैकेट, निष्कीटित पट्टियां, रूई, खपचियां।

प्राथमिक चिकित्सा के लिये लोग सबसे अधिक सहायता औषधालयों से मांगते हैं, अतः औषधविदों को प्राथमिक उपचार की विधियों से अवगत होना चाहिये, उन्हें बिल्कुल ठीक-ठीक ज्ञान होना चाहिये कि किस आकस्मिक रोग या दुर्घटना में किस प्रकार की दवाएं प्रयुक्त की जाती हैं। औषधालयों में औषध-पेटी के अतिरिक्त स्ट्रेचर, बैसाखी, निष्कीटित औजार (राछ, जैसे – क्लैंप, सिरिंज, कैंची), आक्सीजन की थैली; कुछ दवाएं ऐंपुलों में (काफेईन, कोर्डिआमिन, लोबेलिन, आद्रेनालिन, आत्रो-पीन, ग्लूकोज, कोग्लीकोन, प्रोमेडोल, अनाल्जीन, अमी-दोपीरीन) होनी चाहियें। यह भी याद रखना चाहिये कि मादक तथा शक्तिशाली दवाओं के प्रयोग पर कठोर नियंत्रण है, अतः इनके खर्च का ब्योरा विशेष बही में अंकित करते रहना चाहिये।

अध्याय 1

प्रतिसृपन और निस्सृपन

सौ वर्ष से अधिक समय बीत चुका है, जब फ्रांस के वैज्ञानिक लुईस पास्चर ने सिद्ध किया था कि सड़न और खमीरन जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न होता है। अंग्रेज करो-र्जक जोसेफ लिस्टर ने इससे निष्कर्ष निकाला कि व्रण में जीवाणुओं के आने (पैंठित होने) पर ही उसका सृपन होता है। "अस्पताली सड़ाँध" से व्रण के पैंठित होने का विचार प्रथमतः डाक्टर निकोलाई पिरोगोव ने प्रस्तुत किया था। वे लिस्टर के बहुत पहले ही व्रण को निष्पैं-ठित करने के लिये अल्कोहल, सिल्वर नाइट्रेट और आयो-डीन का उपयोग किया करते थे।

आदमी निरंतर असंख्य जीवाणुओं के संपर्क में रहता है, जो हवा में और परिवेशी वस्तुओं पर सदैव उपस्थित रहते हैं। स्वस्थ आदमी की त्वचा और श्लेष्मल झिल्ली पर भी अनेक प्रकार के जीवाणु होते हैं। लेकिन शरीर में वे तभी प्रविष्ट होते हैं, जब चर्म या श्लेष्मल झिल्ली अवछिन्न हो जाती है। इसके निम्न कारण हो सकते हैं: घाव, खरोंच, चुभन, झुलसन, शरीर के रक्षी गुणों की

क्षीणता, रक्त-संचार में गड़बड़ी, सर्दी, सामान्य (सांगोपांग) रोग से दुर्बलता और क्षय (शरीर का प्रतिदिन क्षीण एवं कृश होते जाना)।

ऊतक में प्रविष्ट हो कर जीवाणु प्रवेश-स्थल पर पूयशोथी संवृत्तियां उत्पन्न करते हैं, जैसे व्रण (घाव) का पूयन (उसमें पीप या मवाद आना), विद्रधि, पूयफ्लेग्मोन (अस्पष्ट सीमाओं वाला तीव्र शोथ)। जब वे रक्त में प्रविष्ट होते हैं, अधिक गंभीर स्थिति उत्पन्न हो जाती है, जिसे सृपन – सांगोपांग पूयकारी पैठन – कहते हैं।

अधिकांश प्रकार के करोर्जिक हस्तक्षेपों – आपरेशन, अवरोधन, अंतर्शिरीय या अवचार्म आधान (सूइयों) – के कारण चर्म का सातत्य अवछिन्न हो जाता है, जिससे जीवाणुओं के प्रवेश की संभावना उत्पन्न होती है। व्रण में प्रविष्ट (पैठित) जीवाणुओं से संघर्ष की युक्तियों को प्रतिसृपन कहते हैं और व्रण में जीवाणुओं के प्रवेश (पैठन) को रोकने के उपायों को निस्सृपन कहते हैं।

प्रतिसृपन

प्रतिसृपन चिकित्सा और निरोध की ऐसी युक्तियों के संकुल को कहते हैं, जिनका उद्देश्य है – घाव में जीवाणुओं को नष्ट करना, उसमें जीवाणुओं की जीवन-प्रक्रिया के लिये और ऊतकों में उनके गहरे पैठन के लिये प्रतिकूल परिस्थितियां उत्पन्न करना।

प्रतिसृपन यांत्रिक, भौतिक, रासायनिक तथा जीवलोचनी रीतियों से किया जाता है। यांत्रिक प्रतिसृपन में मृत तथा कुचले ऊतकों, रक्त के थक्कों, परज (बाहरी ; शरीर के लिये परायी, हानिकारक) वस्तुओं को घाव से निकाला जाता है। यांत्रिक प्रतिसृपन का उदाहरण है– अस्पताल में घाव का प्राथमिक करोर्जी शोधन। भौतिक प्रतिसृपन निम्न है (उदाहरणार्थ)–घाव का क्वार्ट्स से (अर्थात् अवरक्त किरणों से) विकिरण, सोडियम क्लोराइड के अतितानी घोल में तर अपवाही नलिका, टैंपन (गजी की मसनद सी बेलनाकार गद्दी), तुरुंदा (नन्हा टैंपन) आदि को घाव में प्रविष्ट कराना, जिससे पूय और व्रणज द्रव बाहर निकल सके ; इससे व्रण में पैठन बढ़ने के लिये प्रतिकूल परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं। प्रतिसृपन की यह रीति मुख्यतः डाक्टरी उपचार में ही प्रयुक्त होती है।

सबसे अधिक महत्त्व रासायनिक एवं जीवलोचनी प्रतिसृपन का है : इसमें विभिन्न प्रकार के द्रव्यों का उपयोग होता है, जो घाव में उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं या उसका प्रजनन बहुत मंद कर देते हैं। जीवाणुओं को नष्ट करने वाले द्रव्य जीवाणुनाशक कहलाते हैं और उनका प्रजनन मंद करने वाले–जीवाणु-स्तंभक।

रासायनिक प्रतिसृपक द्रव्य

निष्पैठक प्रसाधनों की संख्या बहुत बड़ी है, लेकिन इनमें से अधिकांश ऐसे द्रव्य हैं, जो घाव की सतह पर

स्थित ऊतकों को भी क्षति पहुँचाने लगते हैं, इसीलिये ऐसे प्रसाधनों का उपयोग युक्तिसंगत रूप से करना चाहिये — उनके हानिकारक प्रभाव को ध्यान में रखते हुए उनके सुसंकेतों के आधार पर।

हाइड्रोजन पेरोक्साइड का घोल (Sol. Hydrogenii peroxydati diluta) एक रंगहीन द्रव है। यह हल्का निष्पैठक है, परंतु अच्छा गंधनाशक है। यह 3% सांद्रता वाले घोल के रूप में चर्म और श्लेष्मल झिल्लियों पर प्रयुक्त होता है।

घाव में पूय और रक्त के स्पर्श से हाइड्रोजन पेरोक्साइड बड़ी मात्रा में आक्सीजन विरेचित करता है, जिससे फेन बनने लगता है। इससे पूय और विमृत ऊतक घाव से दूर हो जाते हैं। घाव के साथ सूख कर चिपकी पट्टी को अलग करने और पट्टी बांधने में इसका विस्तृत उपयोग होता है।

पोटेशियम परमैंगनेट (Kalii permanganas) गहरे बैंगनी रंग का क्रिस्टल है, जो पानी में सरलतापूर्वक घुल जाता है। घोल क्षीण (हल्का) निष्पैठक प्रभाव डालता है। पूयित घाव धोने में 0.1-0.5% सांद्र घोल का झुलसन, व्रणों और शैयाव्रण में कसैले साधन के रूप में प्रयोग होता है। (कसैले या कशक साधन: कुंभी-संकोचक दवाएं।)

बोरिक अम्ल (Acidum boricum) जल में घुलनशील श्वेत क्रिस्टलीय पाउडर है। श्लेष्मल झिल्लियों,

घावों और कोटरों को धोने में 2% सांद्र घोल प्रयुक्त होता है।

स्पीरिट में आयोडीन का 5% सांद्र घोल (Sol. Jodi Spirituosa, Tinctura jodi 5%) आपरेशन क्षेत्र, करोर्जक के हाथ, घायल त्वचा आदि को निष्पैठित करने, कट-फट तथा खरोंचों पर लेपने में प्रयुक्त होता है।

आयोडोनेट (Iodonatum) आयडीन की हल्की गंध से युक्त एक गाढ़ा भूरा (कत्थई) द्रव है। पानी से सुगमतापूर्वक मिश्रित हो जाता है। 1% सांद्र घोल के रूप में आपरेशन-क्षेत्र के शोधन और हाथों के निर्विलंब शोधन में प्रयुक्त होता है।

आयोडोफोर्म (Iodoformium) पाउडर के रूप में उत्पादित होता है; इससे मलहम और इमलशन बनाये जाते हैं। इसका उपयोग पूयित व्रणों, घावों की चिकित्सा आदि में होता है।

क्लोरामिन बी (Chloraminum B) क्लोरीन (क्लोरीन) की विशिष्ट गंध से युक्त सफेद या हल्का पीला क्रिस्टलिक पाउडर है। यह जल में सुघुलनशील है और प्रतिसृपक एवं गंधमारक प्रभाव डालता है। पूयित घाव धोने के लिये 1-2% सांद्र घोल और हाथ, दस्तानों व औजारों (राछों) को निष्पैठित करने के लिये 0.25-0.5% सांद्र घोल प्रयुक्त होता है। घोल को अंधेरे बरतनों में रखना चाहिये, अन्यथा प्रसाधन कुछेक दिनों में अपघटित हो कर प्रतिसृपक गुण खो देता है।

पारद क्लोराइड (Hydargyri dichloridum) एक भारी, श्वेत पाउडर है, जो पानी में सुघुलनशील है। इसका 1 : 1000 सांद्र घोल उपयोग में ग्राता है। यह एक शक्तिशाली विष है, ग्रक्षत चर्म-ग्रावरण से होकर भी सुगमता से शरीर में ग्रपचोषित हो जाता है ग्रौर घातक गरलता (विषालुता) उत्पन्न करता है। इसीलिये इसे ग्रलमारी में बंद रखना चाहिये ग्रौर इस पर स्पष्ट संकेत होना चाहिये कि यह विष है। इसका उपयोग पैठनग्रस्त (छुतहे रोग से पीड़ित) रोगियों की देखभाल की वस्तुग्रों ग्रौर दस्तानों को निष्पैठित करने में होता है।

दिग्रोसीद (डायोसाइड; Diocidum) एक यौगिक प्रतिसृपक है (एथानोल पारद क्लोराइड ग्रौर सेटिलपीरीडीनुम क्लोराइड का), जिससे विशेष तकनीक द्वारा शक्तिशाली बाक्तेरीमारक प्रसाधन बनाये जाते हैं। 1 : 5000 घोल से हाथ संसाधित किये जाते हैं। ग्रधिकांशत: प्लास्टिक की वस्तुएं ग्रौर राछ निष्कीटित करने में प्रयुक्त होता है (1 : 1000 सांद्र घोल)।

कोलारगोल (Collargolum) पानी में घुलनशील कलिलीय (कोलोयडी) रजत है। कलिलीय घोल गाढ़ा-भूरा या लालभूरा होता है ग्रौर बाक्तेरीमारक, कसैल तथा दागी प्रभाव डालता है। फुहारन, एनेमा, ग्राँख ग्रौर नाक धोने (प्रक्षालण) में इसका 0.2-1% सांद्र घोल ग्रौर दागने के लिये 5-10% सांद्र घोल प्रयुक्त होता है।

रजत नाइट्रेट (Argentum nitricum) एक शक्ति-

शाली प्रतिसूपक है, दागी और प्रतिशोथी प्रभाव डालता है। इसका तनु घोल (1 : 3000) मूत्राशय के प्रक्षालण में, 10-30% सांद्र घोल व्रण में कणीकरण दागने के लिये प्रयुक्त होता है।

एथिल अल्कोहल; एथानोल (Spiritus aethylicus) विशिष्ट गंध वाला एक रगहीन द्रव है। इसका 70% और 90% सांद्र घोल कर्तक राछों (स्काल्पेल, कैंची आदि), टाँके की सामग्री (सिल्क) व आपरेशन-क्षेत्र को निष्पैठित करने और करोर्जक के हाथों तथा घाव के गिर्द त्वचा को निष्पैठित एवं कशित करने के काम आता है।

एथिल अल्कोहल की बाक्तेरीमारकता को तेजी से बढ़ाया जा सकता है – उसमें थीमोल या अनीलीन रंजक मिला कर। 1 : 1000 के अनुपात में अल्कोहल और थीमोल का घोल बहुत ही कारगर होता है और कार्बोलिक अम्ल के 3 प्रतिशतीय (अर्थात 3 प्रतिशत सांद्र) घोल से 30 गुना अधिक शक्तिशाली होता है और इसमें वे अवांछनीय गुण (तीखी गंध, क्षोभक अभिक्रिया आदि) भी नहीं होते, जो कार्बोलिक अम्ल में होते हैं।

चमकीला हरा घोल (viride nitens) का 1 प्रतिशतीय घोल राछों को निष्पैठित करने, पूयिक क्षतियों, कट-फट और खरोंचों, छिलाव आदि की स्थिति में त्वचा पर लेपने के काम आता है।

चमकीला हरा नोविकोव आविष्कृत द्रव में प्रयुक्त होता है; इस द्रव में निम्न अवयव होते हैं: टान्निन,

एथिल अल्कोहल, अंडी का तेल और कोलोडियम (स्पीरिट और ईथर में सेलुलोज नाइट्रेट का चिपचिपा घोल, जो बहुत जल्द सूखने वाले गोंद का काम करता है)। कोलोडियम सूख कर त्वचा पर एक सघन प्रत्यास्थ झिल्ली बना लेता है। इसका उपयोग छोटी-मोटी चर्म-क्षतियों के प्रतिसृपन में होता है।

मेथीलेन नीला घोल (Methylenum coeruleum) का 2 प्रतिशतीय अल्कोहलिक घोल झुलसन के इलाज में और 0.02 प्रतिशतीय जलीय घोल कोटरों के प्रक्षालण में प्रयुक्त होता है।

डेगमिन (Degminum) उच्चाण्विक अल्कोहलों और हेक्सामेथीलेन अमीन का व्युत्पाद है। यह जल में शीघ्र घुल जाता है और स्पष्ट बाक्तेरीमारक प्रभाव डालता है। 1 प्रतिशतीय घोल हाथों और आपरेशन क्षेत्र को निष्पैठित करने के काम आता है।

एथाक्रीडीन लैक्टेट (Aethacridini lactas) या रीवानोल एक पीला सूक्ष्म क्रिस्टलिक पाउडर है; ठंडे पानी में मुश्किल से, लेकिन गर्म पानी में शीघ्र घुलता है। 0.05 प्रतिशतीय घोल कोटरों तथा पूयिक व्रणों को धोने के काम आता है।

फूरासीलिन (Furacilinum) एक पीला क्रिस्टलिक चूर्ण है और पानी में मुश्किल से घुलता है; यह एक अच्छा प्रतिसृपक है और अधिकांश पूयजनक जीवाणुओं पर असर करता है। 1 : 5000 के अनुपात में इसका घोल पूयिक

व्रणों, कोटरों, झुलसन तथा शैयाव्रण को धोने के काम आता है।

अमोनियम हाइड्रोक्साइड (अमोनियम सोडा) का घोल (Sol. Ammonii caustici) तीखी गंध वाला एक रंगहीन द्रव है। यह जल में शीघ्र घुलता है। इसका 0.5 प्रतिशतीय घोल हाथों, पैंठित व्रणों और आपरेशन क्षेत्र को निष्पैंठित करने के काम आता है।

शुद्ध फेनोल (Phenolum purum) या कार्बोलिक अम्ल (Ac. Carbolicum crystallisatum) रंगहीन त्रिस्टलों के रूप में होता है। ये पानी, अल्कोहल और ईथर में घुलनशील हैं, इनकी गंध काफी तीखी होती है। इनके घोल में शक्तिशाली बाक्तेरीमारक गुण होता है। रोगी के उपयोग की वस्तुओं, बिस्तर, विसर्जों आदि को 3-5 प्रतिशतीय घोल से निष्पैंठित किया जाता है। साबुन और फेनोल के घोल से कक्ष, घर आदि निष्पैंठित किये जा सकते हैं। फेनोल चर्म द्वारा सुगमता से अपचोषित होता है, इसलिये इससे गरलता भी उत्पन्न हो सकती है।

फोर्माल्डीहाइड-घोल (Sol. Formaldehydi) विशिष्ट गंध वाला एक पारदर्शक द्रव है, यह गारक (गरणकारी) है। इसका उपयोग हाथों, राछों, दस्तानों और नालियों के निष्पैंठन में होता है।

सुल्फोनामीड (Sulphonamide) इस श्रेणी के यौगिक महत्वपूर्ण प्रतिसृपक द्रव्य हैं। अच्छा बाक्तेरीस्थैतिक प्रभाव रखने (जिससे बाक्तेरियों का प्रजनन रुक जाता है) और शरीर को अपेक्षाकृत कम हानि पहुँचाने के कारण पैंठन

के नियंत्रण में इनका विस्तृत उपयोग है। इनमें मे निम्न यौगिक अक्सर प्रयुक्त होते हैं: स्त्रेप्तोसिद (सुल्फोनामीड), नोरसुल्फाजोल (सुल्फाथिअाजोल), एथाजोल (सुल्फाएथिअोडोल), सुल्फाडीमेजीन (सुल्फाडीमीडीन), सुल्जिन (सुल्फाक्वानीडीन), फ्थालाजोल (फ्थालिलसुल्फाथिअाजोल) और सुल्फाडीमेथोक्सीन। व्रण-पैठन रोकने के लिये सुल्फोनामीड मुखमार्ग से ग्रहण किये जाते हैं; विशेष स्थितियों में स्थानिक प्रयोग भी संभव है – घाव पर चूर्ण छिड़क कर। इस श्रेणी के कुछ प्रसाधन अंतर्शिरीय आधान के लिये भी तैयार किये गये हैं (जैसे सुल्फाथिअाजोल)। पूयिक व्रणों में सुल्फोनामीड मलहमों और इमलशनों के साथ स्थानिक रूप में प्रयुक्त होते हैं, जिससे घाव की चिकित्सा रोके बिना उसका विश्वसनीय निष्पैठन किया जा सकता है।

जीवलोचनी प्रतिसृपन

जीवलोचनी प्रतिसृपन जीवलोचनी मूल के विभिन्न बाक्तेरीमारक और बाक्तेरी-स्थैतिक (बाक्तेरियों का प्रजनन रोकने वाले) प्रसाधनों द्वारा सपन्न होता है; ये घाव या शरीर में उपस्थित रोगकारी जीवाणुओं को नष्ट करते हैं। इनमें दो तरह के प्रसाधन आते हैं: 1) प्रतिजीवक, अर्थात् खुद जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न या कृत्रिम रूप से संश्लिष्ट द्रव्य (इनका प्रभाव चयनात्मक होता है, अर्थात्

हर प्रतिजीवक पदार्थ विशेष प्रकार की जीवकोशिकाओं पर ही असर करता है), और 2) शरीर की प्रतिरोधिता तथा रक्षी-कार्य को बढ़ाने वाले यौगिक; जैसे – टीका, सीरम, गामा-ग्लोबूलिन आदि।

प्रतिजीवकों का चिकित्सा में उपयोग 1940 में शुरू हुआ था। इसका श्रेय ज़ि. येरमोलियेवा को जाता है, जिन्होंनें सोवियत संघ में पहली बार प्रतिजीवक प्राप्त किये थे और उनका अध्ययन आरंभ किया था। प्रतिजीवक द्रव्य शरीर में उपस्थित सूक्ष्मजीवों (जीवाणुओं) के वर्धन और प्रजनन को रोकते हैं। इनमें से अधिकांश द्रव्य बाक्तेरियों की किसी विशेष जाति पर ही प्रभाव डालते हैं; लेकिन कई ऐसे भी हैं, जो एक साथ अनेक जातियों के विरुद्ध भी प्रयुक्त हो सकते हैं। अत्यधिक प्रयुक्त प्रतिजीवक निम्न हैं*

पेनीसिलिन, स्ट्रेप्तोमीसिन ख्लोरांफेनीकोल ("ख्लोरोमीसेतिन"), तेत्रासिक्लीन ("आख्रोमीसिन"), नेओमीसिन सल्फेट (कोलीमीसिन), मोनोमीसिन, एरीथ्रोमीसिन ("लिंकोसिन"); सिग्मामीसिन मोर्फोसिक्लीन,

---

*जो नाम हिन्दी में अंग्रेजी उच्चारण से बहुत प्रचलित नहीं हैं, उनकी वर्तनी कुछ परिवर्तनों के साथ लातीनी उच्चारण के अनुरूप दी गयी है; लातीनी वर्णों में उनका प्रतिलेख निम्न है: penicillin, streptomycin, chloramphenicol (Chloromycetin), tetracycline (Achro mycin) neomycin sulphate (Colimycin), mono-

जेंतामीसिन सल्फेट ("गारामीसिन '), कानामीसिन (कांत्रेक्स), लेवोमीसेतिन, पिग्रोपेन ग्रौर मेथासिक्लीन (रोंदोमीसिन ")।

ग्रर्धकृत्रिम प्रसाधन सेपोरिन, ग्रांपीसिलिन (" ग्रोम्नीपेन ") भी उत्पादित होते हैं।

प्रतिजीवकों का उपयोग निम्न विधियों से होता है : स्थानिक रूप से – घाव को धोने व सींचने के लिये लोशन के रूप में, मरहम-पट्टी के लिये मलहम तथा इमल्शन के रूप में ; सार्वदैहिक प्रभाव के लिये मुखमार्ग से ग्रौर ग्रवचार्म, ग्रंतर्पेशीय तथा ग्रंतर्शिरीय सूइयों से। बाक्तेरी जल्द ही ग्रपने को प्रतिजीवकों के ग्रनुकूल बना लेते हैं ग्रौर उनका प्रतिरोध करने लगते हैं, इसीलिये प्रतिजीवकों से चिकित्सा इनके प्रति बाक्तेरियों की संवेदिता जाँच लेने के बाद ही शुरू करते हैं।

प्रतिजीवकों से चिकित्सा के फलस्वरूप कभीकभी क्लिष्टताएं भी उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे परोर्जिक शोफ, पित्ती ग्रौर यहां तक कि ग्रभिघात भी। इसीलिये इसके पहले प्रतिजीवकों के प्रति शरीर की भी संवेदिता जाँच लेनी चाहिये।

---

mycin, erythromycin (Lincocin), sigmamycin, morphocycline, gentamycin sulphate (Garamycin) kanamycin (Kantrex), laevomycetin, piopen, methacycline (Rondomycin), Ceporin, ampicillin (Omnipen).

प्रतिजीवकों के घोलों से राछों, उपकरणों और टाँके की सामग्रियों का निष्कीटन सामान्यतया रासायनिक द्रव्यों मे निष्कीटित करने के बाद, लेकिन करोर्जन से तुरंत पूर्व किया जाता है। प्रतिजीवक अक्सर मिश्रित भी किये जाते हैं, जैसे पेनीसिलिन, स्त्रेप्तोमीसिन व नेओमीसिन सल्फेट की 1000000 से 2000000 U प्रति 150-200ml आसवित जल में।

निस्सृपन

निस्सृपन उन सभी उपायों के संकुल को कहते हैं, जो घाव में जीवाणुओं का प्रवेश रोकने के लिये प्रयुक्त होते हैं। इसमें हर उस वस्तु को निष्पैठित किया जाता है, जिनसे घाव का स्पर्श होने की संभावना रहती है।

निष्कीटन का अर्थ है आपरेशन में प्रयुवत वस्त्रों (कपड़ों, चादरों आदि), राछों, मरहम-पट्टी और टाँके की सामग्रियों, करोर्जक के वस्त्रों, दस्तानों आदि पर उपस्थित बाक्तेरियों और उनके स्पोरों को पूर्णतया नष्ट करना। इसकी अनेक युवितयां हैं: दाब के अधीन शुष्क वाष्प में रखना, शुष्क परितापन, उत्तापन, क्वथन (उबालना), पैठित वस्तुओं को जलाना या उन्हें प्रतिसृपकों और प्रतिजीवकों के घोल में रखना। विकिरण (गामा किरणों से), पराबैंगनी विकिरण (मर्करी-क्वार्ट्स लैंप द्वारा), गैसें तथा अन्य साधन भी निष्कीटन में विस्तृत रूप से प्रयुक्त होते हैं।

जब वस्तु की बाहरी व भीतरी सतहें प्रजनन-क्षम जीवाणुओं से मुक्त हो जाती हैं, तो उसे निष्कीटित माना जाता है। वस्तुओं का निष्कीटन बाक्तेरियों को विशेष पोषक माध्यमों में आरोपित करके जाँचा जाता है।

परिधान-सामग्रियां और इनका निष्कीटन

आपरेशन के समय प्रयुक्त होने वाली, घाव तथा आपरेशन-क्षेत्र को सुखाने के काम आने वाली, घाव में टैंपन भरने वाली, पट्टी बांधने वाली सामग्रियों को परिधानिक कहते हैं।

परिधानिक सामग्रियों में निम्न गुण होने चाहियें: अच्छा जलशोषी, सुनम्य (लचीला), शीघ्र सूखना, सरलता से निष्कीटित होना।

सामान्यतम परिधानिक सामग्रियां गजी, रूई (कपास की) और लिग्निन। गजी सूती कपास के जालीदार हल्के कपड़े को कहते हैं, जो रक्त, पूय तथा अन्य रिसावों को बहुत जल्द सोख लेता है। यह सुनम्य और मुलायम होता है, घाव को संदूषित नहीं करता, इसीलिये इससे पट्टियां, रूमाल, टैंपन (गजी को मोड़-मोड़ कर बनाये गये नन्हें तकिये या मसनद की आकृति के पैड), लच्छियां (गजी के धागे के टुकड़ों से बनी गुच्छियां या झुप्पियां, जो रूई की तरह प्रयुक्त हो सकती हैं), आदि बनायी

जाती हैं। रूई कपास-पुष्प के बीजकोष में पाये जाने वाले रेशों से बनती है। आयुर में रूई तैलमुक्त करने के बाद प्रयुक्त होती है, जिससे उसकी जलशोषिता बहुत बढ़ जाती है। रूई को गजी की तह के ऊपर रखते हैं, इससे पट्टी में सोखने की क्षमता बढ़ जाती है। रूई घाव को बाहरी प्रभावों से बचाती है। लिग्निन चुन्नी किये हुए बहुत महीन कागज को कहते हैं; यह जलशोषी रूई की जगह इस्तेमाल होता है।

परिधानिक सामग्रियों का उत्पादन निष्कीटित रूप में भी होता है (बड़े-बड़े रौलों व पैकेटों के रूप में, जिन्हें कार्य-स्थल पर ही आवश्यक आकार में काट कर निष्कीटित करते हैं) और मोमी कागजों में हर्मेटिक रूप से सील किये हुए छोटेछोटे पैकेटों में भी, जो पहले से निष्कीटित रहते हैं। चिकित्सालय से बाहर (काम पर, खेत में, घर में) निष्कीटित पैकेट ही सुविधाजनक होते हैं। सोवियत औषधउद्योग में निष्कीटित परिधानिक सामग्रियां विभिन्न आकारों की रौल-पट्टियों, रूमालों, निजी पैकेटों आदि के रूप में उत्पादित होती हैं, विशेष पट्टियां और पैकेट भी उत्पादित होते हैं, जो प्रतिसृपकों (आयडोफोर्म, चमकदार हरा, सिंथोमीसिन आदि) में तर किये रहते हैं; ये प्रसाधन रक्त की स्कंदन-क्षमता बढ़ाते हैं (जैसे रक्तस्थैतिक गजी)।

औद्योगिक इकाइयों या अन्य प्रतिष्ठानों में प्राथमिक उपचार वहां के स्वास्थ्य-केंद्र के कर्मचारी या विशेष रूप से प्रशिक्षित स्वयं श्रमिक करते हैं। उनके पास प्राथमिक

उपचार की आवश्यक वस्तुएं, स्ट्रेचर, खपचियां आदि मौजूद रहती हैं। स्वास्थ्य-केंद्र में निष्कीटित परिधानिक सामग्रियों का एक संचय हमेशा ही रखा होना चाहिये। निष्कीटित पट्टियों, रूमालों और रूई के मानक पैंकेटों का भंडारण और उपयोग दोनों सुगम होता है। व्यष्टिक (एक आदमी के काम लायक) परिधानिक पैंकेट रखना बहुत जरूरी होता है, क्योंकि इससे शीघ्र और विश्वसनीय रूप से घाव की गंदगी और पैंठन से रक्षा की जा सकती है।

निष्कीटित परिधानिक सामग्रियों के न होने पर गजी के अनिष्कीटित बडे-बड़े टुकड़े लिये जाते हैं (चित्र 1)। रूमाल, टैंपन दस-दस के पैंकेटों में उच्च दाब के अधीन शुष्क वाष्प के कक्ष में निष्कीटित किये जाते हैं। मानक व्यष्टिक पैंकेटों की जगह कामचलाऊं बनाये जा सकते हैं। इसके लिये गजी का 6 × 9cm आकार का एक टुकड़ा लेते हैं और उसके मध्य में (लगभग किनारियों तक) रूई की समरूप परत रखते हैं; फिर गजी को आधे पर मोड़ देते हैं (ताकि रूई भीतर रहे) और उसे मोमी कागज (16 × 16cm) में लपेट लेते हैं। इन पैंकेटों को निष्कीटक कक्ष में बंद कर के निष्कीटित करते हैं।

चादरों व परिधानिक सामग्रियो को अधिकांशतः वाष्पदाबीय निष्कीटक कक्ष (औटोक्लेव) में ही निष्कीटित करते हैं, अतः इस विधि को औटोक्लेवन कहते हैं।

चादरों व परिधानिक सामग्रियों को अक्सर धातुई बेलनों (बक्सों) में निष्कीटित एव भंडारित करते हैं (बक्स की पार्श्व दीवारों में वाष्प के जाने के लिये छेद बने होते
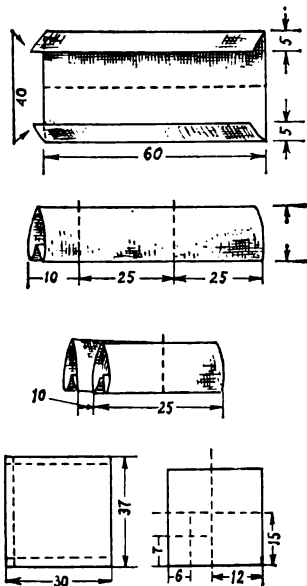
चित्र 1. परिधानिक सामग्रियां तैयार करना। (a) बड़ा रूमाल; (b) मध्यम आकार का रूमाल।

हैं, जिन्हें निष्कीटन के बाद एक छल्ले को खिसका कर बंद कर देते हैं। यदि बक्स के छेद खुले हुए हैं, तो सामग्री अनिष्कीटित है।

परिधानिक सामग्रियों को मोटे कपड़े के थैलों में भी निष्कीटित किया जा सकता है।

औटोक्लेवन के बाद सामग्री की निष्कीटनता का परीक्षण विशेष विधि से किया जाता है। कपड़ों (चादरों

म्रादि) के साथ बक्स में एक परख-नली भी रखते हैं, जिसमें गंधक का चूर्ण, म्रमीदोपीरीन, एंटीपीरीन या कोई म्रन्य द्रव्य रखते हैं, जिसका गलनांक लगभग 120°C होता है। उच्च तापक्रम (120-136°C) पर द्रव्य पिघल जाता है, यदि वह पिघलता नहीं है, तो बक्स में रखी वस्तुम्रों को निष्कीटित नहीं माना जा सकता। कभीकभी मिकूलिछ की रीति भी म्रपनाते हैं। छन्ना-पत्न पर पेंसिल से "निष्कीटित" लिखते हैं म्रौर उस पर स्टार्च का गोंद लेप देते हैं फिर म्रायडीन के जलीय घोल में डुबा देते हैं—कागज (छन्ना-पत्न) गाढ़े नीले रंग का हो जाता है म्रौर पेंसिल से लिखा हुम्रा दिखायी नहीं देता। सामग्री के साथ-साथ इस छन्ना-पत्न को भी बक्स में रख देते हैं, 110°C से म्रधिक तापक्रम पर स्टार्च डेक्सट्रिन में परिणत हो जाता है, जिससे नीला रंग गायब हो जाता है म्रौर शब्द "निष्कीटित" दिखने लगता है।

कभी-कभी निष्कीटनता की जाँच जीवलोचनी रीति से भी की जाती है। सिल्की धागे के टुकड़े को एक घोल में तर कर देते हैं, जिसमें स्पोरजनक बाक्तेरियों की निश्चित मात्रा होती है। धागे को मोमी कागज में म्रच्छी तरह पैक करके बक्स में रखते हैं। वाष्प-निष्कीटन के बाद सिल्क के धागों को पोषक माध्यमों में रखकर बाक्तेरियों को पनपाने की कोशिश करते हैं। यदि उनका प्रजनन नही होता, तो इसका मतलब है कि निष्कीटन कारगर रहा।

निष्कीटित वस्त्रों को सूखा हुआ होना चाहिये, अन्यथा उनकी निष्कीटनता संदेहजनक होगी।

निष्कीटित पट्टियां आदि न होने पर आपत्-काल में निर्विलंबता के लिये परिधानिक सामग्री के रूप में किसी भी साफ कपड़े का टुकड़ा प्रयुक्त हो सकता है, लेकिन पहले उस पर खूब गर्म इस्तरी कर देनी चाहिये।

यदि परिधानिक सामग्री को इस प्रकार निष्कीटित करना भी संभव न हो, तो अनिष्कीटित गजी या अन्य जल-शोषी कपड़े को निम्न में से किसी घोल में तर कर लेते हैं: लिवानोल के घोल (एथाक्रीदीन लैक्टेट), पोटाशियम परमैंगनेट के घोल, या बूरोव-द्रव (द्रव अलुमीनी आसेतात, 2 मध्यम चम्मच प्रति गिलास उबला पानी), या बोरिक अम्ल के घोल में (एक गिलास उबले पानी में 1/3 मध्यम चम्मच)। इनमें से किसी घोल में तर की हुई परिधानिक सामग्री अपवादजनक स्थितियों में घाव पर रखी जा सकती है।

करोर्जिक राछों का निष्कीटन

आधुनिक करोर्जिक राछ बहुत ही विविध प्रकार के हैं। इनसे ऊतकों को काटा जाता है, रक्तस्राव रोका जाता है, ऊतकों को आपरेशन के लिये सुविधाजनक स्थिति में पकड़ कर रखा जाता है, घाव की किनारियों को दूर (विस्फारित) किया जाता है, कर्तित (काटे हुए)

ऊतकों को सीया जाता है, आदि। ऊतक काटने के लिये छूरियां, स्काल्पेल, कैंचियां आदि प्रयुक्त होती हैं, मृदु ऊतकों को पकड़े रहने के लिये – चिमटे, विभिन्न प्रकार के हुक, रक्तस्राव रोकने के लिये तरह-तरह के क्लिप – प्रयुक्त होते हैं। ऊतकों को जोड़ने के लिये विभिन्न सूइयों व क्लैंपों से टाँके लगाते हैं।

परिधान-क्रिया के समय निम्न राछ प्रयुक्त होते हैं: चिमटे (अनाटोमिक और करोर्जिक), कैंचियां, सींकें (फुरेरियां – कत्तलदार व घुंडीनुमा सिरों वाली), घाव को विस्फारित करने के लिये हुक, विभिन्न प्रकार के रक्तरोधक क्लिप और सँड़सियां।

राछीय परिधानक्रिया हमेशा निष्कीटित राछों की सहायता से संपन्न करते हैं (चाहे घाव साफ हो या पूयित, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता)। इससे एक ओर तो संभावित पैठन से घाव की रक्षा होती है, और दूसरे, परिधान करने वाले व्यक्ति के हाथों की संदूषण से रक्षा होती है, विशेषकर घाव पूयित होने पर। हर परिधान-क्रिया के बाद राछों को फिर से धोकर निष्कीटित कर लेना चाहिये। पूयित घाव के परिधान के बाद राछों को अलग-अलग निष्कीटित करना चाहिये।

धातुई राछों को उत्तापन तथा शुष्क ताप की रीति से निष्कीटित करते हैं। शुष्क ताप की रीति से निष्कीटन विशेष प्रकार के कक्षों में होता है, जो अधिकांशत: बिजली द्वारा गर्म किये जाते हैं; ये 10-15 मिनट में 140-180°C तापक्रम तक गर्म हो जाते हैं। इस तापक्रम

पर पूर्ण निष्कीटन 20-30 मिनट में हो जाता है।

निष्कीटन की सबसे सरल रीति है—उबालना। निष्कीटन के लिये उबालने का काम किसी भी बरतन में किसी भी ताप-स्रोत से संपन्न किया जा सकता है। विशेष बरतन भी होते हैं—छोटे जेबी से लेकर स्थावर (अस्पताली) तक।

उबाल कर निम्न वस्तुएं निष्कीटित की जा सकती हैं: धातुई राछ, सूई की पिचकारी तथा कांच की अन्य वस्तुएं, रबड़ की नलियां और नाल-शलाकाएं, प्लास्टिक की कुछ वस्तुएं और विशेष स्थितियों में परिधानिक सामग्रियां। राछों को निष्कीटित जल में ही उबालकर निष्कीटित करते हैं। जल को निष्कीटित करने के लिये उसे 6 घंटे के अंतराल पर आधे-आधे घंटे के लिये दो बार उबालना काफी रहता है। इस तरह दो बार उबालने पर जीवाणुओं के सबसे जीवंत स्पोर भी मृत हो जाते हैं। पानी में इतना क्षार मिला देते हैं (सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट) ताकि 2 प्रतिशतीय घोल प्राप्त हो जाये। क्षारीय पानी निष्कीटन को त्वरित करता है, राछों को आक्सीकरण और जंग से बचाता है। निकेल के मुलम्मा वाले राछों को पानी में डूबा रहना चाहिये, लेकिन टेबुल पर ठंडा होते वक्त उसे अवश्य ही निष्कीटित आयल-क्लौथ से ढका रहना चाहिये। कांच की वस्तुओं (पिचकारियों, गिलासों, फ्लास्कों, आदि) को टूटने के डर से गर्म (खौलते) पानी में नहीं डालना चाहिये।

आपत्-काल में निर्विलंबता के लिये धातुई राछों को

जारण द्वारा भी निष्कीटित किया जा सकता है। जारण जलते स्पीरिट में किया जाता है। कठौते में राछ रखते हैं, उस पर स्पीरिट ढालते हैं और उसमें आग लगा देते हैं, लौ द्वारा अपेक्षाकृत संतोषजनक निष्पैठन हो जाता है, लेकिन यह बहुत विश्वसनीय रीति नहीं है।

सिरिंज का निष्पैठन और उपयोग

शरीर में परांत्र (अवत्वक या अवचार्म, अंतर्पेशीय, अंतर्शिरीय आदि) मार्गों से विभिन्न घोलों का आधान विभिन्न सिरिंजों की सहायता से होता है। सिरिंज काँच का खोखला बेलन होता है, जिसके एक सिरे पर शंक्वाकार मुंह होता है; सूई इसी पर बैठाते हैं। दूसरे खुले एवं विस्तृत मुंह से बेलनाकार पिस्टन प्रवेश करता है। सिरिंज भिन्न प्रकार के होते हैं: माप के अनुसार 1 से 500 ml तक के; निर्माण-सामग्री के अनुसार काँच के, प्लास्टिक के, मिश्र भी–काँच और धातु के; और शंक्वाकार मुंह की मुटाई के अनुसार। "लुएर" (Luer) प्रकार की सूइयां "रिकोर्ड" प्रकार के सिरिंजों पर फिट नहीं होतीं।

हर अंतर्क्षेपण (इंजेक्शन) निष्कीटित उपकरणों (सूई, सिरिंज) से ही किया जाता है। अधिकांशत: सिरिंज को आसवित जल में उबाल कर निष्कीटित करते हैं। सिरिंज के अवयवों को अलग-अलग कर के गजी के रूमाल में लपेट कर उबाला जाता है। निष्कीटक बक्से में उबालने

के लिये उन्हें ठंडे पानी में ही रखा जाता है; शुरू से उबलते पानी में डालने पर वह चनक (टूट) जा सकता है। मिश्र (धातु और काँच के बने) सिरिंज के लिये यह सावधानी विशेष रूप से बरतनी चाहिये, क्योंकि गर्म करने पर काँच और धातु का प्रसारण भिन्न प्रकार से होता है। सिरिंजों को खौलना शुरू होने के क्षण से 30 मिनट तक उबालते हैं, फिर उन्हें निष्कीटित चिमटी या संड़सी से निकालते हैं।

लुएर प्रकार के काँच से बने सिरिंज और तापसह मिश्र सिरिंज (इस पर लिखा रहता है। "200°C") वाष्पनिष्कीटक तथा शुष्कतापीय कक्ष में निष्कीटित किये जा सकते हैं।

अंतर्क्षेपण (सूई देने, सूई से आधान कराने) की तकनीक. सिरिंज के अंगों को ठंडा होने के बाद ही जोड़ना चाहिये। उन्हें छूने (हाथों में लेने) से पहले हाथों को अच्छी तरह साबुन से धोकर निष्कीटित रूमाल से पोंछ लेना चाहिये और स्पीरिट से संसाधित कर लेना चाहिये। फिर सिरिंज को जोड़ कर सूई चुनते हैं। अवचार्म (चर्म के नीचे) दवा के आधान के लिये छोटी सूई चाहिये और अंतर्पेशीय आधान के लिये बड़ी (40 मिलिमीटर लंबी)। सूई के माध्यम से सिरिंज में दवा की आवश्यक मात्रा भरते हैं और सूई को ऊपर की दिशा में करके पिस्टन को दबाते हुए सिरिंज और सूई में उपस्थित हवा को बाहर करते हैं (चित्र 2)।
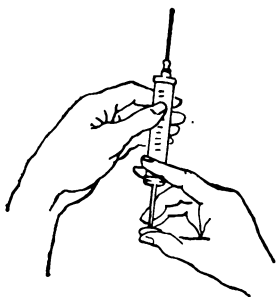
चित्र 2. सिरिंज और सूई से हवा निकालना।

चित्र 3. अवचार्म सूई।

अंतर्क्षेपण के स्थान को स्पीरिट से या स्पीरिट में आयडीन के घोल से संसाधित करते (मलते) हैं। बांयें हाथ से वहां की त्वचा को चुन्नटों में समेटते हैं और दायें हाथ से सूई को तेजी और शक्ति के साथ चर्म में चुभा देते हैं। अंतर्पेशीय अंतर्क्षेपण में सूई को त्वचा के साथ लंब दिशा में चुभाते हैं, लेकिन अवचार्म अंतर्क्षेपण में तिरछा कर के (एक कोण पर; चित्र 3)। सिरिंज को निश्चित स्थिति में स्थिर कर के धीरे-धीरे (तेजी या झटके से नहीं) दवा के घोल को अंदर प्रविष्ट कराते हैं। इसके बाद सूई निकाल लेते हैं और अंतर्क्षेपण के स्थान पर स्पीरिट से तर रूई द्वारा कुछ समय तक मालिश करते रहते हैं।

उपयोग के बाद सूई को जल-प्रवाह में धोते हैं। धोने के बाद सिरिंज को हाइड्रोजन पेरोक्साइड

(0.5%) और वाशिंग पाउडर के गर्म (50°C) घोल में 15 मिनट तक डुबा कर रखते हैं। घोल 975 मिलिलीटर उबले पानी में 33 प्रतिशतीय पेरीहाइड्रोल घोल का 20ml और वाशिंग पाउडर का 5g घुला कर बनाते हैं। घोल से निकाल कर सिरिंज को रूईगजी के टँपत से रगड़ कर धोते हैं, फिर प्रवाहमान जल में खंगालते हैं। इस तरह सिरिंज को संसाधित करने के बाद उसे ऊपर बतायी गयी किसी रीति से निष्कीटित करते हैं।

उपकरण को इतनी सावधानी से धोने की आवश्यकता यह है कि सूई के माध्यम से अक्सर खतरनाक वीरुसी बीमारियां, विशेषकर बोत्किन-रोग (पैठी यकृतशोथ) दूसरों को लग जा सकता है।

<u>परांत्र मार्ग से आधानित होने वाले घोलों का निष्कीटन</u> वाष्प-कक्ष में अथवा उबालने से संभव होता है। घोलों को उन्हीं बरतनो में सुरक्षित रखते हैं, जिनमें उन्हें निष्कीटित करते हैं। बरतनों (सीसियों, बोतलों) में घोल भर कर उन्हें वाष्प-कक्ष में बंद कर देते हैं; उनका मँुह खुला रखते हैं, लेकिन काग-डाट आदि भी कक्ष में डाल देते हैं। कक्ष में उन्हें 2 वातावरण के दाब पर 30 मिनट तक निष्कीटित किया जाता है। निष्कीटन के बाद बरतनों का मँुह ठेपियो (कागों, डाटों) से बंद कर देते हैं और उनके मँुह से लेकर गरदन तक का भाग ऊपर से सेलोफान से भी लपेट देते हैं और धागे से बांध देते हैं।

उबाल कर निष्कीटन में आंशिक रीति का अनुसरण करते हैं। घोलों को उन्हीं बरतनों में रख कर खौलाते

हैं, जिनमें उन्हें बाद में सुरक्षित रखा जाता है। उन्हें आधे घंटे तक खौलाते हैं, फिर 6 घंटे बाद पुनः आधे घंटे तक खौलाते हैं। इसके बाद बरतनों (सीसियों, बोतलों) को सीलबंद करते हैं। इन घोलों को 1-2 दिन तक ही सुरक्षित रखा जा सकता है।

हाथों का संसाधन (निष्कीटन) और दस्तानों का निष्पैठन

यहां तक कि साफ हाथों, नखों के गिर्द और उनके नीचे असंख्य जीवाणु होते हैं, जो चर्म-रंध्रों में बहुत गहराई तक स्वेद-ग्रंथियों तथा वपालग्रंथियों तक पहुंच जा सकते हैं। घाव में पैठन रोकने के लिये किसी भी तरह का करोर्जिककार्य करने वाले हाथों को बहुत सावधानीपूर्वक संसाधित करना चाहिये; नख पहले से बहुत छोटे-कटे होने चाहियें।

हाथ के संसाधन में निम्न बातें आती हैं: हाथ की त्वचा की ध्यानपूर्वक यांत्रिक सफाई, उसे प्रतिसृपक प्रसाधन से तर करना (या धोना); फिर त्वचा को कषित करते हैं। कषण करने का काम स्पीरिट की सहायता से करते हैं, जो चर्म को घना करता हुआ उसके रंध्रों को बंद कर देता है; इससे हाथ का "स्वपैठन" नहीं हो पाता (रंध्रों की गहराई में छिपे जीवाणुओं के निकलने से) हाथ संसाधित करने की अनेक विधियां हैं।

स्पासोकूकोत्सकी-कोछेर्गिन की विधि. संदूषित हाथों (हस्तपुच्छ, कलाई और वहां से कुहनी तक के भाग – प्रबाहु)

को पहले साबुन से प्रवाहमान जल की धार में खूब अच्छी तरह धोते हैं और घरेलू गंदगी दूर करते हैं। यदि हाथ साफ हैं, तो इसकी जरूरत नहीं भी पड़ सकती है। हाथ का मुख्य संसाधन एनामेल की परत वाले दो बहुगुनों में अमोनियम हाइड्रोक्साइड के 0.52 प्रतिशतीय नर्म-गर्म (गुन-गुने) घोल में होता है। हर बहुगुने में 2 लीटर उबले पानी में 10 मिलिलीटर अमोनियम हाड्रोक्साइड (Sol. Ammonii caustici) लेते हैं। हाथों को घोल में डुबाये हुए निष्कीटित गजी के रूमाल से तेजी के साथ रगड़-रगड़ कर धोना चाहिये। प्रथम बहुगुने में विशेष ध्यान से प्रबाहु, नखसेज और हथेलियों को धोना चाहिये; दूसरे में मुख्यत: कलाई से लेकर उंगलियों तक का भाग (हस्तपुच्छ) धोना चाहिये। धोने का काम हर बहुगुने में 3 मिनट तक होता है। इसके बाद हाथों को निष्कीटित तौलिये या रूमाल से पोंछते हैं। सूखे हाथों को (कलाई से उंगलियों तक) दो बार ढाई-ढाई मिनट तक 96 प्रतिशतीय एथिल स्पीरिट से संसाधित करते हैं।

संसाधन की इस रीति से हाथों की त्वचा बिल्कुल ही खराब नहीं होती; रीति विश्वसनीय है और हर परि-स्थिति में हाथों को पर्याप्त रूप से स्वच्छ कर देती है।

फ्यूरब्रिंगेर (Furbringer) की विधि. हाथों को साबुन से कड़े बालों वाले दो ब्रशों द्वारा साफ करते हैं। फिर हाथों को निष्कीटित रूमाल से पोंछ कर 70 प्रतिश-तीय एथिल अल्कोहल से 3 मिनट तक और फिर पारद क्लोराइड के 1 : 10000 घोल से संसाधित करते हैं।

परफोर्मिक अ्म्ल से हाथों का निष्पैठन. हाथों को साबुन से प्रवाहमान जल में धोते हैं, फिर निष्कीटित रूमाल से पोंछ कर बिल्कुल सुखा देते हैं; इसके बाद घोल में एक मिनट तक धोते हैं, फिर निष्कीटित रूमाल से सुखाते हैं। निष्पैठक घोल को उपयोग से 1-1.5 घंटा पूर्व बनाते हैं। 2.4 प्रतिशतीय घोल बनाने का नुस्खा निम्न है: हाइड्रोजन पेरोक्साइड के 33 प्रतिशतीय घोल का 17 मिलिलीटर और चींटी के अम्ल (फोर्मिक अम्ल) के 100 प्रतिशतीय घोल का 7 मिलिलीटर मिला कर एक घंटे तक फ्रीज में रखते हैं, फिर उसमें 1 लीटर उबला हुआ या आसवित जल मिलाते हैं।

सेरीजेल से हाथ निष्पैठित करना. सेरीजेल (Cerygel) एक श्यान रंगहीन द्रव है, जो बाक्तेरीमारक प्रभाव रखता है। हवा में यह बहुत जल्द जमने लगता है। इससे हाथों को मलने (संसाधित करने) से इसकी एक झिल्ली बन जाती है और इस प्रकार हाथ एक निष्कीटित "दस्ताने" के अंदर हो जाता है। उपयोग की विधि: सूखी हथेलियों पर सेरीजेल का 5 मिलिलीटर घोल ढालते हैं और 8-10 सेकेंड तक उसे तेजी से त्वचा पर इस प्रकार मलते हैं कि हाथ की पूरी सतह पर उसकी एक झिल्ली छा जाये (उंगलियों, नखों, हथेली, उसके पीछे की त्वचा समेत)। इसके बाद हाथों को ऐसी स्थिति में 2-3 मिनट तक सुखाते हैं कि उंगलियां एक दूसरी को स्पर्श न करें।

झिल्ली ("दस्ताना") स्पीरिट में तर फाहे से बहुत जल्दी घुल जाती है।

करोर्जिक दस्ताने. इनसे निष्पैठन बहुत विश्वसनीय हो जाता है, लेकिन फिर भी पहले हाथ को संसाधित अवश्य ही किया जाता है।

दस्तानों की भी बहुत ध्यान से देखभाल करनी पड़ती है: आपरेशन के बाद उन्हें अच्छी तरह धोते हैं, साथ-साथ यह भी जाँच करते हैं कि वे कट-फट तो नहीं गये हैं। फिर उसे सुखा कर उस पर टैल्कम पाउडर छिड़क देते हैं। यदि छोटी-मोटी क्षतियां (छेद आदि) हैं, तो उन्हें चिपका देना चाहिये। दस्तानों का निष्कीटन दाबाधीन वाष्प-कक्ष में होता है या उबालने से। वाष्पकक्ष में निष्कीटित करने से पहले हर दस्ताने के भीतर और बाहर टैल्कम छिड़क देते हैं, फिर गजी के रूमाल में लपेट कर बक्स (कक्ष) में बंद कर देते हैं। दस्ताने आपस में और बक्स की दीवारों के साथ स्पर्श नहीं करने चाहियें। इसके लिये बक्स की तली पर तौलिये या रूमाल की तहें लगा देते हैं। निष्कीटन के बाद दस्तानों को उसी वाष्प कक्ष में सुरक्षित रखते हैं।

उबाल कर निष्कीटन के लिये उन्हें पानी में (बिना सोडा के) 15-20 मिनट तक उबालते हैं, फिर उन्हें निष्कीटित तौलिये से पोंछ कर उन पर (भीतर और बाहर) टैल्कम की एक परत छिड़क देते हैं।

दस्तानों का शीतल निष्कीटन भी संभव है: उन्हें क्लोरामीन B के 2 प्रतिशतीय घोल में 15-20 मिनट तक या पारद क्लोराइड के 0.2 प्रतिशतीय घोल में 1-1.5 घंटे तक डुबा कर रखते हैं, फिर सोडियम क्लोराइड

(नमक) के तुल्यतानिक निष्कीटित घोल में धोकर सुखाते हैं, टैल्कम छिड़कते हैं और निष्कीटित बक्स में सुरक्षित रखते हैं।

आपत्-काल में हाथों का निर्विलंब संसाधन. प्राथमिक उपचार करते समय हाथों को किसी उपरोक्त विधि से अवश्य ही निष्कीटित कर लेना चाहिये, विशेषकर यदि आहत को घाव लगा हो, त्वचा और श्लेषमल झिल्ली को किसी तरह की क्षति पहुँची हो (खरोंच, झुलसन, तुषारण)। निर्विलंबता के लिये हाथों का संसाधन अपेक्षाकृत सरल विधि से भी संभव है। हाथों को जल की धार में साबुन से धोते हैं, फिर स्वच्छ तौलिये से पोंछ कर सुखाते हैं। इसके बाद हाथ में रूई या गजी का एक टुकड़ा लेते हैं, उस पर 5-7 मिलिलीटर कोई कसैला (कषकारी) या निष्पैठक घोल ढालते हैं और इससे एक-दो मिनट तक उंगलियों, हथेलियों, उनके पीछे और कलाइयों को रगड़-रगड़ कर पोंछते हैं।

चर्म के कषण के लिये एथिल अल्कोहल, आयडीन का स्पीरिट में 5 प्रतिशतीय घोल, या तानिन का 5 प्रतिशतीय घोल प्रयुक्त हो सकता है। निष्पैठन के लिये: फेनोल (कार्बोलिक अम्ल) का प्रतिशतीय घोल, पारद क्लोराइड का 1 : 1000 के अनुपात में घोल, डायोसाइड (डिओसीद) का 1 : 5000 के अनुपात में घोल (ethonol mercuric chloride), ख्लोरोमीन B का 0.5 प्रतिशतीय घोल, या देग्मीन का 1 प्रतिशतीय घोल। यदि निष्कीटित दस्ताने हैं तो उन्हें अनिष्कीटित हाथों पर पहना जा सकता है। प्राथमिक उपचार की प्रक्रिया में हाथ के दूषित होने पर उपरोक्त निष्पैठक घोलों में से किसी से हाथ दुबारा पोंछा जा सकता है।

अध्याय 2

पट्टी बांधने की तकनीक (पट्टोर्जन)

शरीर के किसी अंग पर निष्कीटित रूप से बांधी गयी परिधानिक सामग्री को पट्टी कहते हैं। अधिकांशत: पट्टी घाव को ढकने, उसमें पंटन रोकने और उसमें रक्तस्राव रोकने के लिये बांधी जाती है।

पट्टोर्जन (desmurgia) आयुर का एक क्षेत्र है, जिसमें पट्टियों के प्रकारों, उन्हें बांधने की रीतियों और उद्देश्यों का अध्ययन होता है।

उद्देश्य के अनुसार पट्टियां निम्न प्रकार की होती हैं: साधारण (रक्षी) पट्टी–घाव को सूखने और यांत्रिक क्षोभों से बचाने वाली; दाबी पट्टी–शरीर के किसी क्षेत्र पर स्थिर दाब उत्पन्न करने वाली (सामान्यत: रक्तस्राव रोकने के लिये प्रयुक्त होती है); निश्चलकारी पट्टी–क्षत अंग में आवश्यक निश्चलता उत्पन्न करने वाली; कर्षक पट्टी–किसी अंग को खींच कर रखने वाली; अवरोधक पट्टी–शरीर में किसी कोटर को हर्मेटिक रूप से बंद करने वाली; सुठिकारी पट्टी–किसी अंग की गलत स्थिति को ठीक करने वाली। इस प्रकार, रोगी की चिकि-

त्सा में पट्टी का (विशेषकर प्राथमिक उपचार के समय लगायी गयी पट्टी का) बहुत बड़ा महत्व है।

पट्टी की प्रकृति के अनुसार वे मुलायम और कठोर होती हैं। मुलायम पट्टियों में निम्न की गणना होती है: गजी की लचकदार, जालीदार, प्रत्यास्थ जालीदार नलीनुमा पट्टियों की; सूती (गफ) कपड़े की। कठोर पट्टियों में कठोर सामग्रियां (लकड़ी, धातु) प्रयुक्त होती हैं, या ऐसी सामग्रियां, जो जम कर ठोस हो जाती हैं, जैसे —पेरिस का प्लास्टर, विशेष प्रकार के प्लास्टिक, स्टार्च, गोंद।

प्राथमिक उपचार में सभी प्रकार की मुलायम पट्टियां प्रयुक्त होती हैं; कठोर पट्टियों में से अधिकांशतः खपचियों का उपयोग होता है।

मुलायम पट्टियां

मुलायम पट्टियां बहुविध हैं। अधिकांशतः इनका उपयोग घाव या पीड़ाकेंद्र के क्षेत्र पर परिधानिक सामग्री (गजी, रूई) और औषधीय प्रसाधन को अपनी जगह पर रोके रखने के लिये होता है।

शरीर के साथ पट्टी जड़ने की रीति के अनुसार निम्न प्रकार की पट्टियां होती हैं: चिपकदार, तिकोण रूमाल जैसी गलपट्टी, चौपुच्छी, साकृतिक फीतानुमा।

चिपकदार पट्टियां मुख्यतः बाह्य परिवेश की अभिक्रिया से घाव की रक्षा के लिये लगाते हैं। ऐसी पट्टी को
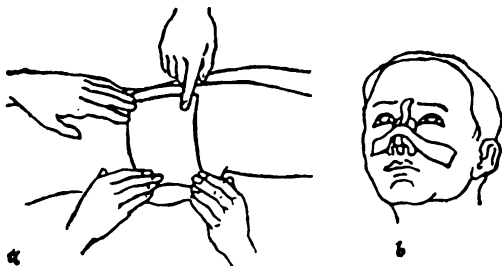
चित्र 4. चिपकदार पट्टियां। (a) क्लेग्रोल की पट्टी; (b) संसंजक प्लास्टर की पट्टी।

परिधानिक सामग्री (रूई, गजी) पर रख कर घाव के गिर्द त्वचा के साथ चिपका देते हैं। चिपकाने में विभिन्न प्रकार के गोंद (क्लेग्रोल, कोलोडिग्रोन) व चिपकदार प्लास्टर का उपयोग हो सकता है। क्लेग्रोल की पट्टी लगाने की तकनीक बहुत सरल है। घाव पर गजी की कुछ परतें रख देते हैं और उनके गिर्द त्वचा पर पतली गोल धारी के रूप में क्लेग्रोल की एक परत लेप देते हैं। गजी के एक टुकड़े को तान कर गोंद से चिपकाते हैं और कुछ देर तक पकड़े रहते हैं। गजी का टुकडा त्वचा के साथ अच्छी तरह चिपक जाता है (चित्र 4b)।

कोलोडिग्रोन की पट्टी को नन्हीं छोलनी (स्पैचुला) से गजी के चौरस टुकड़े पर लगाते हैं। परिधानिक सामग्री को चिपकदार फीते के टुकड़ों से भी अपनी जगह पर स्थिर कर सकते हैं। चिपकदार फीते के टुकड़ों से खपरैल जैसी

अवरोधक पट्टी वक्ष के बेधक घाव पर प्रयुक्त होती है।

घाव की सतह को ढकने के लिये बाक्तेरीमारक चिपकदार फीता का भी उपयोग होता है, जिसकी भीतरी (अर्थात् घाव के ओर की, निचली) सतह पर प्रतिसृपक प्रसाधन लगा होता है। इन फीतों में सूक्षम रंध्र होते हैं, जिनके कारण चर्म का मसृणन (तरल पदार्थ की अभिक्रिया से ठोस पदार्थ का मुलायम होना; यहां पर: रिसाव आदि के कारण चर्म का मुलायम होना) नहीं हो पाता और इससे घाव भरने की प्रक्रिया में व्यवधान नहीं पहुँचता।

तिकोण पट्टियां समकोण त्रिभुज के आकार में काटे गये या तह लगाये गये कपड़े के टुकड़े से बनती हैं। इन्हें पिनों, सेफ्टीपिनों की सहायता से जड़ते हैं या इनके छोरों को आपस में बांध कर।

औद्योगिक स्तर पर मानक परिमाप की तिकोण पट्टियों का उत्पादन होता है– $135 \times 100 \times 100$cm के आकार में। ये आयुरी बैगों के लिये मोड़ कर संपीडित रूप में उत्पादित होते हैं, जिससे इनकी आकृति $5 \times 3 \times 3$cm आकार के प्रिज्म की तरह लगती है। तिकोण पट्टियों की सहायता से (विशेषकर यदि वे अधिक संख्या में हों) शरीर के किसी भी क्षेत्र पर विश्वसनीय रूप से पट्टी बांधी जा सकती है (चित्र 5)।

चौपुच्छी पट्टी चौड़ी फीतानुमा पट्टी से या गजी के 75-80cm लंबे टुकड़े से बनायी जा सकती है। पट्टी को दोनों तरफ से एक-दूसरे की सीध में अनुतीर रूप से काटते

हैं, लेकिन इस तरह कि ये कटानें आपस में मिलें नहीं, बीच में 15-20cm जगह छूटी रहे। इस अकर्तित हिस्से को शरीर के आवश्यक क्षेत्र पर रखते हैं (अनुप्रस्थ दिशा में)। हर तरफ की कटी किनारियों को इस तरह क्रौस करते हैं कि निचली किनारी ऊपर आ जाये और ऊपरी –नीचे। फिर उन्हें अंग के पीछे ला कर सानुरूप किनारियों को आपस में बांध देते हैं।

नाक और ऊपरी होंठ पर ऐसी पट्टी बांधने के लिये दो किनारियों को कानों के ऊपर से गुजार कर पश्च कपाल पर बांधते हैं और दो (निचली) किनारियों को कानों के नीचे से गुजार कर गरदन पर बांधते हैं (चित्र 6a)।

ठुड्डी (हनु) पर पट्टी बांधने के लिये निचली किनारियों को कानों के सामने से गुजारते हुए शीर्ष पर बांधते हैं और निचली किनारियों को कान के नीचे से गुजार कर पश्च कपाल पर क्रौस कराते हैं और कनपटी पर से गुजारते हुए ललाट पर लाकर बांधते हैं (चित्र 6b)।

कपाल (खोपड़ी) का गुंबद टूटने पर भी चौपुच्छी पट्टी का उपयोग होता है (चित्र 6c, d)।

साकृतिक पट्टी ढके जाने वाले अंग की आकृति के अनुसार कपड़े से काट कर बनायी जाती है। इसकी किनारियों पर पतले-पतले फीते सी दिये जाते हैं, जिनके सहारे पट्टी स्थिर की जाती है (चित्र 7a, b)

कपड़े की टेकदायक पट्टियां (चारों तरफ से घेर कर और दबा कर रखने वाली पट्टियां) भी इसी श्रेणी में आती हैं; इनमें बटन या फीते लगे होते हैं। इनका उप-

a
b
c
d
e
f
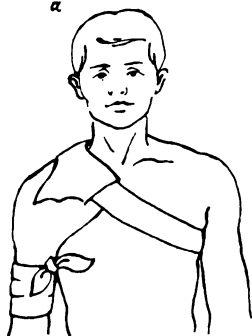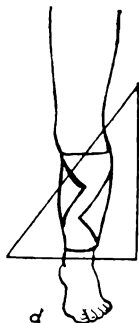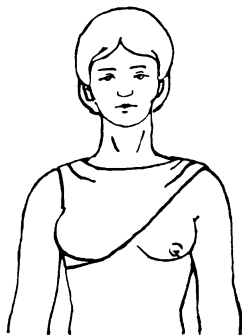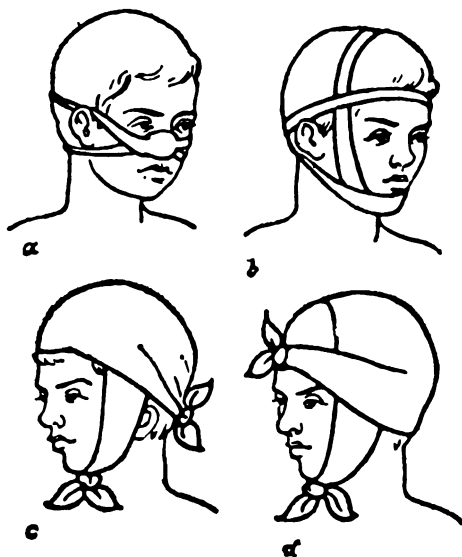
चित्र 6. चौपुच्छी पट्टी या गलपट्टी। (a) नाक पर; (b) ठुड्डी पर; (c) पश्च कपाल पर; (d) चांद पर।

←—

चित्र 5. तिकोण रूमाल की पट्टियां। (a) सर पर; (b) स्कंध-संधि पर (दो तिकोण रूमालों से); (c) जांघ की संधि पर (दो तिकोण रूमालों से); (d) पिंडली पर; (e) स्तन पर; (f) प्रबाहु और कलाई को टेक देने के लिये।

योग अक्सर उदर-भित्तियों को सहारा देने के लिये होता है (चित्र 7c)।

फीतानुमा पट्टियां भिन्न चौड़ाइयों की होती है। संकरी (5cm तक चौड़ी) पट्टियां छोटे-मोटे अंगों (जैसे उंगलियों) के काम आती हैं; मध्यम चौड़ाई (7-10cm) की पट्टियां प्रबाहु, टांग (घुटने से नीचे टखने तक के भाग), गरदन और सर के लिये प्रयुक्त होती हैं; चौड़ी (20cm तक की) पट्टियां वक्ष, उदर और कूल्हे पर बांधी जाती हैं। गजी की पट्टी लचकदार और सुनम्य होती है, इसीलिये जिस अंग पर बांधी जाती है, सरलतापूर्वक उसकी आकृति के अनुरूप हो जाती है। कारखाने में बनी मानक पट्टियों का उपयोग सबसे सुविधाजनक होता है। यदि ऐसी पट्टी न हो तो गजी के कपड़े से काट कर बनायी जाती है। कपड़े से आवश्यक चौड़ाई की धारियां काट ली जाती हैं, फिर उनके सिरों को आपस में जोड़ कर उन्हें लंबा कर लिया जाता है। इसके बाद उसे बेलन के रूप में लपेट लिया जाता है। समरूप चौड़ाई की धारियां काटने के लिये गजी को पहले एक छड़ पर कस कर लपेट लेते हैं, फिर छड़ भीतर से खींच कर निकाल लेते हैं और गजी के "बेलन" को तेज चाकू से आवश्यक चौड़ाई पर से काट लेते हैं।

व्यष्टिक परिधानिक पैकेट सिर्फ एक बार सिर्फ एक आदमी के काम आ सकता है। इसमें पट्टी तैयार रहती है और यह प्राथमिक उपचार के लिये बहुत उपयोगी होती है (चित्र 8)। पैकेट पूरी तरह निष्कीटित रूप में उत्पा-

दित होता है। घाव पर इसका उपयोग सभी प्रकार की परिस्थितियों में किया जा सकता है। इसमें बेलन की तरह लपेटी हुई पट्टी होती है, जिसके मुक्त सिरे पर रूई-गजी का तकिया (पुल्टिस) सिला होता है। "बेलन" और तकिये के बीच पट्टी पर रूई-गजी की दूसरी पुल्टिस भी होती है, जिसे किसी भी दिशा में खिसकाया जा सकता है। परिधानिक सामग्री के अतिरिक्त पैकेट में पिन और स्पीरिट में आयडीन के घोल का एक ऐंपुल भी होता है। यह सारा सामान मोमी कागज और रबड़कृत कपड़े की थैली में बंद होता है, जिससे पैकेट लंबे समय तक निष्कीटित अवस्था में रह सकता है।

पैकेट का उपयोग करते वक्त मुख्य नियमों को ध्यान में रखना चाहिये: सामग्री की उस सतह को हाथ से नहीं छूना, जिसे घाव पर रखा जाता है। पैकेट को बायें हाथ में लेते हैं, दायें हाथ से रबड़कृत थैली के कटे हुए स्थल को पकड़ कर झटके से उसे पूरा फाड़ लेते हैं, और उसमें से मोमी कागज में लिपटी परिधानिक सामग्री को निकालते हैं। सावधानी से कागज खोल कर बायें हाथ से पट्टी का मुक्त (बाहरी) छोर और उससे सिले रूई-गजी के तकिये को पकड़ते हैं (उस ओर से, जिधर रंगीन धागे से निशान बना हो), दायें हाथ से पट्टी के "बेलन" को पकड़ कर उसे खोलते हुए दूर करते हैं। इस तरह दोनों हाथों के बीच पट्टी का वह भाग आ जाता है, जिस पर पुल्टिस होते हैं। पुल्टिसों को घाव की सतह पर रख कर पट्टी की लपेटनों से उन्हें स्थिर करते हैं। यदि घाव आर-

चित्र 7. विशेष ग्राकृतियों की पट्टियां। (a) कलाई पर ; (b) गाल ग्रौर निचले जबड़े पर ; (c) पट्टी।
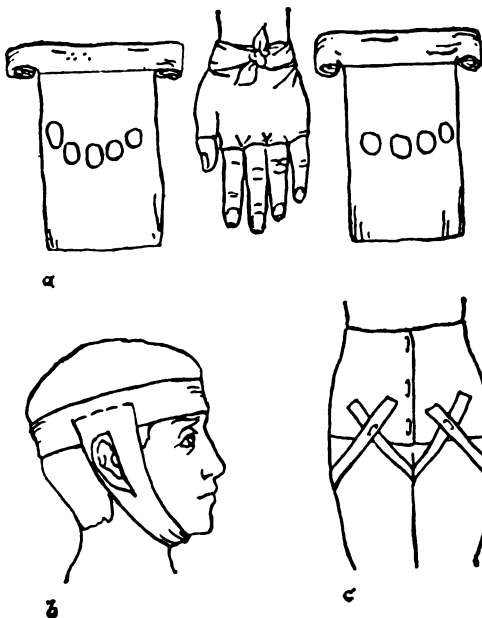
पार लगा है, तो एक पुल्टिस को एक तरफ रखते हैं ग्रौर दूसरी को दूसरी तरफ। पट्टी के दूसरे सिरे को पिन से जड़ देते हैं।

पट्टी बांधने के नियम. पट्टी बांधते वक्त पहले तो ग्राहत को सबसे सुविधाजनक मुद्रा प्रदान करनी चाहिये, जिससे

पीड़ा तीव्र न हो। पट्टी बांधना तब सरल होता है, जब बांध जाने वाला अंग बांधने वाले के वक्ष की ऊँचाई पर होता है। बांधे जाने वाले अंग (विशेषकर हाथ-पैर) को उसी स्थिति में होना चाहिये, जिसमें उसे पट्टी बांधने के बाद रहना है। यथा, कोहनी के पास हाथ को बिल्कुल सीधा करके कोहनी पर पट्टी बांधना उपयुक्त नहीं होगा, यदि हाथ को गले से लटकाना है। इसी तरह, घुटने पर पैर को मोड़ कर वहां पट्टी बांधना उपयुक्त नहीं होगा, यदि रोगी को चलना है।

अस्थि-संधि को अपनी जगह पर स्थिर करने के लिये लंबे समय तक पट्टी बांधे रहना पड़ता है, जिससे वहां अंग अकड़ जाता है, या पूरी तरह जाम हो जाता है (वक्रार्त्ति)। इसीलिये पट्टी बांधते वक्त हाथ-पैर को शरीरलोचनी दृष्टि से सबसे लाभप्रद स्थिति प्रदान की जाती है, जिससे पट्टी खोलने के बाद अकड़ को सरलता से दूर किया जा सके या हाथपैर संतोषजनक रूप से काम कर सकें। घुटनों पर पट्टी बांधते वक्त पैर को वहां हल्का सा मुड़ा रखते हैं; गोड़ (उंगलियों से टखने तक के भाग) को पैर के साथ समकोण पर रखते हैं। हाथ पर पट्टी बांधते वक्त उसे कोहनी पर मोड़ कर रखते हैं और कलाई कुछ सीधी रखते हैं। उंगलियों को कुछ मुड़ी हुई स्थिति में रखनी चाहिये, विशेषकर जब अंगूठा को बाकी उंगलियों से विपरीत स्थिति में रखना हो।

पट्टी बांधते वक्त आहत के चेहरे के भावों पर निगरानी रखनी चाहिये, ताकि बांधने वाले के हाथों की
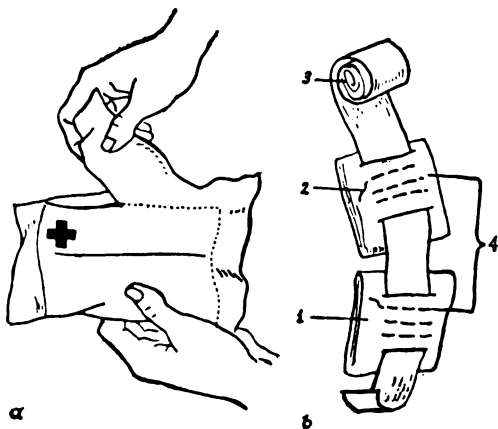
चित्र 8. व्यष्टिक परिधानिक पैकेट। (a) पैकेट खोलना ; (b) पट्टी, फैली स्थिति में ; 1. रूई का स्थिर पैड ; 2. रूई का सुचल पैड ; 3. गजी की पट्टी ; 4. धागा ; विंदु-रेखा दिखाती है कि पट्टी का पैकेट कहां से फाड़ कर खोलना चाहिये।

गति से उसे नयी पीड़ा की अनुभूति नहीं हो। यदि पट्टी से आहत को परेशानी हो रही है, तो लपटनों का कसाव कुछ कम कर देना चाहिये या उनकी दिशा बदलनी चाहिये। पट्टी बांधने में दोनों हाथों का उपयोग करना चाहिये – पट्टी के "बेलन" (रौल) को कभी इस हाथ में लेकर खोलते हुऐ लपेटना चाहिये, तो कभी दूसरे हाथ में (अंग के सापेक्ष "बेलन" की स्थिति के

अनुसार) और इस बीच खाली हाथ से लपेटनों को ठीक करते रहना चाहिये। "बेलन" को बायें से दायीं दिशा में खोलना चाहिये, और इस तरह से कि मानो वह लपेटनों पर लुढ़क रहा हो (चित्र 9)। हर लपेटन से पिछली लपेटन की 1/2 या 2/3 चौड़ाई ढकते जाना चाहिये। पट्टी उन नियमों के अनुसार बांधनी चाहिये, जो अलग-अलग स्थितियों के लिये पहले से अलग-अलग निर्धारित किये जा चुके हैं। इससे घाव अच्छी तरह ढक जाता है, पट्टी मजबूती से स्थिर हो जाती है और परिधानिक सामग्री का व्यय भी कम होता है। पट्टी इस तरह नहीं बांधनी चाहिये कि हाथ (या पैर) में रक्त-संचार में रुकावट हो; इसके निम्न लक्षण हैं: पट्टी के नीचे त्वचा का पीला पड़ना, नीलापन होना, सुन्नता या स्पंदमान पीड़ा की अनुभूति। इस तरह की पट्टी को तुरंत ठीक करनी चाहिये या नयी पट्टी लगानी चाहिये। पट्टी के सिरे को बांधने का या उसे पिन से जड़ने का काम अंग के स्वस्थ भाग पर करना चाहिये।

पट्टी की लपेटनों के मुख्य प्रकार. वृत्ताकार पट्टी में सभी लपेटनें एक ही जगह एक के ऊपर एक होती हैं। अधिकांशतः यह कलाई, टांग के निचले तिहाई, पेट, गरदन और ललाट पर लगाई जाती है।

सर्पिल लपेटनों का उपयोग तब होता है, जब अंग के काफी बड़े क्षेत्र को ढकना होता है। इसमें लपेटनें थोड़ी तिरछी चलती हैं और पिछली लपेटन की 2/3 चौड़ाई को ढकती जाती है। पट्टी बांधने से पहले शुरू
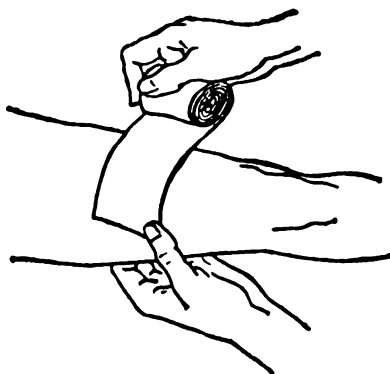
चित्र 9. पट्टी की सही स्थिति।

में कुछेक गोल या वृत्ताकार स्थिरकारी लपेटनें डालते हैं। सर्पिल पट्टी हाथ-पैर के उन भागों पर बांधना सरल होता है, जहां मुटाई समान होती है। प्रबाहु जैसे असमान मुटाई वाले क्षेत्रों पर सभी लपेटनों का कसा होना संभव नहीं होता; पट्टी "फूलने" लगती है। ऐसी स्थिति में "पलटी" लपेटनें डालते हैं (चित्र 10a, b)। पलटने का तरीका निम्न है: जिस जगह पर हाथ का अधिक मोटा भाग शुरू होता है, वहां स्वतंत्र हाथ के अगूंठे से पिछली लपेटन की निचली किनारी को दबाते हैं और पट्टी को इस तरह उलटते हैं कि ऊपरी किनारी नीचे चली आती है। यह कई लपेटनों में दुहराते हैं। हाथ के भागों के व्यास में अंतर जितना ही अधिक

होता है, पलटी पट्टी को उतना ही कस कर लपेटते हैं।

8-ग्राकृति की लपेटनें शरीर के जटिल ग्राकृतियों वाले ग्रंगों पर लपेटने के लिये होती हैं, जैसे टखने ग्रौर कंधे की संधियों पर (चित्र 10g), पश्च कपाल पर, कलाई तथा मूलाधार पर। 8-ग्राकृति की लपेटनों के भेद हैं—बालीनुमा, संसृत एवं ग्रपसृत पट्टियां। बालीनुमा लपेटनों में पट्टी के सभी क्रौसिंग एक सरल रेखा पर ग्रागे बढ़ते रहते हैं (चित्र 10c)। संसृत ग्रौर ग्रपसृत लपेटनों में पट्टी के क्रौसिंग एक ही जगह पर (जैसे ग्रंक 8 की ग्राकृति में) होते हैं ग्रौर लपेटनें धीरे-धीरे मध्य के निकट या उससे दूर खिसकती हुई ग्रंग को ढकती जाती हैं (चित्र 10e, f)।

ग्रावर्ती लपेटनें सिर, हाथ-पैर के सिरों या उंगलियों पर परिधानिक सामग्री स्थिर करने में प्रयुक्त होती हैं। इसमें लपेटनें बारी-बारी से परस्पर लंब तलों पर गुजरती हैं, जिसके लिये पट्टी को समकोण पर मोड़ कर वृत्ताकार लपेटन द्वारा मोड़-स्थल को स्थिर किया जाता है। मोड़ ग्रलग-ग्रलग जगहों पर लगाते हैं, ताकि एक ही स्थल पर ग्रत्यधिक दाब न पड़े (चित्र 10d)।

नलीनुमा जालीदार पट्टियां. ग्रब शरीर के किसी भी ग्रंग पर परिधानिक सामग्री को स्थिर करने के लिये एक नये प्रकार की पट्टियां मिलने लगी हैं—ग्रायुर में उपयोग के लिये प्रत्यास्थ नलीनुमा जालीदार पट्टियां। ये सूती ग्रौर संश्लिष्ट (प्रत्यास्थ, लमड़ने वाले धागों को मिलाकर बुनी हुई नलियां या खुली ग्रास्तीनें)

a
b
c
1
2
7
3
4
5
6
d
g
e
f
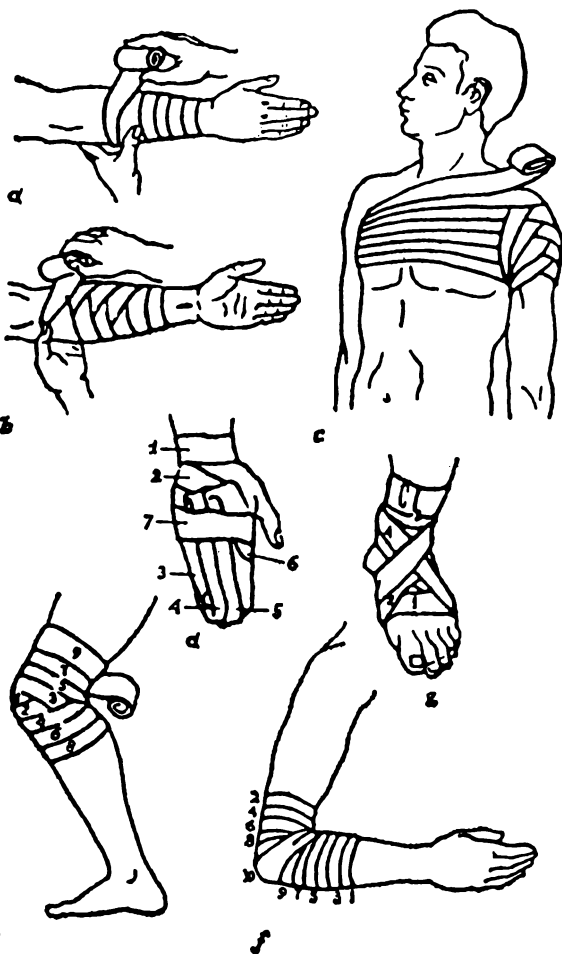
होती हैं। ये पट्टियां काफी हद तक लमड़ायी जा सकती हैं, इसीलिये ये शरीर के किसी भी अंग पर (यहां तक कि जटिल आकृति के अंगों पर भी) सब ओर से अच्छी तरह चिपक जाती हैं; ये रक्त-संचार में अवरोध भी नहीं डालतीं और संधियों में गति को व्यवधानित या सीमित भी नहीं करतीं।

पट्टी को काटने पर इसकी बनावट उधड़ती नहीं है। धोने और औटोक्लेव में 1.2 वातदाब पर आधे घंटे तक निष्कीटन से धागों की प्रत्यास्थता पूर्ववत बनी रहती है।

नलीनुमा जालीदार पट्टियों के प्रयोग से पट्टी बांधने में जो समय लगता है, उसकी बचत होती है। इन पट्टियों को लगाने की विधि निम्न है: नली में किसी सिरे से दोनों हाथों की उंगलियां घुसाते हुए उसे आवश्यक अंग पर पहना देते हैं। हाथ या उंगलियां निकाल लेने पर पट्टी संकुचित होकर शरीर पर सब ओर से अच्छी तरह चिपक जाती है और परिधानिक सामग्री (मलहम लगी रूई, टैंपन आदि) को विश्वसनीय रूप से

चित्र 10. पट्टियों की लपेटनों के मुख्य प्रकार। (a) सर्पिल लपेटनें, पलटनों के साथ; (b) पलटनों के साथ सर्पिल लपेटनें – प्रबाहु पर; (c) स्कंध-संधि पर बाली की आकृति वाली या बालीनुमा पट्टी; (d) कलाई पर संसृत लपेटनें; (e) घुटने पर अपसृत लपेटनें; (f) कोहनी पर संसृत लपेटनें; (g) टखने पर 8 की आकृति में लपेटनें। चित्रों में संख्याओं से लपेटनों का क्रम दिखाया गया है।
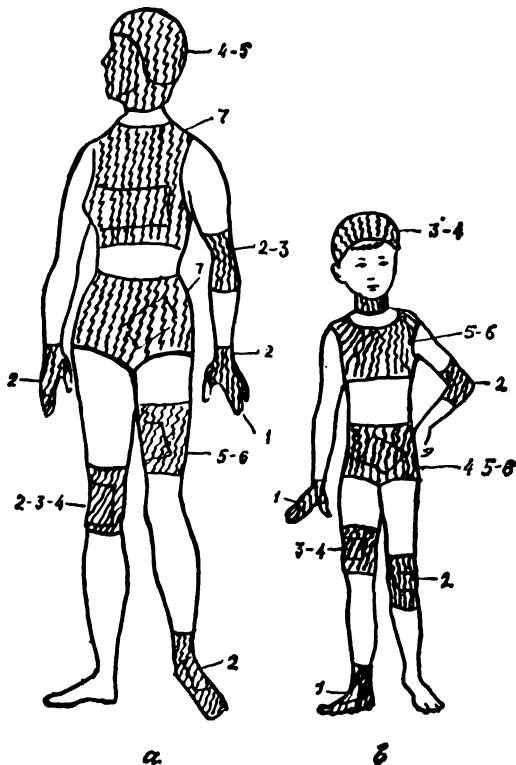
चित्र 11. नलीनुमा जालीदार पट्टियों के विभिन्न उपयोग ; पट्टियों के नंबर : (a) बड़ों के लिये ; (b) बच्चों के लिये ।

अपनी जगह पर स्थिर रखती है।

सोवियत संघ में नलीनुमा जालीदार पट्टियां सात परिमापों में मिलती हैं (न. 1 से न. 7 तक की), जो शरीर के विभिन्न अंगों के आयतन के अनुकूल होती हैं (चित्र 11)। पट्टी न. 1 उंगलियों, पूरी हथेली, बच्चे के गोड़ और हथेली पर लगायी जा सकती है (स्वतंत्र अवस्था में नली का व्यास 10 मिलीमीटर होता है)। पट्टी न. 2 (स्वतंत्र व्यास 17 मिलीमीटर) – हस्तपुच्छ (उंगलियों समेत हथेली), प्रबाहु, कलाई, गोड़, कोहनी, टखने आदि पर लगायी जा सकती है। न. 3 और 4 (व्यास क्रमशः 28 व 30 मिलीमीटर) – बड़ों की प्रबाहु, बाँह, पिंडलियों और घुटनों, बच्चों की जांघों और सर पर। न. 5 और 6 (व्यास क्रमशः 35 व 40 मिलीमीटर) – बड़ों के सर व जांघों पर, बच्चों के वक्ष, पेट, कूल्हे और मूलाधार पर। न. 7 (व्यास 50 मिलीमीटर) – बड़ों के वक्ष, पेट, कूल्हे व मूलाधार-क्षेत्र पर।

ये पट्टियां अम्लों, क्षारों, तेलों की अभिक्रिया से नष्ट हो जाती हैं। इन्हें साबुन के फेन में फींचते हैं, इन्हें निचोड़ना अवांछनीय है।

अंगों पर मुलायम पट्टियां बांधने की तकनीक

सर पर पट्टी. सर पर बालों वाले हिस्से को ढकने के लिये अधिकांशतः टोपीनुमा लपेटनें डालते हैं (चित्र
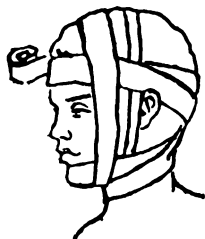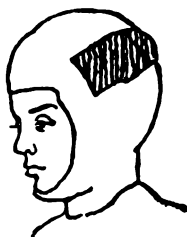
a
b
c
d
e
f
g
h

12a), जो काफी सरल और विश्वसनीय है। 1 मीटर तक लम्बी सँकरी पट्टी के एक टुकड़े को सर के शिखर पर इस तरह रखते हैं कि उसके सिरे कानों के पास से लटके रहें। आहत खुद या कोई अन्य सहायक व्यक्ति इस पट्टी के सिरों को तान कर पकड़े रहता है। यह छोटी पट्टी मुख्य बड़ी पट्टी को लपेटने के बाद उसे बांधने के काम आती है, ताकि वह स्थिर रहे। सर के गिर्द, ललाट और पश्च कपाल से होते हुए बड़ी पट्टी की दो वृत्ताकार लपेटनें डालते हैं। तीसरी बार उसे कान तक ला कर छोटी पट्टी के गिर्द लपेट कर पश्च कपाल से होते हुए दूसरे कान के पास छोटी पट्टी के दूसरे सिरे के पास लाते हैं; इसके बाद इसे कनपटी और ललाट पर से गुजारते हुए छोटी पट्टी के पहले सिरे के पास लाते हैं और पुनः उसके गिर्द लपेट कर बड़ी पट्टी को पश्च कपाल पर से इस तरह गुजारते हैं कि पिछली लपेटन की 2/3 चौड़ाई ढकती चली जाये। इसी तरह पट्टी को एक बार पश्च कपाल की तरफ से और एक बार ललाट की तरफ से लाते हुए पूरा सर ढक देते हैं। बड़ी

चित्र 12. सर पर पट्टियां। (a) टोपीनुमा पट्टी; (b) पलटनयुक्त लपेटनों वाली टोपीनुमा पट्टी; (c) आँख पर पट्टी; (d) दोनों आँखों पर पट्टी; (e) कान और पश्च कपाल पर पट्टी; (f) पश्च कपाल और गले पर पट्टी; (g) ठुड्डी और निचले जबड़े पर पट्टी; (h) कपाल और गरदन पर नलीनुमा जालीदार पट्टी। चित्र में पट्टियां लपेटने के क्रम दिखाये गये हैं।

पट्टी का सिरा किसी लपेटन के साथ बांध देते हैं, इसके बाद छोटी पट्टी के सिरों को ठुड्डी के नीचे बांध देते हैं।

टोपीनुमा आवर्ती लपेटनें कम विश्वसनीय होती हैं (चित्र 12b)। ललाट और पश्च कपाल से होकर सर के गिर्द दो वृत्ताकार लपेटनें डाल कर पट्टी को स्थिर कर लेने के बाद उसे सामने लाकर मोड़ते हैं और सर का पार्श्व हिस्सा ढकते हैं। पीछे लाकर पट्टी को पुनः मोड़ते हैं और सर की दूसरी पार्श्व सतह को ढकते हैं (मोड़ के स्थल को उपचारकर्ता का सहायक पकड़े रखता है)। इसके बाद एक वृत्ताकार लपेटन से इन दोनों मोड़-स्थलों को दबा देते हैं। अब पूरी प्रक्रिया पुनः दुहराते हैं और हर बार पार्श्व सतहों का कुछ अधिक हिस्सा ढकते हुए लपेटनों को सर के मध्य की ओर खिसकाते रहते हैं। इस तरह की लपेटनें दो पट्टियों की सहायता से अधिक सरलतापूर्वक डाली जा सकती हैं: एक पट्टी से सिर्फ वृत्ताकार लपेटनों द्वारा मोड़ों को दबाने का काम करते हैं और दूसरी से क्रमशः सर की सारी सतह ढकते हैं।

आँख पर पट्टी बांधना ललाट और पश्च कपाल से होते हुए वृत्ताकार लपेटन से शुरू करते हैं। दूसरी लपेटन को पश्च कपाल के क्षेत्र में काफी नीचे गरदन पर से गुजारते हैं और कान के नीचे से हो कर आंख के क्षेत्र को पार करते हुए ललाट पर लाते हैं। तीसरी लपेटन वृत्ताकार (स्थिरकारी) होती है। अगली लपेटन फिर तिरछी होती है: पश्च कपाल से होते हुए उसे कान के

ऊपर से आँख और ललाट से ऊपर गुजारते हैं। हर तिरछी लपेटन पिछली से कुछ ऊपर खिसकी रहती है और इस तरह पूरी आँख को ढक लेती है। पट्टी बांधना वृत्ताकार लपेटनों से समाप्त करते हैं (चित्र 12c)। बायीं और दायीं आँख पर पट्टियां डालने की रीतियां कुछ भिन्न होती हैं। दायीं आँख पर पट्टी बांधते वक्त पट्टी को बायीं से दायीं ओर गुजारते हैं, जैसा कि सभी अन्य स्थितियों में करते हैं; लेकिन बायीं आँख पर पट्टी बांधते वक्त उसे दायीं से बायीं ओर गुजारते हैं। दोनों आँखों पर पट्टी डालने के लिये प्रथम तीन लपेटनें वैसे ही डालते हैं, जैसे दायीं आँख पर पट्टी बांधते समय, अर्थात ये लपेटनें तीरछी होती हैं—कान के नीचे से आँख के क्षेत्र से गुजरते हुए ललाट पर जाती हैं। अगली दो लपेटनों से बायीं आँख ढक लेते हैं। इसमें पट्टी ऊपर से नीचे आती है (चेहरे पर), अर्थात दायीं कनपटी से ललाट पर होते हुए आँख के ऊपर से बायें कान के नीचे से गुजरती है, फिर पश्च कपाल के क्षेत्र में वह वृत्ताकार लपेटन डालती है। अगली लपेटनें दायीं आँख पर डालते हैं और इस तरह पट्टी बांधने का काम संपन्न करते हैं (चित्र 12d)।

कान पर पट्टी (चित्र 12e) बांधने के लिये नेपल्सी लपेटनें सुविधाजनक होती हैं। शुरू करते हैं ललाट और पश्च कपाल के गिर्द वृत्ताकार लपेटन से। अगली लपेटनों को आहत पार्श्व पर धीरे-धीरे नीचे उतारते जाते हैं। कान और चुचुकवत उत्वर्ध (कान

के पीछे स्थित हड्डी का उभार) ढक लेने के बाद पट्टी को वृत्ताकार लपेटनों से स्थिर कर लेते हैं।

पश्च कपाल और गरदन पर पट्टी (चित्र 12f) 8 की आकृति की लपेटनें डालते हैं। पहले सर के गिर्द वृत्ताकार लपेटनें डालते हैं, फिर बायें कान के ऊपर से पश्च कपाल पर नीचे उतारते हुए पट्टी को दायें कान के नीचे से निकाल कर कंठ पर से गुजारते हैं और बायें कान के नीचे से निकाल कर पश्च कपाल पर ऊपर चढ़ाते हुए दायें कान से ऊपर लाते हैं और ललाट के गिर्द लपेटते हैं। लपेटनों के आपस में काटने के स्थलों को धीरे-धीरे खिसकाते हुए पूरे पश्च कपाल को ढक लिया जाता है। यदि गरदन को भी ढकना हो तो, 8-आकृति की लपेटनों के साथ समय-समय पर गले के गिर्द वृत्ताकार लपेटनें भी डालते जाते हैं।

निचले जबड़े पर पट्टी बांधने के लिये तथाकथित "लगामनुमा" लपेटनें विश्वसनीय होती हैं (चित्र 12 g)। पहले सर के गिर्द (ललाट और पश्च कपाल से हो कर) वृत्ताकार लपेटनें डाल कर पट्टी को स्थिर करते हैं। अगली लपेटन नीचे पश्च कपाल से होते हुए विपरीत हिस्से में ले जाते हैं और निचले जबड़े के नीचे से गुजारते हुए उदग्र ऊपर ले जाते हैं और कान के सामने से कनपटी, शीर्ष व ठुड्डी को ढकते हैं। निचले जबड़े को स्थिर कर के अगली लपेटन जबड़े के नीचे से दूसरी ओर तिरछे पश्च कपाल के पार लाते हैं, फिर उसे क्षैतिज वृत्ताकार लपेटन में परिणत कर देते हैं (ललाट

ग्रौर पश्च कपाल पर से होते हुए सर के गिर्द)। निचले जबड़े को पूरी तरह ढकने के लिये पट्टी को पुनः पश्च कपाल पर तिरछा नीचे लाते हैं ग्रौर गरदन की दूसरी तरफ से निचले जबड़े ग्रौर गरदन के दूसरे ग्रर्ध को ढकते हैं। यहां कुछेक क्षैतिज लपेटनें लगाने के बाद पट्टी को ठुड्डी के नीचे से निकाल कर कुछेक उदग्र लपेटनें डालते हैं (कनपटियों ग्रौर शीर्ष से होते हुए)। फिर पट्टी को पीछे से तिरछा ऊपर लाते हुए ललाट के गिर्द वृत्ताकार लपेटनें डालते हुए पट्टी को स्थिर करते हैं।

यदि नलीनुमा जालीदार प्रत्यास्थ पट्टी हो तो इससे सर का कोई भी ग्रंग (ग्रौर चेहरा भी) विश्वसनीय रूप से ढका जा सकता है (चित्र 12h)

नाक, ऊपरी होंठ, ठुड्डी ग्रौर शिरोवल्क को सरलता ग्रौर सुगमता से ढकने के लिये तिकोण रूमाल, चौपुच्छी एवं साकृतिक पट्टियां भी काम ग्राती हैं (चित्र 5, 6, 7)।

<u>हाथ-पैर पर पट्टियां.</u> कलाई ग्रौर हस्तपुच्छ (हथेली से उंगली तक के भाग) पर ग्रक्सर 8 की ग्राकृति में लपेटनें डालते हैं (चित्र 13a)। कलाई ग्रौर उंगलियों के विस्तृत घाव (चोटज क्षति) को ढकने के लिये ग्रावर्ती लपेटनों का उपयोग होता है (चित्र 10d)। पहले पट्टी को कलाई पर वृत्ताकार लपेटनों द्वारा स्थिर करते हैं, फिर हथेली के पीछे से तर्जनी को ढकते हुए उस से हथेली को भी ढकते हैं ग्रौर कलाई तक लाते हैं। कुछेक ग्रावर्ती लपेटनों से पूरी हथेली ग्रौर चार
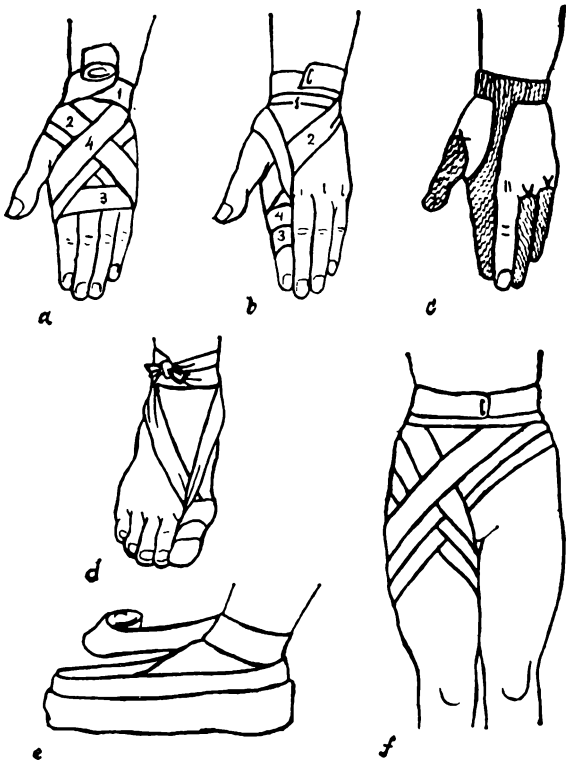
चित्र 13. हाथ और पैर पर पट्टियां। (a) हस्तपुच्छ और कलाई पर पट्टी ; (b) तर्जनी पर ; (c) उंगलियों के लिये नलीनुमा जालीदार पट्टियां ; (d) अंगूठे पर ; (e) गोड़ पर ; (f) जांघ की संधि, नितंब और उदर पर एक पट्टी। चित्र में पट्टियों की लपेटनों का क्रम दिखाया गया है।

उंगलियों को ढकते हैं, फिर इन लपेटनों को सर्पिल लपेटनों से स्थिर करते हैं (उंगलियों के सिरों से कलाई तक) (चित्र 13b)।

एक उंगली पर पट्टी बांधने के लिये पहले कलाई पर कुछेक वृत्ताकार स्थिरकारी लपेटनें लगाते हैं फिर पट्टी को हथेली के पीछे से उंगली के सिरे की ओर ले जाते हैं और उसे सर्पिल लपेटनों से ढकते हुए नीचे ले आते हैं, इसके बाद उसे उंगलियों के बीच से हथेली के पीछे निकाल कर पुनः कलाई पर लाते हैं और वृत्ताकार लपेटनों के बाद स्थिर करते हैं।

प्रबाहु को सर्पिल पट्टियों से लपेटना उत्तम होता है (चित्र 10a)। कोहनी (प्रबाहु और बाँह की संधि) को भी सर्पिल लपेटनों से ढका जा सकता है। हाथ को कोहनी पर थोड़ा मोड़ते हैं। पट्टी लपेटना कोहनी के पास प्रबाहु पर शुरू करते हैं और सर्पिल लपेटनों द्वारा कोहनी तथा बाँह के कुछ अंश को ढक लेते हैं, फिर कुछेक वृत्ताकार लपेटनें लगाकर पट्टी को स्थिर कर देते हैं। यदि कोहनी को मोड़ कर उस पर पट्टी बांधनी हो, तो 8 की आकृति की संसृत लपेटनों का उपयोग होता है (चित्र 10f)।

कंधे पर (चित्र 10c) बहुत जटिल लपेटनों के साथ पट्टी बांधी जाती है। बाँह पर काँख के निकट 3-4 वृत्ताकार लपेटनें लगाते हैं। पाँचवीं लपेटन काँख से निकाल कर पीठ पर से होते हुए फिर वक्ष की ओर से वापिस लाते हैं। छठी लपेटन काँख से हो कर बाँह

के गिर्द डालते हैं (पिछली लपेटन को ग्रंशतः ढकते हुए) ग्रौर सामने की ग्रोर ला कर तीरछा ऊपर संधि के पार ले जाते हैं ग्रौर धड़ के गिर्द लपेटते हुए वापिस लाते हैं। कई एक लपेटनों के बाद कंधे पर की ग्रस्थि-संधि पूर्णतया ढक जाती है।

उंगलियों पर नलीनुमा जालीदार पट्टी न. 1 सुविधा-जनक होती है (चित्र 13c)।

गोड़ (पैर में उंगलियों से लेकर टखने तक के भाग) में सिर्फ ग्रंगूठे पर ग्रलग पट्टी बांधी जाती है (चित्र 13d)। पहले टखने से ऊपर वृत्ताकार लपेटनों से पट्टी को स्थिर करते हैं, फिर गोड़ की ऊपरी सतह पर उसे बढ़ा कर ग्रंगूठे के सिरे तक लाते हैं। ग्रंगूठे को ग्रब सर्पिल लपेटनों से ढकते हुए पट्टी को उंगली की जड़ तक लाते हैं ग्रौर बगल की उंगली के बीच से निकाल कर पुनः टखने पर लाते हैं। यहां पट्टी को वृत्ताकार लपेटनें देने के बाद स्थिर करते हैं।

पूरे गोड़ को बहुत सरल लपेटनों से ढका जा सकता है (चित्र 13d)। पट्टी को गुल्फों (टखने पर दोनों ग्रोर गोल उभरी हड्डियों) से ऊपर वृत्ताकार लपेटनों से स्थिर करने के बाद कुछेक लपेटनें एड़ियों व उंगलियों पर डाली जाती हैं (पूरे गोड़ को घेरते हुए)। इसके बाद उंगलियों के पास से गोड़ पर सर्पिल लपेटनें डालते हुए पट्टी को गुल्फों से ऊपर तक लाते हैं, जहां उसे स्थिरकारी लपेटनों से स्थिर करते हैं।

घुटने पर ग्रपसृत पट्टी उत्तम होती है (चित्र 10e)।

पेट के निचले अर्ध और जांघ की ऊपरी तिहाई पर पट्टी की लपेटनें बहुत सरलता से सरक आती हैं, इसलिये एक मिश्रित रीति का उपयोग होता है (चित्र 13f), जिससे पेट, नितंब और जांघ तीनों ही ढके जाते हैं। कूल्हे की हड्डियों से ऊपर पेट पर कुछेक वृत्ताकार लपेटनें डालते हैं। यदि पट्टी दायीं जांघ पर बांधनी है, तो लपेटनों की दिशा बायीं से दायीं ओर होनी चाहिये, और यदि बायीं जांघ पर बांधनी है, तो–दायीं से बायीं ओर। अंतिम वृत्ताकार लपेटन कमर के क्षेत्र से तिरछा नीचे लाते हैं और त्रिकास्थि, नितंब तथा जांघ की फिरकी (ऊपरी भाग पर अस्थियों के उभार जिनसे जांघ को घुमाने वाली पेशियां जुड़ी होती हैं) से होते हुए जांघ के सामने लाते हैं। इसके बाद पट्टी को तिरछा नीचे ले जाते हैं–जांघ की अग्र एवं मध्य सतह पर; यहां से पट्टी को तिरछा ऊपर जघन (जननेंद्रिय से ऊपर की हड्डी) पर लाते हैं, फिर आगे कूल्हे की हड्डी से ऊपर कर के कमर के गिर्द लपेटते हैं। इसके बाद पिछली तिरछी लपेटन का अनुसरण करते हैं, लेकिन थोड़ा ऊपर खिसका कर। इस तरह बारी-बारी से सर्पिल एवं बालीनुमा लपेटनों की सहायता से जांघ, नितंब, जंघामूल और पेट के निचले भाग पर मजबूती से पट्टी बांधी जा सकती है।

वक्ष पर पट्टी का सरलतम रूप सर्पिल लपेटनों से प्राप्त होता है (चित्र 14a)। पट्टी का 1.5 मीटर लंबा एक टुकड़ा एक कंधे के आरपार लटका लेते हैं।
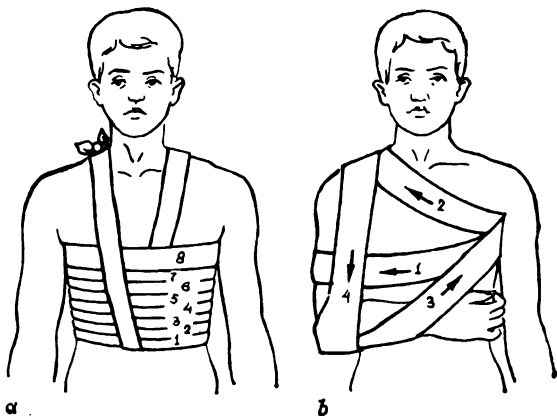
चित्र 14. वक्ष पर पट्टियां। (a) सर्पिल पट्टी; (b) डेजो की पट्टी। चित्र में पट्टियों की लपेटनों का क्रम दिखाया गया है।

वक्ष पर लटकती पट्टी के ऊपर दूसरी पट्टी की सर्पिल लपेटनें नीचे से ऊपर (काँख तक) लगाते हैं। कंधे से लटकती पट्टी के मुक्त सिरों को ऊपर उठा कर दूसरे कंधे पर बांध देते हैं; इससे सर्पिल पट्टी अच्छी तरह स्थिर और निश्चल हो जाती है।

स्कंध-मेखला (पंखुड़ों और हंसुलियों) को और बाँह को वक्ष के साथ स्थिर करने के लिये डेजो (Desault) की पट्टी सबसे अधिक प्रचलित है (चित्र 14b)। इसका उपयोग बाँह या हँसुली टूटने पर या स्कंध-संधि में खसकन की स्थिति में होता है। पट्टी बांधने से पहले

हाथ को कोहनी के पास समकोण पर मोड़ते हैं और काँख में रूई की गद्दी रखते हैं। कुछेक वृत्ताकार लपेटनों से पहले बाँह को वक्ष के साथ सटा कर उसे निश्चल कर लेते हैं। लपेटनों की दिशा स्वस्थ पार्श्व से बांधे जाने वाली बाँह की ओर होती है। अगली लपेटन स्वस्थ पार्श्व की काँख से होकर वक्ष से गुजारते हुए अस्वस्थ पार्श्व के कंधे से पार कराते हैं, पीछे पट्टी को बिल्कुल नीचे लाकर कोहनी के नीचे से उसे सहारा देते हुए पुनः स्वस्थ पार्श्व की काँख से गुजारते हैं। पीठ की तरफ से उसे बीमार कंधे पर लाते हैं और वहां से सामने उदग्र नीचे लाते हैं। कोहनी को उससे सहारा देते हुए उसे पीछे पीठ पर तिरछा स्वस्थ काँख की ओर लाते हैं और पुनः सामने वक्ष की ओर लाते हैं। इसी प्रकार से 2-री, 3-री, 4-थी लपेटनों को कुछेक बार दुहराते हैं, जब तक कि स्कंध-मेखला पूरी तरह स्थिर (निश्चल) नहीं हो जाता। ध्यातव्य है कि डेजो की पट्टी स्वस्थ कंधे से एक बार भी नहीं गुजरती, और पीठ एवं वक्ष पर तिरछी लपेटनें नियमित त्रिभुज बनाती हैं।

वक्ष-पंजर का परिधान नलीनुमा जालीदार पट्टी की सहायता से सबसे सरल होता है। प्रत्यास्थ होने के कारण यह पट्टी परिधानक सामग्री को अच्छी तरह से अपनी जगह पर रोके रहती है और साँस लेने में कठिनाई भी नहीं उत्पन्न करती।

कठोर पट्टियां

पेरिस-प्लास्टर या जिप्स (gypsum) सबसे अच्छी कठोर पट्टी है, जिसे नि. पिरोगोव ने 1854 से प्रयोग में लाना शुरू किया था। इसका चोटलोचन और अंगसोध्रन में हड्डियों के टूटने तथा अनेक अन्य रोगों की चिकित्सा के लिये विस्तृत उपयोग किया जाता है। इसके लिये जिप्स की विशेष पट्टियां या सूखे जिप्स से ढकी पट्टियों का इस्तेमाल होता है। जिप्स की उच्च सुनम्यता (अभिघटक गुणों) के कारण उससे शरीर के किसी भी अंग पर मजबूत स्थिरकारी पट्टी लगायी जा सकती है।

जिप्स एक श्वेत चूर्ण है, जिसमें पानी मिलाने पर वह एक प्लास्टिक (सुनम्य) द्रव्य में परिणत हो जाता है; यह द्रव्य कुछ ही मिनटों में जम कर ठोस हो जाता है। जिप्स की पट्टियों का उत्पादन भी होता है, उन्हें खुद भी तैयार किया जा सकता है।

जिप्स की पट्टी बनाना. टेबुल पर सूखे जिप्स (चूर्ण) की परत फैलाते हैं और उस पर गजी की 2-3 मीटर लंबी पट्टी का एक हिस्सा बिछा देते हैं। उस पर जिप्स की एक और परत डालते हैं फिर हाथ से अच्छी तरह रगड़ते हैं, ताकि जिप्स गजी के रंध्रों में अच्छी तरह पैठ जाये। पट्टी के इस भाग को हल्के से तह लगा कर फिर उसके अगले भाग में जिप्स लगाते हैं।

जिप्स की पट्टियां दो तरह से लगायी जा सकती हैं–

बिना किसी चीज के अस्तर के, सीधे त्वचा पर, या रूई, गजी, कपड़े आदि के अस्तर पर।

लपेटनों के अनुसार जिप्स की पट्टियां वृत्ताकार, लंबी (अंग के चारों ओर सीधी बिछी हुई) या दोनों का मेल होती हैं। सीधी बिछी पट्टियों को वृत्ताकार लपेटनों से स्थिरता प्रदान की जाती है।

जिप्स की पट्टी लगाने की रीति: जब प्रारंभिक तैयारियां पूरी हो जाती हैं (अंग को नंगा कर दिया जाता है, हड्डी टूटने के स्थल पर पीड़ाहरण कर लिया जाता है, हड्डियों के टुकड़ों का मिलाप करा दिया जाता है, अंग को आवश्यक स्थिति प्रदान कर दी जाती है), तब जिप्स की पट्टी को भिगोना शुरू करते हैं। बहगुने में कमरे के तापक्रम पर स्थित पानी की इतनी मात्रा लेते हैं कि पट्टी उसमें पूरी तरह डूब जाये। गैस के बुलबुलों का निकलना बंद होते ही समझना चाहिये कि पट्टी पूरी तरह भीग चुकी है। अब पट्टी को निकालते हैं और दोनों हाथों से सावधानीपूर्वक दबा कर अतिरिक्त पानी दूर करते हैं। पट्टी को किनारे से बीच की दिशा में दबाते हैं, ताकि जिप्स निकल न जाये। पट्टी हाथ (या पैर) के परिसरीय भाग से लगाना शुरू करते हैं।

आवश्यक अंग को वृत्ताकार लपेटनों से क्रमशः ढकते चले जाते हैं। लपेटनें आपस में अच्छी तरह चिपकती जायें और अंग की आकृति के अनुरूप होती जायें, इसके लिये पट्टी को हर समय दबा कर सहलाते रहते हैं और साथ-साथ उसमें थोड़ा-थोड़ा जिप्स भी मिलाते रहते

हैं (इस प्रक्रिया को प्रतिरूपण कहते हैं)। इससे अंग के सभी क्षेत्रों पर पट्टी कस कर बैठ जाती है और विभंजन (अस्थि-भंग) के क्षेत्र को पूर्णतया निश्चल कर देती है।

जिप्स की पट्टियां नियमतः लंबी अवधियों के लिये लगायी जाती हैं (जब तक टूटी हड्डियां जुड़ न जायें)। समय से पहले उन्हें तभी हटाया जाता है, जब वे टूटने लगती हैं या दूसरी पट्टी की आवश्यकता होती है।

जिप्स की पट्टी लगाने के लिये विशेष परिस्थितियां होनी चाहियें और उसके पूरी तरह सूखने में कई घंटे लगते हैं, इसीलिये प्राथमिक उपचार में जिप्स की पट्टियों का उपयोग व्यवहारतः नहीं होता है। कभी-कभी अनावासी चिकित्सालय में जिस व्यक्ति को जिप्स की पट्टी लगायी जाती है (जैसे प्रबाहु और कलाई पर) उसे भी प्राथमिक उपचार की जरूरत पड़ सकती है। यदि पट्टी बहुत कस कर लगती है, तो हाथ (या पैर) शोफित होने लगता है, ऐसी भी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, जब नर्व और रक्तवाही कुंभियां दबने लगती हैं, जो विशेष खतरनाक होता है। इससे हाथ या पैर का विगलन शुरू हो जाता है। इस स्थिति का पता दो बातों से चलता है: एक तो हाथ (या पैर) में पीड़ा बढ़ती चली जाती है और दूसरे – जिप्स की पट्टी से नीचे अंग ठंडा होने लगता है। इन क्लिष्टताओं के उत्पन्न होने पर आहत को तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिये। यदि यह संभव नहीं हो या परिवहन में काफी

ग्रधिक समय (1-2 घंटे से ग्रधिक) लगने का डर हो, तो पट्टी को काट देना चाहिये ग्रौर उसे निकाले बगैर उसके ऊपर से साधारण गजी की पट्टी सर्पिल लपेटनों से बांध देनी चाहिये।

ऐसी कठोर पट्टियों का उपयोग प्राथमिक उपचार में ग्रौर भी कम होता है, जिसमें जमकर ठोस होने वाला द्रव्य गोंद, जेलाटिन या डेक्स्ट्रिन होता है। पिछले समय से निर्विलंब ग्रायुर-सेवा की गाड़ियों में शीघ्र जमने वाले प्लास्टिक का उपयोग होने लगा है। इन प्लास्टिकों की सहायता से बनी खपचियां कठोर एवं ग्रारामदेह होती हैं; इनसे ग्रंग का निश्चलकरण विश्वसनीय होता है।

सभी प्रकार की परिवहन-खपचियां भी कठोर पट्टियों के ग्रंतर्गत ग्राती हैं, जैसे लकड़ी व तार की खपचियां, वातिल (हवा भर कर बनायी हुई) खपचियां, या किसी ग्रन्य सामग्री से कामचलाऊ तौर पर बनायी गयी खपचियां। परिवहन-खपचियां ग्राहत के परिवहन में सहायक होती हैं; इनके बारे में सविवरण देखें ग्रध्याय 3।

अध्याय 3

प्राथमिक उपचार के सामान्य सिद्धांत

दुर्घटना, हठात बीमारी का आक्रमण अक्सर ऐसी परिस्थितियों में होता है, जब आवश्यक दवाएं, मरहम पट्टी के सामान, पर्याप्त प्रकाश, कुशल सहायक, परिवहन के समय टूटे अंग को निश्चल करने के लिये सामग्रियों का सर्वथा अभाव होता है। ऐसी स्थिति में सब कुछ प्राथमिक आयुरी सहायता (प्राथमिक उपचार) करने वाले व्यक्ति की सक्रियता और प्रत्युत्पन्नमतित्व पर ही निर्भर करता है कि वह आहत या अचानक बीमार पड़े व्यक्ति की जीवन-रक्षा में उपलब्ध युक्तियों का कहां तक विवेकसंगत उपयोग कर सकता है। इसके लिये क्षति और रोग के लक्षणों का, प्राथमिक उपचार के सिद्धातों का ज्ञान होना चाहिये।

प्राथमिक आयुरी सहायता करते वक्त निम्न सिद्धांतों का पालन करना चाहिये :

(1) उपचारकर्त्ता के सभी कार्य युक्तिसंगत, सुनियोजित, निर्णायक, द्रुत और साथ ही शांतिपूर्ण (बिना हड़बड़ी के) होने चाहिये।

(2) पहले परिस्थितियों का मूल्यांकन करना चाहिये और क्षतिकारी घटकों की अभिक्रिया से आहत को मुक्त करने का उपाय करना चाहिये (जैसे डूबते को पानी से, जल रहे व्यक्ति को आग से, दम घुटते व्यक्ति को गैस भरे घर से निकालना, यदि कपड़े जल रहे हैं, तो उन्हें बुझाना, आदि)।

(3) आहत की अवस्था का शीघ्रता से मूल्यांकन करना। इसमें दुर्घटना या रोग के आक्रमण की परिस्थितियों का, चोट लगने के समय और स्थान का ज्ञान सहायक होता है। यह विशेष कर उन परिस्थितियों में महत्त्वपूर्ण होता है, जब आहत बेहोश होता है। आहत के निरीक्षण से यह निर्धारित करते हैं कि वह जीवित है या मृत है, चोट की गंभीरता निर्धारित करते हैं, देखते हैं कि रक्तस्राव हुआ था या नहीं, अभी भी जारी है या नहीं।

(4) आहत के निरीक्षण के आधार पर प्राथमिक उपचार की युक्तियां और उनका क्रम निर्धारित करते हैं।

(5) मूर्त्त परिस्थितियों और संभावनाओं के आधार पर यह स्पष्ट करते हैं कि प्राथमिक उपचार में किन साधनों की आवश्यकता है; उन्हें प्राप्त किया जाता है।

(6) प्राथमिक उपचार करते हैं तथा आहत को परिवहन के लिये तैयार करते हैं।

(7) आहत को अस्पताल या किसी चिकित्सा-प्रतिष्ठान तक ले जाने के लिये परिवहन का प्रबंध करते हैं।

(8) अस्पताल रवाना होने से पहले आहत या अचानक रुग्न हुए व्यक्ति का निरीक्षण करते हैं।

(9) प्राथमिक उपचार में उपलब्ध संभावनाओं का अधिकतम उपयोग दुर्घटना-स्थल पर ही नहीं, वरन राह में भी करते हैं।

<u>जीवन और मृत्यु के लक्षण ज्ञात करना</u>. गंभीर चोट से, बिजली के करेंट से, डूबने, दम घुटने, विषाक्त होने तथा कई आकस्मिक रोगों से ग्रस्त होने पर बेहोशी हो जा सकती है; इस अवस्था में व्यक्ति गतिहीन (निश्चेष्ट) लेटा रहता है, प्रश्नों का उत्तर नहीं देता, आस पास के लोगों के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाता। यह केंद्रीय नर्वतंत्र, (विशेषकर मस्तिष्क) के कार्य में गड़बड़ी से होता है।

मस्तिष्क के कार्य में गड़बड़ी निम्न स्थितियों में संभव है (बेहोशी के कारण):

(1) सीधे मस्तिष्क में चोट (झर्झन, धमसन, कुचलन, प्रमस्तिष्क से रक्तस्राव, विद्युघात) या आगरण (विषाक्रांति), जिसमें अल्कोहल से आगरण भी शामिल है।

(2) मस्तिष्क में रक्त की आपूर्त्ति में गड़बड़ी (बहुत ज्यादा रक्त के बह जाने, मूर्छा, हृदय के रुकने या उसके कार्य में गंभीर गड़बड़ी होने से)।

(3) शरीर में आक्सीजन की कमी (दम घुटने, डूबने, वक्ष के किसी बहुत भारी चीज से दबने के कारण)।

(4) रक्त में ग्राक्सीजन से सांद्र होने की क्षमता में कमी (ग्रागरण, शरीर में द्रव्य-विनिमय की गड़बड़ी से, जैसा कि मधुमेह या तेज ज्वर में होता है)।

(5) शरीर का बहुत ठंडा या बहुत गर्म होना (तुषारण, ऊष्माघात, कुछ रोगों में ग्रतिताप के कारण)।

प्राथमिक उपचारकर्त्ता को शीघ्रता से बेहोशी ग्रौर मृत्यु में साफ-साफ ग्रंतर करना ग्राना चाहिये। जीवन के ग्रल्पतम लक्षणों के मिलते ही प्राथमिक उपचार (विशेषकर संजीवन-कार्य) शुरू कर देना चाहिये।

जीवन के लक्षण निम्न हैं:

(1) हृदय की धड़कन। वक्ष पर बायें चुचुक के क्षेत्र में हाथ से या कान लगा कर सुनने से इसका पता लगता है।

(2) धमनियों में स्पंदन की उपस्थिति। इसका पता गले पर ग्रैव धमनी, कलाई पर रश्मिक धमनी या जंघामूल पर ऊरुक धमनी को छू कर लगाया जा सकता है (चित्र 15)।

(3) साँस का चलना। साँस का पता वक्ष एवं उदर के उठने-बैठने की गति से, नाक के पास रखे दर्पण के भफाने से या नाक के छेदों के पास रखे गये रूई के फाहे की गति से लगता है (चित्र 16)।

(4) प्रकाश के प्रति ग्राँख की पुतली (कनीनिका) की प्रतिक्रिया। यदि ग्राँख पर प्रकाश का पुंज (जैसे टार्च से) डाला जाये, पुतली का संकोचन होता है;
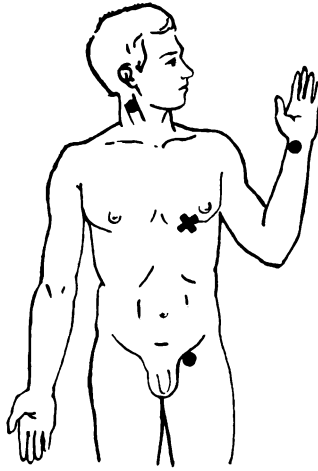
चित्र 15. धमनी-स्पंद निर्धारित करने के स्थल बिंदुओं से दर्शाये गये हैं; हृदय की धड़कन गुणा के चिन्ह वाले स्थल पर सुनी जा सकती है।

चित्र 16. दर्पण और रूई के फाहे की सहायता से जीवन के लक्षण निर्धारित करना।

यह पुतली की धनात्मक या सकारात्मक प्रतिक्रिया है। दिन के प्रकाश में इस प्रतिक्रिया की जाँच निम्न विधि से हो सकती है: कुछ समय तक आँखों को हथेलियों से ढके रखते हैं, फिर उन्हें तेजी से हटा लेते हैं; इस क्षण पुतलियों का सिकुड़ना देखा जा सकता है (चित्र 17)।
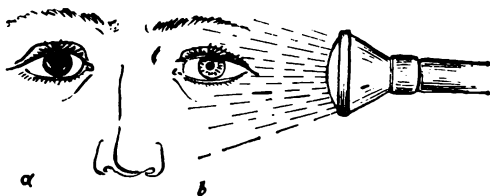
चित्र 17. प्रकाश पर पुतलियों की प्रतिक्रिया निर्धारित करना।

जीवन-लक्षणों की उपस्थिति इस बात का संकेत है कि शीघ्रातिशीघ्र संजीवन-कार्य आरंभ किया जाये।

स्मरणीय है कि हृदय की धड़कन, नाड़ी में स्पंदन, श्वास और प्रकाश के प्रति पुतलियों की प्रतिक्रिया की अनुपस्थिति आहत की मृत्यु का प्रमाण नहीं है। ये लक्षण-समूह तात्पिक मृत्यु की स्थिति में भी अवलोकित होते हैं (दे. आगे), जिसमें आहत की पूरी-पूरी सहायता करनी चाहिये।

मृत्यु के स्पष्ट लक्षण प्रकट होने पर सहायत
है। ये लक्षण निम्न हैं :

(1) आँखों की शृंगिका (शृंगी द्रव्य) एवं शुष्क होना।

(2) "बिल्ली की आँख" का लक्षण–दबाने पर पुतली अपरूपित हो कर बिल्ली जैसी हो जाती है (चित्र 18)।
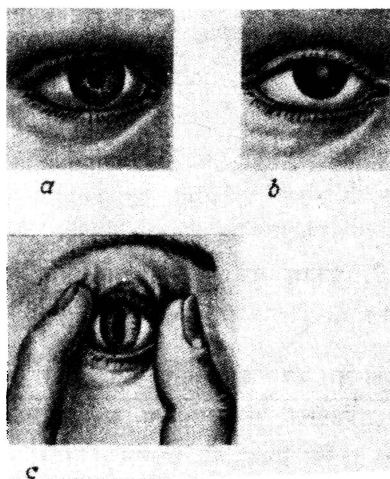
चित्र 18. मृत्यु के स्पष्ट लक्षण। (a) जीर्ा
की आँख ; (b) मृतक की शृंगिका का अपारद
(c) "बिल्ली की आँख" का लक्षण।

(3) शरीर का ठंडा होना और शव-चि

उभरना। ये त्वचा पर नीले-बैंगनी धब्बे हैं। पीठ के बल लेटे शव में ये पंखुड़ों, कमर और नितंबों के क्षेत्र में और पेट लेटे शव में चेहरे, गले, वक्ष और पेट पर उत्पन्न होते हैं।

(4) शव में अकड़न। यह निर्द्वंद लक्षण मृत्यु के 2-4 घंटे बाद उत्पन्न होता है।

प्राथमिक उपचार के समय इसकी रीतियां जानना ही नहीं, बल्कि आहत के साथ सही व्यवहार भी महत्त्वपूर्ण होता है, ताकि उसे और अतिरिक्त चोट न लगे।

रक्तस्राव रोकने, घाव पर पट्टी बांधने, झुलसी सतह को ढकने (तापीय दग्ध में), रासायनिक दग्ध में चर्म का उपचार करने के लिये आहत के वस्त्र उतारने की आवश्यकता होती है।

आहत के वस्त्र उतारने की सही रीति जानना आवश्यक होता है।

हाथों के आहत होने पर वस्त्र पहले स्वस्थ हाथ से उतारना शुरू करते हैं। इसके बाद आहत को हाथ का सहारा देते हुए सावधानी से आस्तीन खींचते हुए वस्त्र उतार लेते हैं। यदि आहत चित लेटा हुआ है और उसे बैठाना संभव नहीं है, तो धड़ के ऊपरी अर्ध और हाथों से वस्त्र उतारने का क्रम निम्न है। धीरे-धीरे कमीज (फ्राक, कोट आदि) सावधानी से गरदन तक खींचते हैं, फिर सर से निकाल कर वक्ष पर लाते हैं। इसके

बाद स्वस्थ हाथ निकालते हैं और अंत में आहत के हाथ पर से आस्तीन सीधी स्थिति में खींच कर निकाल लेते हैं। शरीर के निचले भाग से वस्त्र इसी तरह के क्रम से निकालते हैं। तीव्र रक्तस्राव या गंभीर झुलसन की स्थितियों में वस्त्र उतारते नहीं हैं, उसे काट देते हैं।

यह जानना चाहिये कि घायल होने पर, हड्डी टूटने पर, जलने पर, आहत को झटके लगने से, उसे उलटने या पलटने से (विशेषकर मोच आये हुए या टूटे हुए हाथ या पैर पकड़ कर आहत को हिलाने-डुलाने से) पीड़ा तीव्र हो उठती है, जिससे आहत की सामान्य अवस्था बदतर हो जाती है, अभिघात (सदमा) लग सकता है, हृदय की धड़कन और साँस रुक जा सकती है। इसीलिये क्षतिग्रस्त हाथ या पैर को सावधानी के साथ नीचे से सहारा देते हुए उठाना चाहिये।

निश्चलकरण प्राथमिक उपचार में अत्यधिक उपयोग में आने वाली (और अक्सर प्रमुख) युक्ति है – निश्चल-करण, अर्थात क्षत अंग को निश्चल करना। इससे चोटज क्षति के क्षेत्र में विश्राम की अवस्था उत्पन्न होती है, पीड़ा कम होती है, अभिघात से रक्षा होती है (विशेष-कर हड्डी टूटने पर), घाव (जख्म) की किनारियां (या भंग हड्डी की किनारियां) एक-दूसरे के सापेक्ष स्थानांतरित होने से बचती हैं, घाव में गादिक जीवाणुओं का प्रवेश (पैठन) रुकता है। निश्चलकरण से टूटी हड्डी की आपसी रगड़ की संभावना दूर हो जाती है और इससे आगे की करोर्जिक चिकित्सा सरल होती है।

हड्डियों के शीघ्र जुड़ने में आहत के परिवहन के समय सही निश्चलकरण की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

निश्चलकरण से निम्न क्लिष्टताओं के उत्पन्न होने का खतरा कम हो जाता है: टूटी हड्डी के नुकीले सिरों से रक्तवाही कुंभियों, नर्वों तथा पेशियों की क्षति।

परिवहन-खपचियां. आहत को अस्पताल तक पहुँचाने के समय क्षत अंग को (जहां हड्डी टूटी रहती है) अस्थायी तौर पर किसी कड़ी वस्तु के साथ बांध कर उसे निश्चल कर देते हैं; इन कड़ी वस्तुओं को ही परिवहन-खपचियां कहते हैं।

कारखाने की बनी-बनायी खपचियां भी मिलती हैं: लकड़ी या तार की, जालीदार, प्लास्टर की। पिछले समय से वातिल खपचियों का उत्पादन होने लगा है; इन्हें रबड़ और प्लास्टिक से बनाते हैं; इनमें हवा भरने पर ये फूल कर कड़ी हो जाती हैं। निर्विलंब आयुर-सेवा की सभी गाड़ियां मानक खपचियों से लैस होती हैं। चिकित्सा-केंद्रों, दवाखानों में भी प्राथमिक उपचार के लिये सभी प्रकार की खपचियों का सेट सदा मौजूद रहना चाहिये।

मानक खपचियों के नहीं होने पर उपलब्ध वस्तुओं से कामचलाऊँ खपची बनानी चाहिये; इसमें तख्तों, छड़ियों, बंदूक, छाते, स्की के पट्टों आदि का उपयोग किया जा सकता है।

जांघ की हड्डी टूटने पर सबसे अच्छी परिवहन-खपची डीड्रिख की होती है; इससे टखने, घुटने और कूल्हे

पर अस्थि-संधियों को अच्छी तरह निश्चलता प्रदान की जा सकती है। यह लकड़ी की दो खपचियों से बनी होती है (चित्र 19)। इसकी लंबाई सरलता से छोटी-बड़ी की जा सकती है; इसमें पैर टिकाने के लिये लकड़ी का एक तल्ला और कसने की एक प्रयुक्ति भी होती है। यह खपची वस्त्र के ऊपर लगाते हैं, गोड़ को
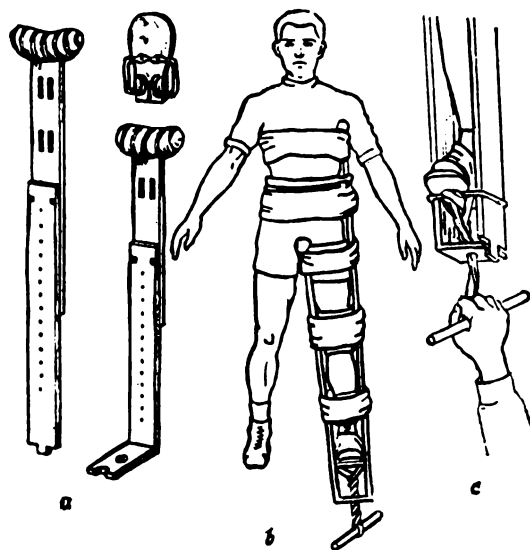
चित्र 19. परिवहन में प्रयुक्त डीड्रिख की खपचियां। (a) खपची के भाग; (b) खपची का सामान्य दृश्य; (c) रस्सी में ऐंठन की सहायता से अंग (पैर) का कर्षण (खिंचाव)।

तल्ले से कस देते हैं (जूते उतारे विना) ग्रौर खपची की लंबाई ग्रादमी के कद के ग्रनुसार समंजित कर लेते हैं। बाहरी छड़ी के ऊपरी सिरे को काँख में टिकना चाहिये; उसका निचला सिरा तलवे से 12-15 सेंटी-मीटर नीचे रहता है। इन छड़ियों को पहले लकड़ी के तल्ले के छेदों से गुजार लेते हैं, फिर उन्हें काँख ग्रौर जंघामूल में टिकाते हैं। तल्ले के नीचे इन छड़ियों को एक चूलदार तख्ती से जोड़ते हैं। पूरी खपची को वक्ष, उदर, जांघ, घुटने ग्रौर पिडली के साथ पट्टी, बेल्ट ग्रादि से बांध देते हैं। लकड़ी के तल्ले से दुहरी रस्सी निकलती है, जो खपचियों को जोड़ने वाली निचली तख्ती से निकाली जाती है। रस्सी को ऐंठन दे कर पैर को कुछ खिंची हुई ग्रवस्था में रखते हैं।

ग्रन्य बनी-बनायी परिवहन-खपचियों में क्रामेर की सीढ़ीनुमा खपची काफी लोकप्रिय हुई है। इसकी लंबाई 1 मीटर, चौड़ाई 10-15 सेंटीमीटर होती है (चित्र 20)। इसे मोड़ कर मनचाही ग्राकृति प्रदान की जा सकती है।

प्रबाहु, कलाई, गोड़ को निश्चल करने के लिये जाली-दार खपची का उपयोग होता है। यह महीन तार का बना होता है, इसलिये इसे मोड़ कर मनचाही ग्राकृति प्रदान की जा सकती है। इसका उपयोग ग्रक्सर ग्रन्य खपचियों के साथ पूरक के रूप में होता है।

इन खपचियों के ग्रतिरिक्त प्लास्टिक, प्लाइ-वुड, गत्ते ग्रादि की खपचियों के भी सेट होते हैं। ये तार की
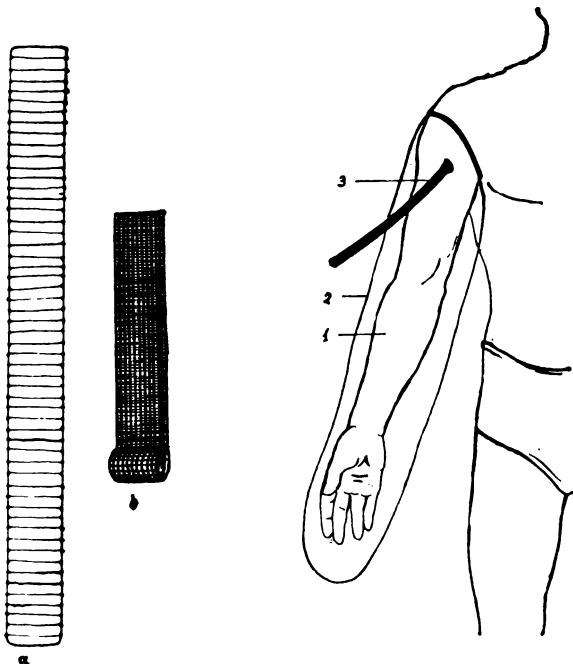
चित्र 20. तार की बनी खपची। (a) क्रामेर की खपची (b) मेश की खपची।

चित्र 21. हाथ निश्चल करने के लिये वातिल खपची। 1. खपची की भीतरी दीवार (हाथ की सतह से सटी हुई); 2. खपची की बाहरी दीवार; 3. हवा भरने के लिये टोंटी।

खपचियों से कम सुविधाजनक होते हैं, फिर भी प्रबाहु ग्रौर कलाई के निश्चलकरण में काम ग्रा सकते हैं। ऊतकों को क्षति न पहुँचे, इसके लिये तार की खपचियों पर भीतर से रूई की एक परत बिछा लेनी चाहिये।

वातिल खपचियां विशेष सुविधाजनक हैं (चित्र 21)। ये दुहरी दीवार वाले कक्ष के रूप में होती हैं। बाहरी दीवार कठोर प्लास्टिक की होती है ग्रौर भीतरी—मुलायम रबड़ की। कक्ष में हाथ घुसा कर दीवारों के बीच कस कर हवा भर देते हैं, जिससे रबड़ की दीवार तन जाती है, लेकिन उसकी सतह की ग्राकृति हाथ जैसी हो जाती है। इससे निश्चलकरण विश्वसनीय होता है।

ग्राहत का परिवहन. प्राथमिक उपचार का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है ग्राहत को जल्द से जल्द चिकित्सा-प्रतिष्ठान भेजने का प्रबंध करना। परिवहन क्षिप्र, निरापद ग्रौर दयापूर्ण होना चाहिये। याद रखना चाहिये कि परिवहन के समय पीड़ा पहुँचने पर हृदय व फेफड़े के कार्य में गड़बड़ियाँ ग्रौर ग्रभिघात जैसी क्लिष्टताएं उत्पन्न हो सकती हैं।

परिवहन के साधन का चयन ग्राहत की ग्रवस्था, चोट या रोग की प्रकृति ग्रौर साधनों की सुलभता पर निर्भर करता है।

शहरों या बड़ी ग्राबादी वाली बस्तियों में चिकित्सा-प्रतिष्ठान तक ग्राहत को पहुँचाने के लिये निर्विलंब ग्रायुरी सेवा की गाड़ियों का उपयोग करना चाहिये, जो प्रथम संकेत पाते ही दुर्घटना-स्थल की ग्रोर रवाना हो जाती

हैं (टेलीफोन पर खबर करने से या किसी को भेज कर बुलाने से या मिलीशिया की चौकी के माध्यम से खबर करने पर)। ये गाड़ियां प्राथमिक उपचार के लिये आवश्यक उपकरणों व साधनों से लैस होती हैं, उनमें बैठने व लेटने की जगह होती है, आहत को ढोने के लिये स्ट्रेचर होता है। स्ट्रेचर गाड़ी के पिछले दरवाजे से रौलर-युक्त ट्रौली पर रख कर प्रवर्तक-पटरियों पर खिसकाते हुए भीतर धकेल देते हैं। विशेष स्प्रिंग उसको झटकों से बचाते हैं।

निर्विलंब आयुरी सेवाकेंद्र में अन्य गाड़ियां भी होती हैं, जैसे विशेष रूप से सुसज्जित बसें। सोवियत संघ में इस काम के लिये विशेष विमानों व हेलीकौप्टरों का भी विस्तृत रूप से उपयोग होता है।

यदि आयुरी सेवा की गाड़ी नहीं बुलायी जा सकती या यदि वह नहीं हो, तो किसी भी अन्य वाहन (ट्रक, बग्घी, नाव आदि) का उपयोग किया जा सकता है। यदि कोई भी वाहन न मिले तो आहत को चिकित्सा-प्रतिष्ठान तक आयुरी (या कामचलाऊ) स्ट्रेचर पर हाथों से ढो कर पहुँचाते हैं।

<u>आयुरी स्ट्रेचर</u>. आहत के लिये सबसे आरामदेह होते हैं, वाहन पर आहत को रखने, बिस्तर, ट्रौली या आपरेशन के टेबुल पर लाने में सुविधाजनक होते हैं। स्ट्रेचर पर वहन करने का काम दो से चार आदमी तक कर सकते हैं।

स्ट्रेचर पर आहत को किस मुद्रा में लिटाया जाये,

यह चोट या रोग की प्रकृति पर निर्भर करता है। आहत को स्ट्रेचर पर रखने से पूर्व तकिये, कंबल आदि की सहायता से स्ट्रेचर की सतह को आहत की आवश्यक मुद्रा के लायक आरामदेह बना लेते हैं। स्ट्रेचर पर आहत को रखने की रीति निम्न है। स्ट्रेचर को आहत के पास क्षत अंग की तरफ से रखते हैं; रीढ़ में चोट होने पर किसी भी सुविधाजनक ओर से रखा जा सकता है। दो-तीन आदमी आहत के स्वस्थ पार्श्व के पास घुटनों के बल बैठ जाते हैं और सावधानी से उसके नीचे हाथ घुसा कर एक-साथ उठाते हैं। इस समय एक अन्य व्यक्ति तैयार स्ट्रेचर को उसके नीचे खिसकाता है, फिर आहत को उठाने वाले लोग उसे सावधानी से (क्षत अंग की पीड़ा का विशेष ध्यान रखते हुए) स्ट्रेचर पर लिटा देते हैं। सुरंग या किसी सँकरे स्थल से आहत को पैर की तरफ से भी ले जा सकते हैं और सर की तरफ से भी। ठंडे मौसम में आहत को गर्म कपड़ों, कंबलों आदि से अच्छी तरह ढक कर रखना चाहिये।

स्ट्रेचर पर ढोते समय कुछ नियमों का ध्यानपूर्वक पालन करना चाहिये। समतल जमीन पर चलते वक्त आहत के पैर आगे (गति की दिशा में) रहने चाहिये। यदि आहत की अवस्था बहुत गंभीर है (बेहोश है, काफी रक्त-स्राव हो चुका है, आदि), तो उसके सर को आगे रखना चाहिये। इससे पीछे से ढोने वाले लोग आहत के चेहरे पर निगरानी रख सकेंगे, यदि उसकी अवस्था बिगड़ने लगेगी तो ढोना रुकवा कर

उसे आवश्यक सहायता पहुँचाना संभव हो सकेगा। ढोने वालों को कदम मिला कर नहीं चलना चाहिये; यदि दो आदमी ढो रहे हैं, तो उनके विपरीत पैर एक साथ उठने चाहिये (जैसे एक का दायां और दूसरे का बायां)। चलने में जल्दी नहीं करनी चाहिये, कदम छोटे-छोटे होने चाहिये, ऊबड़खाबड़ जगहों पर पैर रखने से बचना चाहिये।

चढ़ान या सीढ़ियों पर ऊपर चलते समय आहत के सर को आगे रखना चाहिये तथा उतरते वक्त–पीछे। यदि पैरों की हड्डी टूटी हो, तो चढ़ान के समय पैरों को आगे रखना चाहिये और उतरते समय पैरों को पीछे रखना चाहिये। उतरते व चढ़ते वक्त स्ट्रेचर को सदा क्षैतिज स्थिति में रहना चाहिये। इसके लिये कुछ सरल उपाय हैं। चढ़ते वक्त पीछे से ढोने वाला व्यक्ति स्ट्रेचर को अपने कंधों पर रखता है और उतरते वक्त यही काम आगे से ढोने वाला व्यक्ति करता है (चित्र 22)।

बड़ी दूरियों तक आहत को ढोने में तस्मों का उपयोग किया जाता है; इससे कलाई पर बोझ कम हो जाता है। स्ट्रेचर के तस्मे तिरपाल के फीते होते हैं (लंबाई 3.5 मीटर; चौड़ाई 6.5 सेंटीमीटर)। इसके एक सिरे पर धातु का बकलस लगा होता है जिसकी सहायता से एक सिरे को दूसरे सिरे के साथ जोड़ा जाता है। दोनों सिरों को जोड़ कर उसे अंक 8 की आकृति प्रदान करते हैं (उसकी लंबाई ढोने वाले
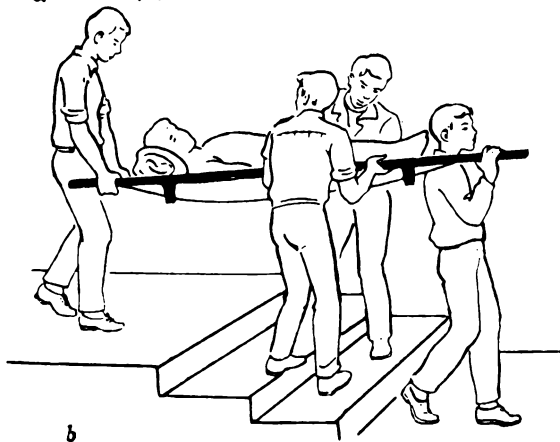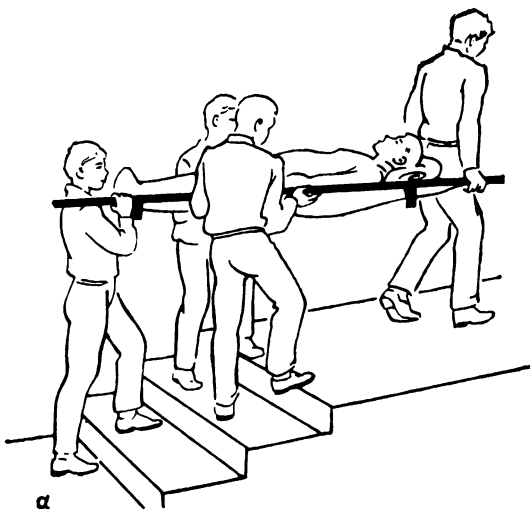
चित्र 22. स्ट्रेचर की स्थिति : (a) चढ़ते वक्त ; (b) उतरते वक्त।
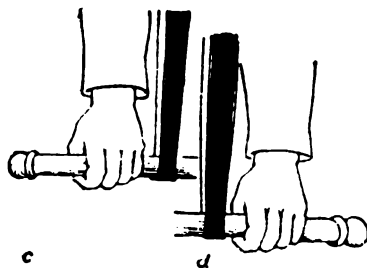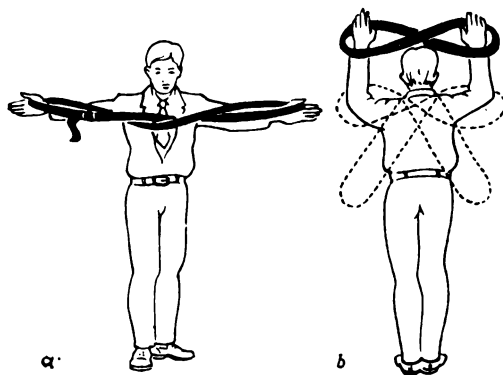
चित्र 23 स्ट्रेचर ढोने के लिये सहायक तस्मे। (a) तस्मे की लंबाई ढोने वाले के कद के अनुसार समंजित की जाती है; (b) तस्मे को पहनना; (c) आहत के सर की ओर स्ट्रेचर की डंडी पर तस्मे की स्थिति; (d) आहत के पैरों की ओर स्ट्रेचर की डंडी पर तस्मे की स्थिति।

के कद के अनुसार रखते हैं; चित्र 23a, b)। तस्मे में दोनों हाथ घुसा लेते हैं, इस तरह से कि उसका क्रौस वाला भाग पीठ पर रहे और बाकी हिस्से (दो पाश) पार्श्वों पर सीधे हाथ की कलाई के पास लटकते रहें। प्रत्येक पाश को स्ट्रेचर के हत्थे में पहना दिया जाता है। स्ट्रेचर के आगे वाला व्यक्ति हत्थे को तस्मे से आगे पकड़ता है (चित्र 23c) और पीछे वाला व्यक्ति – तस्मे से पीछे (चित्र 23d)।

विशेष बना-बनाया स्ट्रेचर न होने पर उपलब्ध सामग्रियों (लाठी, तख्ते, कोट, कंबल, बोरे आदि) से कामचलाऊ स्ट्रेचर बनाना पड़ता है। ध्यान रखना चाहिये कि यह स्ट्रेचर आहत को ढोने के लिये पर्याप्त मजबूत हो (चित्र 24)। यदि स्ट्रेचर की सतह कठोर
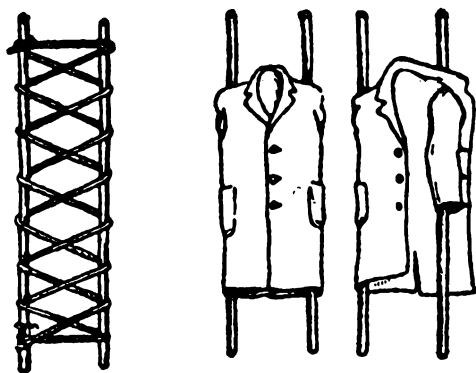
चित्र 24 कामचलाऊं स्ट्रेचर।

हो, तो उस पर कोई मुलायम वस्तु (घास, पुआल, कपड़े, तोषक आदि) रखनी चाहिये। ढोने के लिये तस्मे दो-तीन बेल्टों, तिरपाल के टुकड़े, चादर, तौलिये, मोटी रस्सी आदि से बनाये जा सकते हैं।

प्राथमिक उपचार कभीकभी ऐसी परिस्थितियों में करना पड़ता है, जब कामचलाऊ स्ट्रेचर के लिये भी सामग्री नहीं मिलती या उसे बनाने का समय नहीं होता। स्ट्रेचर न होने पर आहत को हाथों पर ढोना पड़ता है। एक आदमी आहत को हाथों पर, पीठ पर या कंधे पर ले जा सकता है (चित्र 25)। हाथों पर या कंधे पर तब ढोना पड़ता है, जब आहत बहुत कमजोर होता है या बेहोश रहता है। यदि आहत हाथों से पकड़े रह सकता है, तो उसे पीठ पर ले

चित्र 25. एक आदमी द्वारा आहत की ढुलाई। (a) हाथों पर; (b) पीठ पर; (c) कंधे पर।
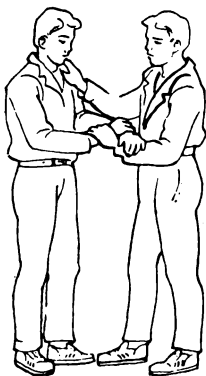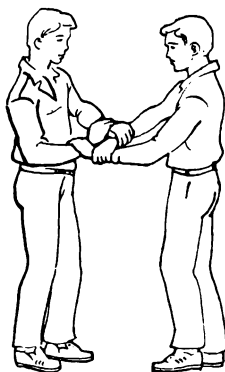
चित्र 26. आहत को ढोने की रीतियां। (a) आगे-पीछे हो कर; (b) तीन हाथों का आसन; (c) चार हाथों का आसन।

जाना सुविधाजनक होता है। इन रीतियों को अपनाने के लिये काफी बलवान व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है और इन्हें छोटी-मोटी दूरियों के लिये ही अपनाया जा सकता है। हाथों पर ढोने के लिये दो आदमियों का होना सुविधाजनक होता है। बेहोश आहत को ढोने वाले आगे-पीछे चलने की रीति अपनाते हैं (चित्र 26a)। यदि आहत होश में है और बैठा रह सकता है, तो उसे तीन या चार हाथों पर बैठा कर ले जा सकते हैं (चित्र 26b, c)। तस्मे की सहायता से हाथों पर ढोना भी काफी हल्का हो जाता है (चित्र 27)।

चित्र 27. तस्मे की सहायता से एक आदमी ढो रहा है (a); दो आदमी ढो रहे हैं (b)।

कई स्थितियों में आहत किसी का सहारा ले कर भी छोटीमोटी दूरियां तय कर ले सकता है। सहारा देने वाला व्यक्ति अपनी गरदन पर आहत का हाथ रख कर उसे अपने एक हाथ से पकड़े रहता है और दूसरे हाथ से आहत को कमर या वक्ष के पास से पकड़े रहता है। चलते वक्त आहत स्वतंत्र हाथ से लाठी का भी सहारा ले सकता है (चित्र 28)।
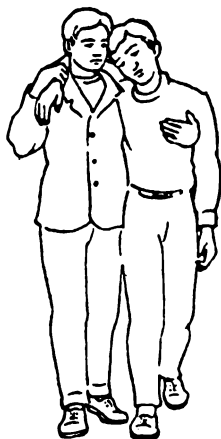
चित्र 28. एक आदमी का सहारा लेते हुए आहत का चलना।

यदि आहत खुद नहीं चल सकता और कोई मदद करने वाला भी न मिले, तो ओवर-कोट, तिरपाल,

कंबल या मोटी चादर श्रादि पर उसे लिटा कर घसीटते हुए भी ले जाया जा सकता है (चित्र 29)।
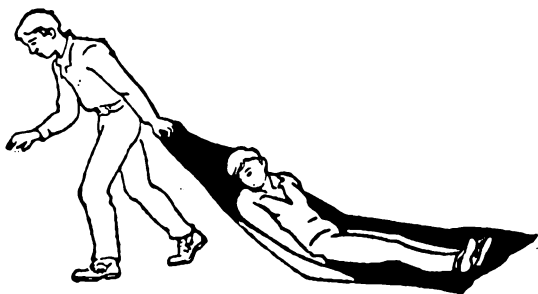
चित्र 29. चादर पर श्राहत को घसीटते हुए ले जाना।

इस प्रकार, उपचारकर्त्ता बिल्कुल भिन्न परिस्थितियों में भी श्राहत के परिवहन का प्रबंध कर सकता है। फिर भी परिवहन का साधन श्रौर परिवहन के समय श्राहत की मुद्रा चयन करने में सबसे पहले शरीर में चोट के स्थल या रोग की प्रकृति को ही ध्यान में रखना पड़ता है।

परिवहन के समय श्राहत की मुद्रा. श्राहत को ढोते समय कोई श्रन्य क्लिष्टता न उत्पन्न हो जाये, इसके लिये उसे विशेष मुद्रा में ही रखना चाहिये, जो चोट की प्रकृति के श्रनुरूप हो। श्रक्सर ऐसा होता है कि सही मुद्रा घायल की प्राण-रक्षा करती है श्रौर शीघ्र स्वस्थ

होने में सहायक होती है। इसीलिये आहत को परिवहन के समय सही मुद्रा में लिटा कर रखना प्राथमिक उपचार का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग है।

अक्सर आहत को लेटी हुई स्थिति में ही ले जाते हैं, जिसमें चोट या रोग की प्रकृति के अनुसार थोड़ा-बहुत परिवर्तन करना पड़ता है। चित अवस्था में आहत को सीधा लिटाया जा सकता है या उसके पैर घुटनों के पास मुड़े हुए रखे जा सकते हैं, या सर को कुछ नीचे और पैरों को कुछ ऊंचा रखा जा सकता है (चित्र 30a, b, c)। उसे पेट या स्थायी रूप से करवट के बल भी लिटाया जा सकता है (चित्र 30d,e)। चित लिटा कर उन आहतों को ढोते हैं, जिनका सर घायल होता है, कपाल की अस्थि और मस्तिष्क को, रीढ़ और मेरु-मज्जा को क्षति पहुंची होती है, कूल्हे या पैर की हड्डियां टूटी रहती हैं। इसी स्थिति में उन लोगों का भी परिवहन करते हैं, जिन्हें चोट के साथ-साथ अभिघात, काफी रक्तस्राव या बेहोशी हुई रहती है (बेहोशी चाहे अल्पकालीन ही क्यों न हो)। करोर्जिक चिकित्सा की आवश्यकता वाले रोगियों को भी (उंडुकशोथ, आँत में बेधक या आरपार व्रण, वर्ध्म-विपाशन आदि की स्थिति में) चित ही ले जाते हैं।

बेहोश आहत को पट लिटा कर ले जाते हैं, ललाट और वक्ष के नीचे नन्हीं मसनदें रखते हैं। इससे निष्पंदता की संभावना दूर हो जाती है (तात्पर्य है नाड़ी की निष्पंदता से)।

अधिकांश आहतों को बैठी हुई या अधलेटी स्थिति में वहन किया जा सकता है (चित्र 30f, g)।
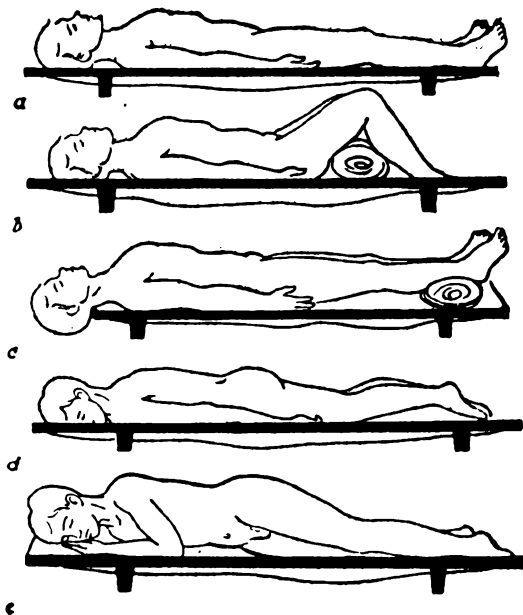
चित्र 30. परिवहन के समय आहत की स्थिति। (a) पीठ के बल ; (b) पीठ के बल, घुटने मुड़े हुए ; (c) पीठ के बल, सर नीचे और पैर कुछ ऊँचाई पर ; (d) पट की स्थिति में ; (e) स्थिर करवट की स्थिति में ;

ठंडे मौसम में परिवहन के समय आहत को ठंड से बचाने का भी उपाय करना चाहिये, क्योंकि ठंड से आहत की सामान्य अवस्था सभी प्रकार की चोटों, दुर्घटनाओं और आकस्मिक रोगों में बदतर होने लगती है। इस संदर्भ में उन रोगियों पर विशेष ध्यान देना चाहिये, जिनकी धमनी से रक्त-स्राव रोकने के लिये किसी अंग को पाश से बांधा गया है, या जो बेहोशी या अभिघात की अवस्था में हैं, तुषारण-ग्रस्त (पाला मारे हुए) हैं।
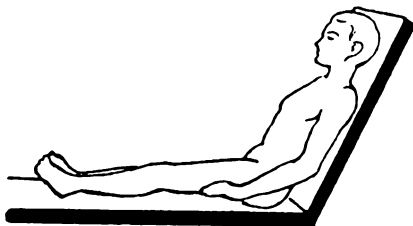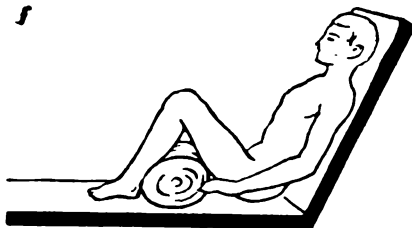
(f) अधबैठी स्थिति में; (g) अधबैठी स्थिति में, घुटने मुड़े हुए।

परिवहन के समय रोगी पर निरंतर निगरानी रखनी चाहिये, साँस और नाड़ी देखते रहना चाहिये, ध्यान देना चाहिये कि वमन के समय वमन-द्रव्य साँस के साथ अंदर श्वसन-मार्ग में न चला जाये।

यह महत्त्वपूर्ण है कि प्राथमिक उपचारकर्त्ता अपने आचरण, कार्य और वचन से आहत के मन को राहत दे, उसमें सब ठीक हो जाने का विश्वास जगाये।

जन-दुर्घटना में परिवहनक्रम. भूकंप, बस या रेल के साथ दुर्घटना, आगजनी, विस्फोट आदि से एक साथ अनेक लोग आहत होते हैं। इन परिस्थितियों में प्राथमिक उपचार की सफलता सुसंगठन और सुव्यवस्था पर निर्भर करती है। सर्वप्रथम यह निर्धारित करना चाहिये कि किसे सबसे पहले आयुरी सहायता पहुँचानी है और किसे बाद में। क्रम निम्न होना चाहिये: (1) दम घुटते लोग, (2) वक्ष या उदर में बेधक जख्म वाले लोग, (3) अत्यधिक रक्त-स्राव वाले घायल, (4) बेहोशी या अभिघात की दशा में स्थित लोग, (5) गंभीर विभंजन (अस्थि-भंग) से पीड़ित लोग, और सब के अंत में (6) छोटीमोटी क्षति व टूटन वाले लोग।

किस क्रम में आहतों का परिवहन करना है, यह उनकी क्षतियों की गंभीरता पर निर्भर करता है और इसी के अनुसार आहतों को परिवहन के लिये अलग-अलग ग्रुपों में बांटते हैं:

प्रथम ग्रुप: वक्ष व पेट में बेधक घाव (जख्म) वाले लोग, बेहोशी व अभिघात की दशा में स्थित लोग,

कपाल (खोपड़ी) की क्षति वाले लोग, आंतर रक्त-स्राव वाले घायल, हाथ-पैर कटे हुए लोग, बाहरी विभंजन तथा झुलसन से आक्रांत लोग।

द्वितीय ग्रुप: भीतरी विभंजन वाले लोग, ऐसे घायल जिनका बहुत अधिक खून बह चुका हो, लेकिन अब खून बहना रोका जा चुका हो।

तृतीय ग्रुप: अल्प रक्त-स्राव तथा छोटी-मोटी हड्डियों के विभंजन वाले लोग, कुंद चोट से ग्रस्त लोग।

हर ग्रुप के परिवहन में कम उम्र के बच्चों को प्राथ-मिकता देनी चाहिये और यदि संभव हो, तो साथ में माँ (या पिता) को भी भेजना चाहिये।

अध्याय 4

अभिघात

विस्तृत घाव, झुलसन, गंभीर चोटों व रोगों से अनेक ऐसे घटक उत्पन्न होते हैं, जो पूरे शरीर की जीवन-क्रिया पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इनमें सबसे पहले पीड़ा, रक्तहानि और क्षत ऊतकों में उत्पन्न हाने वाले द्रव्यों का नाम लिया जा सकता है। ये घटक पूरे शरीर की जीवन-क्रिया का संचालन करने वाले मस्तिष्क तथा अंतस्रावी ग्रंथियों के कार्य में काफी गड़बड़ी उत्पन्न कर देते हैं, जो अभिघात नामक एक जटिल प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्त होती है।

अभिघात से शरीर की सभी जीवन-क्रियाओं का दमन निरंतर तीव्र होता जाता है; इन क्रियाओं में निम्न की गणना होती है: केंद्रीय एवं पनपू नर्वतंत्रों के कार्य, रक्त-संचार, श्वसन, द्रव्य-विनिमय, यकृत एवं वृक्क के कार्य। अभिघात जीवन और मृत्यु के बीच की अवस्था है और सिर्फ सही एवं निर्विलंब चिकित्सा से ही रोगी की जीवन-रक्षा हो सकती है। कारणों के अनुसार अभिघात के निम्न भेद किये जाते हैं: चोट-

जनित, झुलसन-जनित, रक्तस्राव-जनित, प्रतित्राण-जनित (किसी दवा के विरुद्ध शरीर की असहनशीलता से उत्पन्न), हृदज (हृत्पेशी के इन्फार्क्त से उत्पन्न), सृपन-जनित (सृपन, अर्थात् सार्वदैहिक पूयकारी पैठन से उत्पन्न) आदि।

चोट-जनित अभिघात. अक्सर अभिघात गंभीर एवं विस्तृत क्षतियों के कारण होता है, जिनके साथ-साथ रक्तहानि भी होती है। चोट-जनित (या चोटज) अभिघात के विकास में निम्न घटक सहायक होते हैं: नार्विक एवं शारीरिक अतिश्रांति, भय, ठंड, चिरकालिक रोगों (यक्ष्मा, हृदय के रोग, द्रव्य-विनिमय के रोगों, आदि) की उपस्थिति। अभिघात अक्सर उन बच्चों में प्रेक्षित होता है, जो रक्तहानि सहन नहीं कर पाते, और वृद्ध व्यक्तियों में भी, जो पीड़ाजनक क्षोभकों के प्रति बहुत संवेदी होते हैं।

चोटज अभिघात उन क्षतियों से भी संभव है, जिनमें अधिक रक्तस्राव नहीं होता, विशेषकर जब चोट सर्वाधिक संवेदी (तथाकथित प्रतिवर्तजनक) क्षेत्रों में लगती है, जैसे – वक्ष-कोटर, कपाल, उदरीय कोटर, मूलाधार आदि में।

अभिघात चोट के तुरंत बाद भी उत्पन्न हो सकता है, लेकिन अक्सर 2-4 घंटे बाद भी संभव है (विलंबित अभिघात); यह अभिघात-निरोधक युक्तियों को पूरी तरह नहीं लागू करने से होता है।

चोटज अभिघात के तल्पिक चित्र का प्रथम क्लासिकल

वर्णन महान रूसी करोर्जक नि. पिरोगोव ने किया था।

चोटज. अभिघात के दौरान उसकी दो प्रावस्थाओं में भेद किया जाता है। प्रथम प्रावस्था को उत्थापी कहते हैं; यह चोट के क्षण उत्पन्न होती है। क्षति-स्थल से चलने वाले वेदना-स्पंदों के कारण नर्वतंत्र का तेजी से उद्दीपन हो जाता है, रक्त में आद्रेनालिन की मात्रा बढ़ जाती है, द्रव्य-विनिमय तीव्र हो जाता है, साँस तेज होती है, रक्तवाही कुंभियों का संकोचन होता है (अपतान), अधोवर्ध एवं अधिवृक्क ग्रंथियों की कार्यशीलता बढ़ जाती है। अभिघात की यह प्रावस्था बहुत अल्पकालीन होती है और स्पष्ट मानसिक एवं गतिप्रेरक उद्दीपन के रूप में व्यक्त होती है। शरीर की रक्षी शक्तियों का बहुत जल्द क्षय हो जाता है, क्षतिपूरक संभावनाए लुप्त हो जाती हैं और दूसरी–सुषुप्त प्रावस्था (या दमन की प्रावस्था) शुरू होती है। इस प्रावस्था में नर्वतंत्र, हृदय, क्लोमों (फेफड़ों), यकृत और वृक्कों के कार्य दमित हो जाते हैं। रक्त में गरल द्रव्य जमा होने लगते हैं, जो कुंभियों और केशिकाओं में लकवा उत्पन्न करते हैं। धमनी-दाब घटता है, आंतर अंगों की ओर रक्त के बहाव में कमी आ जाती है, और कोशिकाओं में आक्सीजन की भूख बढ़ती है। इन सब कारणों से नर्व-कोशिकाओं की तेजी से मृत्यु होने लगती है, आहत की भी मृत्यु हो सकती है।

प्रवाह की गंभीरता के अनुसार अभिघात की सुषुप्त प्रावस्था चार प्रकार की हो सकती है।

प्रथम डिग्री का अभिघात (हल्का). आहत पीला पड़ जाता है; चेतना बनी रहती, लेकिन कभी-कभी उसका हल्का दमन प्रेक्षित होता है, प्रतिवर्त मंद हो जाते हैं, हँफनी होती है। नाड़ी तेज होती है – 90-100 स्पंद प्रति मिनट; धमनी-दाब 100mm Hg (मिलिमीटर पारद-स्तंभ) से कम नहीं होता।

द्वितीय डिग्री का अभिघात (मध्यम गंभीरता). दमन अधिक स्पष्ट होता है, सुस्ती आती है, त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियां विवर्ण हो जाती हैं, नीलपर्यंगता (कान, नाक, होठों, उंगलियों में नीलापन) विकसित होती है। त्वचा पर चिपचिपा स्वेद होता है, साँस तेज और सतही होती है। पुतलियां विस्फारित होती हैं। नाड़ी की गति 120-140 स्पंद प्रति मिनट होती है, धमनी-दाब 80-70mm Hg होता है।

तृतीय डिग्री का अभिघात (गंभीर). आहत की अवस्था गंभीर होती है, चेतना बची रहती है लेकिन परिवेशी स्थिति को वह समझ नहीं पाता, पीड़ाजनक क्षोभकों पर प्रतिक्रिया नहीं करता। त्वचा का रंग धूसर हो जाता है, उस पर ठंडा व चिपचिपा पसीना छा जाता है; होठ, नाक और उंगलियों के सिरे अधिक नीले हो जाते हैं। नाड़ी धागे-सी पतली लगती है, उसकी गति 140-160 स्पंद प्रति मिनट होती है। साँस तेज, सतही और कभी-कभी उच्छेदित होती है। वमन और अस्वैच्छिक मलमूत्र-विसर्जन भी संभव है।

चतुर्थ डिग्री का अभिघात (मृत्यु-यंत्रणा या इससे

पूर्व की स्थिति). होश नहीं रहता। नाड़ी की गति और धमनी-दाब निर्धारित नहीं हो पाता। हृदय का टोन मुश्किल से सुनायी देता है। साँस मृत्यु-यंत्रणा जैसी होती है (हुकहुकी के रूप में, मानो आहत हवा निगल रहा हो)।

प्राथमिक उपचार. गंभीर चोट और घाव का समयोचित प्राथमिक उपचार करने से अभिघात के विकास की रोकथाम होती है। अभिघात की स्थिति में प्राथमिक उपचार जितना ही शीघ्र शुरू किया जाता है, उसकी कारगरता उतनी ही अधिक होती है। उपचार के रूप में ऐसी युक्तियां अपनायी जाती हैं, जिनसे अभिघात उत्पन्न होने के कारण दूर होते हैं, जैसे– पीड़ा दूर या कम करना, रक्तस्राव रोकना, साँस नियमित एवं सामान्य करना, हृदय के कार्य को सामान्य करना, ठंड से बचाना।

दर्द कम करने के लिये आहत को या उसके क्षत अंग (हाथ, पैर आदि) को ऐसी स्थिति प्रदान की जाती है, जिससे पीड़ा तीव्र न हो; क्षत अंग को सही स्थिति में रख कर उसे निश्चल करने से भी दर्द कम होता है। पीड़ा की तीव्रता पीड़ाहर, निद्रापक एवं प्रशामक दवाओं से कम की जाती है: अनाल्जिन, अमीडोपीरीन, वालेरिआन का टिंचर, बार्बामीला, सेडाल्जिन, डिआजेपाम (सेडुक्सेन), एलेनियम, त्रिओक्साजिन आदि।

पीड़ाहर दवाओं के न होने पर थोड़ा-सा (20-30 मिलिलीटर) स्पीरिट, वोद्का या शराब देनी चाहिये

(श्रौर आहत को अल्कोहल देने की सूचना निर्विलंब आयुरी सहायता के अथवा जिस अस्पताल में आहत को रखा जाता है, उसके सहकर्मियों को अवश्य दी जाती है)।

रक्तस्राव रोके बिना अभिघात से संघर्ष कारगर नहीं हो सकता, इसलिये रक्त का बहना जल्द से जल्द रोकना चाहिये; इसके लिये रक्तरोधक पाश अथवा संपीडक पट्टी आदि का उपयोग किया जाता है। बहुत अधिक रक्तस्राव होने पर आहत को ऐसी स्थिति प्रदान की जाती है कि मस्तिष्क में रक्त की आपूर्ति अच्छी हो: रोगी को क्षैतिज लिटाया जाता है या इस तरह रखा जाता है कि सर धड़ से कुछ नीचे रहे (दे. अध्याय 7)। साँस को सामान्य करने के लिये उसमें अवरोध डालने वाले कपड़ों के बटन आदि खोल कर उन्हें ढीला कर देते हैं, आवश्यकता हो तो ताजी हवा आने देते हैं, आहत को ऐसी स्थिति प्रदान करते हैं कि साँस लेने में कठिनाई नहीं हो। यदि संभव हो, तो हृत्कुंभी-तंत्र की कार्यशीलता उद्दीपित करने वाली कोई दवा देनी चाहिये: 20-30 बूंद लैंटोसीड, 1-2 बड़ा चम्मच बेख्तेरेव का मिक्सचर, 15-20 बूंद (या एक टिकिया आदोनीजिद), 15-20 बूंद कनवालेरिश्रान या इसके साथ वालेरिश्रान का टिंचर।

अभिघात की अवस्था में स्थित (अभिघात में अवस्थित) आहत के शरीर को गर्मी देने का प्रयत्न करना चाहिये, इसके लिये उसे कंबल ओढ़ाते हैं, गर्म

पेय (चाय, कौफी या सिर्फ पानी) पिलाते हैं (यदि उदरस्थ अंगों के क्षत होने की आशंका नहीं होती)।

प्राथमिक उपचार का अगला महत्त्वपूर्ण कदम है– आहत को अस्पताल पहुँचाने के लिये परिवहन का प्रबंध करना। अभिघात में अवस्थित आहत का परिवहन बहुत सावधानी से करना चाहिये, ताकि उसे अतिरिक्त पीड़ा न पहुँचे तथा अभिघात और अधिक गंभीर न हो जाये। संजीवक साधनों से सुसज्जित विशेष गाड़ी में परिवहन सबसे अच्छा होता है, जिसमें नर्वतंत्र की गड़बड़ियों को दूर करने के लिये नर्कोटिक प्रसाधन–मोर्फेन, ओम्नो-पोन, प्रोमेडोल–दिये जा सकते हैं, नाइट्रस आक्साइड से संज्ञाहरण या नोवोकेन द्वारा संरोध (ब्लौकेड) किया जा सकता है।

रक्तसंचार की गड़बड़ी का मुख्य इलाज है–शरीर में संचारित होने वाले रक्त के आयतन में कमी को पूरा करना। इसके लिये रक्त की जगह काम देने वाला कोई अन्य द्रव (पोलीग्लूसिन, हेमोडेस, जेलाटिनोल), रक्त, ग्लूकोज तथा सोडियम नाइट्रेट के तुल्यतानी घोलों का आधान कराया जाता है। ये उपाय संजीवक गाड़ी में ही शुरू कर दिये जा सकते हैं। अभिघात की स्थिति में आद्रेनालीन, नोर-आद्रेनालीन, मेजातोन आदि का आधान करना लाभजनक नहीं, बल्कि हानिकर ही होता है, क्योंकि रक्त की कमी दूर करने से पूर्व ये प्रसाधन रक्तवाही कुंभियों को संकोचित कर के मस्तिष्क, हृदय, यकृत तथा वृक्क में रक्त की आपूर्त्ति कम कर देते हैं।

संजीवक गाड़ी में श्वसन की गड़बड़ी से संघर्ष के भी उपाय होते हैं, जैसे – ग्राक्सीजन-थेरापी, या ग्रधिक गंभीर स्थितियों में फेफड़ों (क्लोमों) के कृत्रिम संवातन की युक्तियां।

ग्रभिघात के ग्रंत्य चरणों में संजीवन की युक्तियां – हृदय की मालिश ग्रौर कृत्रिम श्वसन – ग्रपनाने की ग्रावश्यकता पड़ सकती है (दे. ग्रध्याय 5)।

यह याद रखनी चाहिये कि ग्रभिघात का निरोध (उसके होने से पहले उसे रोकना) ग्रधिक सरल है, बनिस्बत कि उसकी चिकित्सा करना, इसीलिये ग्राहत का प्राथमिक उपचार करने में निरोध के 5 सिद्धांतों का पालन करना चाहिये: पीड़ा कम करना, द्रव का ग्राधान करना, शरीर गर्म करने का उपाय करना, ग्राहत के लिये विश्राम, शांति एवं नीरवता की परिस्थितियां बनाना, चिकित्सालय पहुंचाने के लिये सावधानी से परिवहन करना।

अध्याय 5

संजीवन : सिद्धांत और रीतियां

मरणासन्न व्यक्ति की जीवन-रक्षा के प्रयत्न लोग प्राचीन काल से ही करते रहे हैं। डूबे व्यक्ति को कृत्रिम श्वसन द्वारा जिलाने का वर्णन प्राचीनतम लिपियों में भी पाया गया है।

पुनर्जागरण-काल के चिकित्सक वेजालियस (Vesaleus) और हार्वे (Harvey) मृत्यु की प्रक्रिया का अध्ययन कर के मरणासन्न आदमी का जीवन कृत्रिम रीतियों से बढ़ाने की कोशिश करते थे। लेकिन विज्ञान के रूप में संजीवनीलोचन का जन्म पिछले दशकों की वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति की सहायता से ही हो सका। सोवियत वैज्ञानिकों, विशेषकर अकादमीशियन व्ला. नेगोव्स्की और उनके सहकर्मियों की सहायता से संजीवनीलोचन एक प्रमुख तल्पिक विषय में परिणत हुआ, उसकी रीतियों का आज व्यावहारिक आयुर में विस्तृत उपयोग है। तल्पिक संजीवनीलोचन का शरीरलोचन, गदलोचनी अनाटोमी, करोर्जन, थेरापी तथा अन्य विषयों के साथ घना संबंध है। इसका उद्देश्य है–मृत्यु के दौरान, अंत्य

अवस्था के विकास के दरम्यान शरीर में होने वाली प्रक्रियाओं और उनके कारणों का अध्ययन तथा इसके आधार पर मृत्यु से संघर्ष की रीतियों का विकास और उपयोग।

अंत्य अवस्थाएं

यह तथ्य स्थापित किया जा चुका है कि आदमी साँस और हृदय की गति रुकने के बाद भी जीवित रहता है, यद्यपि इस स्थिति में कोशिकाओं को आक्सीजन मिलनी बंद हो जाती है और इसके बिना कोई भी जीवन-क्रिया नहीं चल सकती। रक्त और उसके साथ आक्सीजन की आपूर्ति न होने पर भिन्न प्रकार के ऊतक भिन्न तरह से प्रतिक्रिया करते हैं और उनकी मृत्यु भी समय के भिन्न अंतरालों में होती है। इसीलिये विशेष युक्तियों के संकुल (संजीवनी) की सहायता से रक्त-संचार और श्वसन को यथासमय फिर से चालू कर के आहत (रोगी) को अंत्य अवस्था से उबारा जा सकता है।

अंत्य अवस्थाएं विभिन्न कारणों के फलस्वरूप उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे: अभिघात, हृत्पेशी का इन्फार्क्त (रक्तापूर्ति रुकने से ऊतक के सीमित भाग की मृत्यु), अत्यधिक रक्तहानि, श्वसन-मार्ग में अवरोध (घुटन) या निष्पंदता, विद्युघात, डूबना, मिट्टी से दब जाना, आदि। अंत्य अवस्था की तीन प्रावस्थाएं होती हैं: (1) मृत्यु-यंत्रणा से पूर्व की अवस्था; (2) मृत्यु-यंत्रणा; (3) तल्पिक मृत्यु।

मृत्यु-यंत्रणा से पूर्व की अवस्था में चेतना बनी रहती है, पर वह धूमिल होती है। धमनी-दाब (धमनियों में रक्त-दाब) शून्य तक गिर आता है; नाड़ी तीव्र हो उठती है, पर धागे जैसी पतली हो जाती है; साँस सतही और कठिन हो जाती है, त्वचा फीकी (विवर्ण) हो जाती है।

मृत्यु-यंत्रणा के दौरान धमनी-दाब और नाड़ी-स्पंद निर्धारित नहीं हो पाते, मुख्य प्रतिवर्त (श्रृंगिकीय, और प्रकाश के प्रति पुतलियों की प्रतिक्रिया) लुप्त हो जाते हैं, साँस हवा निगलने की क्रिया जैसी हो जाती है (हुकहुकी)।

तल्पिक मृत्यु जीवन और मृत्यु के बीच की संक्रमण-अवस्था है, यह अल्पकालीन होती है – 3-6 मिनट तक । इसमें साँस और हृदय की गति रुक जाती है, पुतलियां विस्फारित हो जाती हैं, त्वचा ठंडी हो जाती है और प्रतिवर्त अनुपस्थित होते हैं। इस नन्हें अंतराल में ही संजीवनी रीतियों की सहायता से जीवन-क्रियाओं को पुनः आरंभ कराया जा सकता है। विलंब होने पर ऊतकों में अनुत्क्रमणीय परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं और तल्पिक मृत्यु वास्तविक जीवलोचनी मृत्यु में परिणत हो जाती है।

अंत्य अवस्थाओं में शरीर की आंतरिक गड़बड़ियां

अंत्य अवस्था का कारण जो भी हो, वह आदमी में सार्वदैहिक परिवर्तन उत्पन्न करती है। इन परिवर्तनों

को जाने बिना संजीवनी रीतियों का सार और अर्थ समझना संभव नहीं है। ये परिवर्तन सार्वदैहिक होते हैं, क्योंकि शरीर के सभी अंगों तथा तंत्रों (मस्तिष्क, हृदय, द्रव्य-विनिमय आदि) को प्रभावित करते हैं, लेकिन कुछ अंगों में पहले उत्पन्न होते हैं और कुछ में विलंब से। चूँकि अंग साँस और हृदय की गति रुकने के बाद भी कुछ समय तक जीवित रहते हैं, इसलिये यथासमय प्रयुक्त संजीवनी रीतियों से रोगी को जिलाने का प्रभाव प्राप्त किया जा सकता है।

रक्त एवं ऊतकों में आक्सीजन की कमी के प्रति सबसे अधिक संवेदी अंग प्रमस्तिष्क वल्कुट होता है, इसलिये अंत्य अवस्थाओं में सबसे पहले केंद्रीय नर्वतंत्र के उच्च विभागों – प्रमस्तिष्क वल्कुट – का कार्य रुकने लगता है: आदमी की चेतना लुप्त होने लगती है। यदि आक्सीजन की भूख 3-4 मिनट तक जारी रह जाती है, केंद्रीय नर्वतंत्र के इस विभाग का कार्य पुनः शुरू करवाना असंभव हो जाता है। वल्कुट के निष्क्रिय होने के बाद मस्तिष्क के अधोवल्कुटी (वल्कुट से नीचे के) विभागों में परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। सबसे अंत में मेरुमज्जा (सुषुम्ना) की मृत्यु होती है, जिसमें श्वसन और रक्त-संचार के स्वचल केंद्र होते हैं। मस्तिष्क की अनुत्क्रमणीय मृत्यु हो जाती है।

आक्सीजन की कमी और अंत्य अवस्थाओं में मस्तिष्क के कार्यों में गड़बड़ी बढ़ने के कारण हृत्कुंभी-तंत्र के कार्य में गड़बड़ी उत्पन्न होती है। मृत्यु-यंत्रणा से पूर्व

की अवस्था में हृदय की पंपन-क्रिया तेजी से क्षीण होने लगती है, हृदय से प्रति मिनट विक्षेपित होने वाले रक्त की मात्रा कम होती जाती है। अंगों और विशेषकर मस्तिष्क में रक्त की आपूर्ति कम होने लगती है और अनुत्क्रमणीय परिवर्तनों के उत्पन्न होने की क्रिया तीव्र होने लगती है। हृदय की निजी स्वचलता के कारण उसमें संकोचनों की क्रिया लंबे समय तक चलती रह सकती है। लेकिन ये संकोचन पर्याप्त नहीं होते, नाड़ी में रक्त की मात्रा कम होती जाती है, वह धागे की तरह पतली होने लगती है, धमनीय दाब भी तेजी से गिरने लगता है और बाद में निर्धारित ही नहीं हो पाता। फिर हृदय के संकोचनों के लय में काफी गड़बड़ी होने लगती है और हृदय का कार्य रुक जाता है।

अंत्य अवस्था की प्रारंभिक प्रावस्था—मृत्यु-यंत्रणा से पूर्व की अवस्था—में साँस तेज और गहरी होती जाती है। मृत्यु-यंत्रणा के दौरान धमनी-दाब गिरता है और साथ-साथ साँस असमरूप और सतही होने लगती है, फिर बिल्कुल रुक जाती है तथा अंत्य विराम की स्थिति आ जाती है।

अवाक्सिता (कोशिकाओं तथा ऊतकों में आक्सीजन की कमी) से यकृत और वृक्क भी प्रभावित होने लगते हैं, उनमें भी अनुत्क्रमणीय परिवर्तन शुरू हो जाते हैं।

सभी अंत्य अवस्थाओं के दौरान शरीरगत द्रव्य-विनिमय में भी तेजी से परिवर्तन होते हैं। ये सबसे पहले आक्सीकारी प्रक्रिया के मंदन के रूप में व्यक्त

होते हैं, जिसके फलस्वरूप शरीर में जैव (कार्बनिक) अम्ल (जैसे लैक्टिक और पीरूविक अम्ल) तथा कार्बन डायक्साइड संचित होने लगते हैं। इससे शरीर में अम्लों तथा भस्मों का संतुलन बिगड़ने लगता है। सामान्य अवस्था में रक्त एवं ऊतकों का pH उदासीन होता है। अंत्य अवस्था के दौरान आक्सीकारी प्रक्रियाओं के क्षीण होने पर प्रतिक्रियाएं अम्लीयता की दिशा में स्थानांतरित होती हैं और अम्लक्लेश शुरू हो जाता है। मृत्यु-काल जितना ही लंबा होता है, यह स्थानांतरण उतना ही अधिक होता है।

तल्पिक मृत्यु की अवस्था से शरीर के मुक्त होने के बाद पहले हृदय का कार्य शुरू होता है, फिर नैसर्गिक श्वसन होता है; मस्तिष्क का कार्य बहुत बाद में शुरू होता है, जब अम्ल-भस्म के संतुलन में और द्रव्य-विनिमय में उत्पन्न परिवर्तन लुप्त हो जाते हैं।

सबसे अधिक समय प्रमस्तिष्क-वल्कुट का कार्य पुनर्स्थापित होने में लगता है। अवाक्सिता और तल्पिक मृत्यु बहुत अल्पकालीन (जैसे एक मिनट से कम) होने पर भी बेहोशी लंबे समय तक बनी रह सकती है।

संजीवन का उद्देश्य

तल्पिक मृत्यु की अवस्था में स्थित रोगी के संजीवन का मुख्य उद्देश्य है—अवाक्सिता से संघर्ष करना और शरीर की लुप्तप्राय होती जीवन-क्रियाओं को स्फूर्ति

प्रदान करना। संजीवनी युक्तियां निर्विलंबता के अनुसार निम्न ग्रुपों में बाँटी जाती हैं: (1) कृत्रिम श्वसन और कृत्रिम रक्त-संचार बनाये रखने की युक्तियां; (2) नैसर्गिक रक्त-संचार तथा श्वसन को और केंद्रीय नर्वतंत्र, यकृत, वृक्क तथा द्रव्य-विनिमय के कार्यों की पुनर्स्थापना के लिये गहन उपचार।

सांस रुकने पर संजीवन

कृत्रिम श्वसन या और सही कहें, तो क्लोमों (फेफड़ों) के कृत्रिम संवातन की आवश्यकता घुटन की स्थिति में उत्पन्न होती है, जिसके निम्न कारण हो सकते हैं: श्वसन-मार्ग में अवरोध (किसी परज, अर्थात् बाहरी वस्तु के पड़ जाने से), डूबना, करेंट मारना (विद्युघात), विभिन्न गरल पदार्थों या दवाओं से शरीर का आगरण, मस्तिष्क में आंतरिक रक्तस्राव, चोटजनित अभिघात।

जब रोगी का नैसर्गिक श्वसन उसके रक्त को आक्सीजन से पर्याप्त सांद्र नहीं कर पाता, तो ऐसी अवस्था में एकमात्र उपचार कृत्रिम श्वसन है।

श्वास की तीव्र अपूर्णता रक्त-संचार में गड़बड़ी का द्वितीयक प्रतिफल भी हो सकती है।

श्वास की तीव्र अपूर्णता और उसका उत्कर्ष – साँस का रुकना – चाहे जिस कारण से उत्पन्न हुआ हो, उससे शरीर में आक्सीजन की मात्रा अवश्य कम हो जाती है

(अवाक्सिता) और रक्त एवं ऊतकों में कार्बन डायक्साइड की मात्रा बढ़ने लगती है (अतिधूम्रता)। अवाक्सिता और अतिधूम्रता के फलस्वरूप शरीर के सभी अंगों के कार्य में गंभीर गड़बड़ियां उत्पन्न होती हैं, जिन्हें यथासमय शुरू की गयी संजीवनी रीति–फेफड़ों के कृत्रिम संवातन–से ही दूर किया जा सकता है।

फेफड़ों के कृत्रिम संवातन की कई रीतियां हैं। पिछले समय से सिल्वेस्टर (Silvester) और शेफर (Shaefer) की रीतियों का उपयोग बहुत कम हो गया है। वे कम कारगर हैं, बनिस्बत कि फेफड़ों में हवा फूँकने के सिद्धांत पर आधारित कृत्रिम श्वसन से। सिल्वेस्टर और शेफर की रीतियां उन लोगों के लिये सुसंकेतित होती हैं, जिनके चेहरे क्षत होते हैं; वक्ष में चोट होने पर वे प्रतिसंकेतित होती हैं। डूबने से श्वसन-मार्ग के अवरुद्ध होने पर सिल्वेस्टर की रीति का उपयोग नहीं करना चाहिये।

हवा फूँक कर कृत्रिम श्वसन कई रीतियों से कराया जा सकता है। इनमें से सबसे सरल है–मुँह से मुँह में या नाक में फूँक कर फेफड़ों का कृत्रिम संवातन करना। कृत्रिम श्वसन के लिये मुखौटा-युक्त रबड़ की प्रत्यास्थ थैली (गेंद) के रूप में दस्ती उपकरण भी बनाये गये हैं (चित्र 31a)। इस तरह के श्वास-उपकरण सभी चिकित्सा-प्रतिष्ठानों में होने चाहिये। अस्पतालों में फेफड़ों के कृत्रिम संवातन के लिये विशेष प्रकार के जटिल उपकरण प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें श्वासदायक

चित्र 31. श्वास-उपकरण (श्वासित्र) से फेफड़ों का कृत्रिम संवातन।

उपकरण कहा जाता है। निर्विलंब आयुरी सहायता की गाड़ियों में तथा तटों पर डूबने से बचाने वाले केंद्रों में सुवाह्य श्वासदायक उपकरण होते हैं।

मुँह से मुँह में या नाक में हवा फूँक कर फेफड़ों के कृत्रिम संवातन की तकनीक. कृत्रिम श्वसन के लिये रोगी को पीठ के बल लिटा कर उसके वक्ष पर कसे कपड़ों को ढीला कर देते हैं और श्वसन-मार्ग अनवरुद्ध करते हैं, ताकि उसमें हवा जा सके। यदि मुख-कोटर या ग्रसनी में कुछ हो (जैसे वमन-द्रव्य), तो उसे उंगलियों, रूमाल या तौलिये से अथवा किसी भी पंप जैसी प्रयुक्ति से (दे. चित्र 32) शीघ्रातिशीघ्र दूर कर लेते हैं। इसके लिये रबड़ का गेंदनुमा सिरिंज भी प्रयुक्त हो सकता है, लेकिन पहले उसके नुकीले सिरे

चित्र 32. परज वस्तुएं, श्लेष्मा या वमन-द्रव्य निकालना: (a) उंगलियों से; (b) वात-चोषक गेंद से।

को काट कर अलग कर दिया जाता है। श्वसन-मार्ग को मुक्त करने के लिये आहत के सर को थोड़ा पीछे की ओर झुकाव देना चाहिये। यह याद रखें कि सर को पीछे की ओर बहुत अधिक झुकाने पर भी श्वसन-मार्ग संकुचित हो सकता है। श्वसन-मार्ग को पूरी तरह खोलने के लिये निचले जबड़े को थोड़ा आगे की ओर खिसकाना चाहिये। यदि किसी प्रकार की वात-नली हो (चित्र 33), तो उसे कंठ में घुसा देना चाहिये, ताकि श्लथ जीभ पीछे की ओर गिर कर वायु-मार्ग को बंद न कर दे (चित्र 34)। यदि ऐसी वात-नली न हो तो कृत्रिम श्वसन कराते वक्त हाथ से सर को पीछे झुका कर पकड़े रहना चाहिये और निचले जबड़े को आगे की ओर खिसकाये रहना चाहिये।
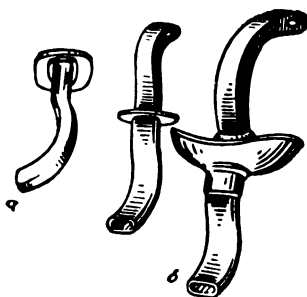
चित्र 33. फेफड़ों के कृत्रिम संवातन में प्रयुक्त वात-नलियां। (a) सामान्य वात-नली; (b) मुँह से मुँह में फूँक कर कृत्रिम श्वसन कराने के लिये वात-नली।

<u>मुँह से मुँह में फूँक कर श्वसन कराने के लिये</u> आहत के सर को निश्चित स्थिति में पकड़े रहते हैं (चित्र 35)। संजीवन करने वाला व्यक्ति गहरी साँस खींचता है और आहत के मुँह के साथ अपना मुँह अच्छी तरह सटा कर अपने निश्वास की हवा को आहत के फेफड़ों में फूँकता है। इस प्रक्रिया में आहत के ललाट के पास वाले हाथ से उसकी नाक अवश्य बंद रखनी चाहिये। आहत द्वारा निश्वास स्वतः होता है – वक्ष-पंजर के प्रत्यास्थ बलों के कारण। प्रति मिनट कम से कम 16-20 श्वसन देने चाहिये। फूँकने का काम शीघ्रता एवं झटके से करना चाहिये (बच्चों में कम तीव्रता से), ताकि आश्वास का समय निश्वास से दुगुना कम हो।
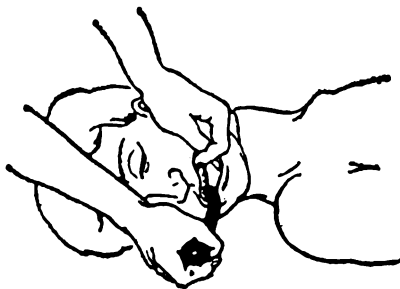
चित्र 34. मुँह और कंठ में वात-नली सही ढंग से प्रविष्ट कराना (a); मुँह और कंठ में वात-नली की स्थिति का आरेख (b)।

यह ध्यान देना चाहिये कि हवा फूँकने से पेट बहुत ज्यादा न फूले, अन्यथा जठर में स्थित खाद्य-द्रव्य के निकल कर श्वास-नली में पहुँचने का खतरा रहता है। जाहिर है कि मुँह से मुँह में फूँक कर श्वसन कराना हाइजीनिक दृष्टि से सुविधाजनक नहीं होता। आहत के मुँह के साथ सीधा स्पर्श से बचने के लिये फूँकने का

चित्र 35. मुँह से मुँह में फूँक कर फेफड़ों का कृत्रिम संवातन। (a) आहत के सर की स्थिति; (b) मुँह के रास्ते हवा फूँकना।

काम गजी के टुकड़े या कम गप्स कपड़े से हो कर किया जा सकता है। वात-नली का भी उपयोग किया जा सकता है (चित्र 36)।

मुँह से नाक में फूँक कर श्वसन कराना. इस रीति में आहत का मुँह हाथ से बंद कर लिया जाता है;

चित्र 36. वात-नली के सहारे फेफड़ों का कृत्रिम संवातन।

इसी हाथ से पिछले जबड़े को आगे की ओर खिसकाए रखा जाता है, ताकि जीभ कंठ में न गिरे (चित्र 37)।

<u>दस्ती श्वासदायक उपकरण की सहायता से फेफड़ों का कृत्रिम संवातन.</u> पहले श्वास-मार्ग अनवरुद्ध कर लेना चाहिये (जैसा कि ऊपर कहा गया है) और वात-नली प्रविष्ट कराना चाहिये। उपकरण के सिरे पर लगी टोपी (मुखौटे) को रोगी की नाक व मुँह पर कस कर चढ़ा देना चाहिये। गेंदनुमा थैली को दबा कर आश्वास (साँस खींचने की क्रिया) कराते हैं; निश्वास (साँस छोड़ना) थैली के कपाट के रास्ते से होता है। निश्वास का समय आश्वास से अधिक होना चाहिये।

फेफड़े के कृत्रिम संवातन की किसी भी रीति को अपनाने पर उसकी कारगरता वक्ष के चढ़ाव (उभार)

चित्र 37. मुँह से नाक में फूँक कर फेफड़ों का कृत्रिम संवातन। (a) आहत के सर की स्थिति; (b) नाक के रास्ते हवा फूँकना।

और उतार के आधार पर करते हैं। श्वसन-मार्ग (मुँह, कंठ) को बाह्य (परज) वस्तु, खाद्य-पदार्थ, श्लेष्मा आदि से मुक्त (अनवरुद्ध) किये बगैर कृत्रिम श्वसन नहीं कराना चाहिये।

उपरोक्त रीतियों से फेफड़ों का लंबे समय तक

संवातन संभव नहीं होता, उनका उपयोग सिर्फ प्राथमिक उपचार और परिवहन के समय हो सकता है। इसीलिये संजीवन – हृदय की मालिश और कृत्रिम श्वसन – रोके बगैर इसका प्रबंध अवश्य करना चाहिये कि निर्विलंब आयुरी सहायता पहुँचायी जा सके या आहत को कुशल आयुरी सहायता के लिये चिकित्सालय या किसी अन्य आयुरी प्रतिष्ठान में पहुँचाया जा सके।

विशेष उपकरणों द्वारा फेफड़ों का कृत्रिम संवातन. लंबे समय तक फेफड़ों के कृत्रिम संवातन के लिये श्वास-नली (त्राखेया) में नलिका-निवेश अवश्य कराना पड़ता है। इसके लिये कंठदर्शी की सहायता से त्राखेया में एक अंतर्त्राखेयिक नली प्रविष्ट करायी जाती हैं। त्राखेया में नलिका-निवेश श्वास-मार्ग को अनवरुद्ध रखने की उत्तम रीति है। इससे कंठ में जीभ के गिरने या फेफड़ों में वमन-द्रव्य के प्रविष्ट होने का खतरा नहीं रहता। अंतर्त्राखेयिक नली द्वारा मुँह से नली में फूँक कर कृत्रिम श्वसन भी कराया जा सकता है और आधुनिक श्वास दायक उपकरणों से भी फेफड़ों का संवातन किया जा सकता है। इन उपकरणों से फेफड़ों का कृत्रिम संवातन कई दिनों और महीनों तक किया जा सकता है। 3-4 दिनों तक कृत्रिम श्वसन कराने की आवश्यकता होने पर त्राखेयोच्छेदन किया जाता है। निर्विलंब आयुरी सेवा की गाड़ियों में त्राखेया में नलिका-निवेश और उपकरण द्वारा कृत्रिम श्वसन के लिये सभी आवश्यक सामग्रियां होती हैं।

त्राखेयोछेदन – यह आपतकालीन आपरेशन को कहते हैं, जिसमें गले के सामने की सतह से हो कर त्राखेया में विशेष नली प्रविष्ट करायी जाती है। इसका उपयोग रोहिणी-जनित या मिथ्या क्रूप, परज पिंडों, कठ की क्षति आदि से उत्पन्न घुटन की परिस्थितियों में भी हो सकता है (चित्र 38)।

त्राखेयोछेदन की विशेष नली न होने पर आपतकालीन परिस्थितियों में कोई भी नली प्रयुक्त हो सकती
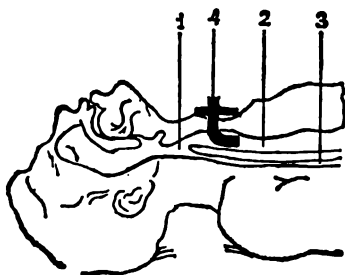
चित्र 38. त्राखेयोछेदन (साँसनली में छेद करना)। 1. कंठ; 2. त्राखेया (साँसनली); 3. ग्रासनली; 4. त्राखेया में प्रविष्ट करायी गयी नली।

है, जैसे – केटली की टोंटी, धातु की पतली नली आदि। इसे हटा लेने पर घाव जल्द ही ठीक हो जाता है।

रक्त-संचार रुकने पर संजीवन

हृदय के कार्य का रुकना विविध कारणों से संभव है, जैसे – डूबने, घुटन, गैस से विषालुता, विद्युघात

या बिजली गिरने से चोट, मस्तिष्क में आंतर रक्तस्राव, हृत्पेशी के इन्फार्क्ट तथा अन्य हृदय-रोगों, ऊष्मा-घात, रक्तहानि, हृदय के क्षेत्र में चोट, दग्ध या झुलसन, तुषारण आदि से। यह घटना कहीं भी घट सकती है – अस्पताल में, घर में, सड़क पर, काम पर आदि। इनमें से किसी भी स्थिति में संजीवन करने वाले व्यक्ति के पास निदान और मस्तिष्क में रक्तापूर्ति पुनर्स्थापित करने के लिये 3-4 मिनट से अधिक समय नहीं होता। हृदय का कार्य रुकने में दो प्रकार की प्रक्रियाओं में भेद किया जाता है: असंकोचन (हृदय की गति का पूरी तरह रुक जाना) और निलयों का स्फुरण (हृत्पेशी के निश्चित रेशों का लयहीन एवं कुसमन्वित संकोचन)। दोनों ही स्थितियों में हृदय रक्त "पंपित करना" छोड़ देता है और रक्तवाही कुंभियों में रक्त का बहना रुक जाता है।

हृदय रुकने के मुख्य लक्षण, जिनके आधार पर शीघ्र निदान किया जा सकता है: (1) बेहोशी (चेतना लुप्त होना); (2) नाड़ी की अनुपस्थिति, विशेषकर ग्रैव एवं ऊरुक (जांघ) की धमनियों में; (3) हृदय की धड़कन का न सुनायी देना; (4) साँस रुकना; (5) त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियों का विवर्ण या नीला होना; (6) पुतलियों का विस्फारण; (7) वितान, जो बेहोश होने से पहले उत्पन्न होता है और लोगों के लिये हृदय रुकने का प्रथम स्पष्ट लक्षण हो सकता है।

ये लक्षण रक्त-संचार रुकने के इतने विश्वसनीय

साक्ष्य हैं कि एक क्षण भी खोना नहीं चाहिये (धमनी-दाब, नाड़ी की गति आदि नापने में या डाक्टर की खोज करने में), तुरंत संजीवन-कार्य – हृदय की मालिश और कृत्रिम श्वसन – शुरू कर देना चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि हृदय की मालिश के साथ-साथ कृत्रिम श्वसन अवश्य कराया जाता है, ताकि संचारित होने वाले रक्त में आक्सीजन की आपूर्त्ति होती रहे। इसके बिना संजीवन-कार्य निरर्थक है।

आजकल हृदय की मालिश दो प्रकार से की जाती है: खुली या प्रत्यक्ष, जिसका उपयोग सिर्फ वक्ष-कोटर में अंगों के आपरेशन के समय प्रयुक्त होता है, और बंद, बाह्य या अप्रत्यक्ष मालिश, जो वक्ष को चीरे बगैर की जाती है।

हृदय की बाह्य मालिश की तकनीक. बाह्य मालिश में हृदय को उरोस्थि और रीढ़ के बीच एक लय में नियमित रूप से दबाया जाता है। इससे रक्त हृदय के बायें निलय से निकल कर महाधमनी में आता है और वहां से (विशेषकर) मस्तिष्क में पहुँचता है; दायें निलय से रक्त फेफड़ों में आता है और आक्सीजन से सांद्रित होता है (ये दोनों निलय हृदय के दोनों निचले कक्ष हैं; ऊपरी दोनों कक्षों – अलिंदों – में रक्त का आगमन होता है: एक में फेफड़ों से, दूसरे में पूरे शरीर का भ्रमण करने के बाद)। जब उरोस्थि पर से दाब दूर हो जाता है (उसे दबाना छोड़ देते हैं), हृत्कोटर पुनः रक्त से भर जाते हैं (चित्र 39)। हृदय की
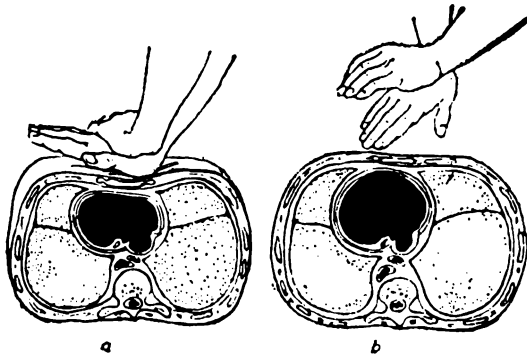
चित्र 39. हृदय की बाह्य मालिश की युक्ति। (a) हृदय का कृत्रिम संकोचन ; (b) प्रसारण (शिथिलन और निलयों में रक्त का आगमन)।

बाह्य मालिश करने के लिये रोगी को कठोर सतह पर चित लिटाते हैं। मुलायम गद्दी या तोषक पर मालिश नहीं करनी चाहिये। संजीवक व्यक्ति रोगी की बगल में बैठता है और उरोस्थि पर एक के ऊपर एक हथेली रख कर उसे इतना कस कर दबाता है कि वह रीढ़ की ओर 4-5 सेंटीमीटर मुड़ जाये। दबाने का काम प्रति मिनट 50-70 बार करना चाहिये। हथेली उरोस्थि की निचली तिहाई पर, अर्थात् असिवत प्रवर्ध से 2 उंगली ऊपर होनी चाहिये (चित्र 40)। बच्चों के हृदय की मालिश एक ही हाथ से करनी चाहिये और पयोपा (दुधमुंहे) बच्चे की – दो उंगलियों के सिरों से
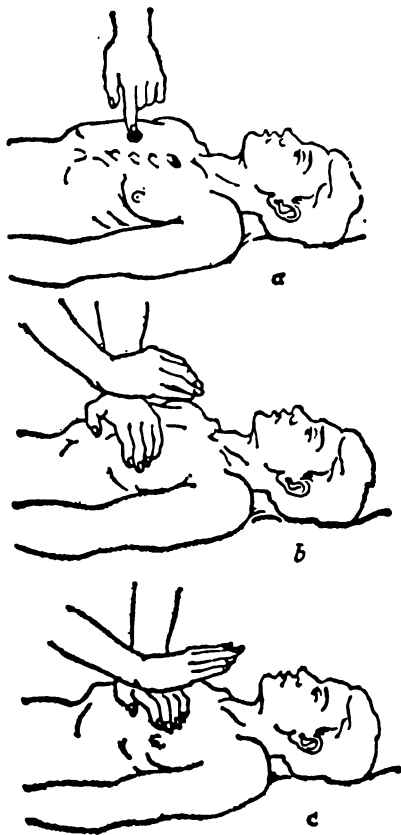
चित्र 40. हृदय की बाह्‌य मालिश की तकनीक। (a) हाथ रखने का स्थल; (b), (c) हृदय की मालिश के समय हाथों की सही स्थिति।

(प्रति मिनट 100-120 बार दबा कर)। 1 साल से कम के बच्चे में दाबने की जगह उरोस्थि के निचले सिरे के पास होती है। वयस्क के हृदय की मालिश में हाथ से ही ताकत नहीं लगाते, अपने पूरे शरीर के भार से दबाते हैं। इस मालिश में काफी शारीरिक शक्ति व्यय होती है और मालिश करने वाला आदमी बहुत थक जाता है। यदि संजीवन-कार्य एक आदमी अकेला कर रहा है, तो उरोस्थि को हर 15 बार दबाने के बाद (एक-एक सेकेंड के अंतराल पर) उसे मालिश रोक कर रोगी के मुंह में अपने मुंह से दो बार गहरी साँस छोड़नी चाहिये; यह काम विशेष श्वासदायक दस्ती उपकरण से भी किया जा सकता है। यदि दो आदमी संजीवन-कार्य कर रहे हों, तो उरोस्थि को हर 5 बार दबाने के बाद फेफड़े का एक बार संवातन करना चाहिये (चित्र 41)।

चित्र 41. कृत्रिम श्वसन और हृदय की बाह्य मालिश – एक साथ।

हृदय की मालिश की कारगरता का मूल्यांकन निम्न लक्षणों के आधार पर किया जाता है: (1) ग्रैव, ऊरुक एवं रश्मिक धमनियों में स्पंदन शुरू होना; (2) धमनी-दाब 60-80 mm Hg तक ऊपर उठ आना; (3) पुतलियों का संकोचन और प्रकाश पर उनकी प्रतिक्रिया शुरू होना; (4) नीलाभ रंग और पीलापन दूर होना; (5) साँस का धीरे-धीरे खुद शुरू होना।

यह याद रखना चाहिये कि हरमुठता से मालिश करने पर गंभीर क्लिष्टताएं भी उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे पसलियों का टूटना, जिससे वक्ष-कोटर के अंग (हृदय और फेफड़े) क्षत हो सकते हैं। उरोस्थि के असिवत प्रवर्ध को कस कर दबाने से उदरीय कोटर के अंग – जठर और यकृत – क्षत हो सकते हैं। बच्चों और वयो-वृद्ध व्यक्तियों की मालिश के समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिये।

यदि हृदय की मालिश, कृत्रिम श्वसन और दवाओं से चिकित्सा शुरू करने के 30-40 मिनट बाद तक हृदय का कार्य पुनर्स्थापित नहीं होता, पुतलियां पहले की तरह ही विस्फारित रहती हैं और प्रकाश पर कोई प्रतिक्रिया नहीं करतीं, समझना चाहिये कि अनुत्क्रमणीय परिवर्तनों के साथ मस्तिष्क की मृत्यु स्थान ले चुकी है। इस स्थिति में संजीवन-कार्य जारी रखने से कोई लाभ नहीं होता। मृत्यु के स्पष्ट लक्षण उत्पन्न हो जाने पर (दे. अध्याय 3) संजीवन-कार्य पहले भी रोका जा सकता है।

चंद गंभीर रोगों और चोटज क्षतियों में (जैसे अपवहन की क्रिया के साथ दुर्दम अर्बुद या कपाल की क्षति के कारण मस्तिष्क द्रव्य के कुचलने) की स्थिति में संजीवन निरर्थक होता है और उसे शुरू नहीं करना चाहिये। आकस्मिक मृत्यु के अन्य केसों में रोगी को जिलाने की आशा सदैव रहती है और इसीलिये हर संभव उपाय करना चाहिये।

साँस और हृदय की गति रुकने पर रोगी का परिवहन इनके पुनर्स्थापन के बाद सिर्फ विशेष ऐंबुलेंसों में करना चाहिये, जिसमें संजीवन-कार्य जारी रखने का प्रबंध होता है।

गहन चिकित्सा

फेफड़ों का कृत्रिम संवातन और हृदय की मालिश– ये आत्मनिर्भर रक्त-संचार, श्वसन और मस्तिष्क तथा अन्य अंगों के कार्यों को पुनर्स्थापित करने की दिशा में सिर्फ आरंभिक उपाय हैं। संजीवन-कार्य की सफलता इन युक्तियों को निर्विलंब अपनाने पर ही नहीं निर्भर करती है, इसमें यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अंत्य अवस्था की उत्पत्ति का कारण कहां तक सही निर्धारित किया जा सका है और औषधियों एवं अंतर्सरण (शरीर में विभिन्न द्रवों के आधान) से तदनुरूप चिकित्सा कहां तक सार्थक है। रक्त-संचार रुकने का कारण निर्धारित करने के लिये वैद्युत हृत्लेख से अन्वीक्षण करना चाहिये। असंकोचन

ग्रौर स्फुरण के विद्युहृत्लेखों (ई. सी. जी.) में ग्रंतर बहुत विशिष्ट होता है; इससे हर ग्रायुर-कर्मी को परिचित होना चाहिये (चित्र 42)।
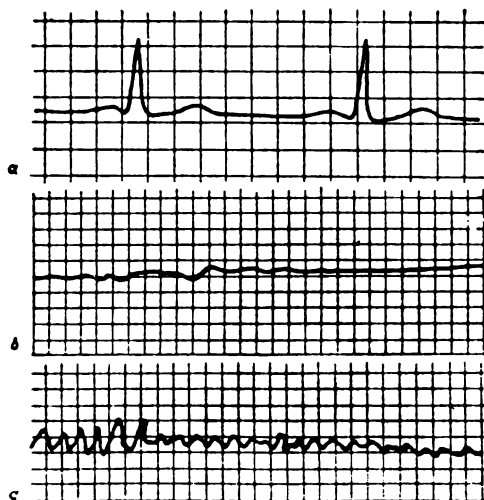
चित्र 42. विद्युहृदलेख। (a) सामान्य; (b) ग्रसंकोचन; (c) निलयी स्फुरण।

स्फुरण की चिकित्सा के लिये विशेष उपकरण प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें निस्स्फुरक कहते हैं; ये एक प्रकार के वैद्युत-धारित्र हैं, जो कुछेक हजार वोल्ट का वैद्युत निरावेशन उत्पन्न कर सकते हैं। निस्स्फुरक से काम करने

में सुरक्षा-नियमों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिये। 3000 से 7000 वोल्ट की वैद्युत-धारा का निरावेशन हृदय के स्फुरण को बिना वक्ष विवृत किये भी दूर कर सकता है। आजकल द्रुत आयुरी सेवा की विशेष संजीवनी गाड़ियां आधुनिकतम निस्स्फुरक-धारित्रों से लैस होती हैं।

अंत्य अवस्था और तल्पिक मृत्यु की औषधीय चिकित्सा अक्सर डाक्टरों द्वारा की जाती है, जो दुर्घटनास्थल पर विशेष गाड़ियों में आते हैं। संजीवन में दवाएं देने के उद्देश्य निम्न हैं: हृदय की संकोचन-क्षमता बढ़ाना, उसमें द्रव्य-विनिमय पुनर्स्थापित करना, अम्ल-भस्म के संतुलन में गड़बड़ी (अम्लक्लेश) दूर करना (रक्त-संचार इसी गड़बड़ी के फलस्वरूप रुकता है), संजीवन-काल के बाद की क्लिष्टताओं को, विशेषकर मस्तिष्क के शोफ को, दूर करना।

हृदय का कार्य पुनर्स्थापित करने के लिये आद्रेनालीन का उपयोग होता है। यह हृत्पेशियों की तानता पर बहुत शक्तिशाली प्रभाव डालता है। इसके 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल की 0.5 मिलिमीटर मात्रा सोडियम क्लोराइड या ग्लूकोज के तुल्यतानिक घोल में मिला कर सीधे हृदय में या शिरा में आधानित की जाती है। इसी उद्देश्य से एफेद्रीन, मेजातोन, नोर-आद्रेनालीन का भी उपयोग होता है। कैल्सियम के प्रसाधन – कैल्सियम क्लोराइड और कैल्सियम ग्लूकोनेट – भी अच्छा प्रभाव डालते हैं। ये दवाएं भी हृदय के संकोचन को बढ़ावा देती हैं और हृदय रुकने पर कारगर सिद्ध होती हैं।

कैल्सियम क्लोराइड की 10 प्रतिशत सांद्र घोल की 5-10 मिलिमीटर मात्रा कभी-कभी हृदय में ग्राद्रेनालीन के साथ ग्राधानित करते हैं। संजीवन में विशेषकर निलयों के निस्स्फुरण से पूर्व, स्फुरण की स्थिति में प्रोकेनामीद हाइड्रोक्लोराइड (या नोवोकेनामीद) का भी उपयोग करते हैं। कभी-कभी यह दवा हृदय का स्फुरण भी दूर कर देती है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि ग्रम्लक्लेश की स्थिति में संजीवन ग्रौर ग्रौषधीय चिकित्सा कारगर नहीं होते। इसीलिये मौका मिलते ही सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट का 4-8.4 प्रतिशत सांद्र घोल ग्राधानित करते हैं। ग्रुप बी के विटामिनों, ऐस्कोर्बिक ग्रम्ल ग्रौर प्रेद्नीजोलोन की सूइयां भी महत्त्वपूर्ण होती हैं, ये दवाएं ग्रम्लक्लेश दूर करने ग्रौर हृदय का कार्य पुनर्स्थापित करने में सहायक हो कर द्रव्य-विनिमय पर प्रभाव डालती हैं। संजीवन के समय श्वास तथा केंद्रीय नर्वतंत्र उद्दीपित करने वाले प्रसाधन (कोर्डिग्रामिन, लोबेलिन, सीटीटोन, स्त्रिख्निन ग्रादि) नहीं देने चाहिये, क्योंकि ये कोशिकाग्रों में द्रव्य विनिमय की प्रक्रिया तीव्र कर के उनमें ग्राक्सीजन की ग्रावश्यकता बढ़ा देते हैं, जिससे ग्रवाक्सिता ग्रौर भी टिकाऊ हो जाती है। संजीवन के समय सभी दवाएं शिरा में या हृदय में ग्राधानित की जाती हैं। ग्रवचार्म एवं ग्रंतर्पेशीय सूइयां रक्त-प्रवाह की ग्रनुपस्थिति के कारण ग्रकारगर होती हैं ग्रौर रक्त-संचार सामान्य होने के बाद इन सूइयों की दवा के ग्रपचोषण से रोगी के

लिये घातक परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं। इसीलिये शिरा में एक नली प्रविष्ट करा ली जाती है, जिससे औषधियां आवश्यकतानुसार आधानित की जा सकें। पिछले वर्षों से संजीवन-कार्य के लिये हृदय के निकट स्थित बृहत शिराओं में बनी नली प्रविष्ट करायी जाती है, जैसे अधोजत्रुक (हँसुली के नीचे की) या कंठ्य शिराओं में। संजीवन के समय दवा आधानित करने के लिये हृदय की मालिश और कृत्रिम श्वसन का काम 10-15 सेकेंड से अधिक नहीं रोकते।

संजीवनोत्तर काल में गहन चिकित्सा के रूप में बड़े पैमाने पर द्रव-आधान का कार्य होता है। आधानित किये जाने वाले द्रवों में निम्न की गणना होती है: रक्त या कोई रक्त-विस्थापक द्रव, विद्युविश्लेषकों और ऊर्जिक द्रव्यों (ग्लूकोज, स्पीरिट) के घोल, उन दवाओं के घोल, जो रक्त-स्तंभन के विभिन्न पक्षों का नियमन करते हैं, अंतर्जनित या बहिर्जनित आगरण (विषालुता) को दूर करते हैं।

संजीवनी सहायता का सुसंगठन

संजीवनी सहायता की आवश्यकता कहीं भी और किन्हीं भी परिस्थितियों में उत्पन्न हो सकती है। इस स्थिति में आदमी का जीवन इसी बात पर निर्भर करता है कि उसे सहायता पहुँचाने वाला व्यक्ति संजीवनी

(हृदय को बाह्य मालिश करने और कृत्रिम श्वसन कराने) की कला में किस हद तक पारंगत है। स्वाभाविक है कि पर्याप्त और वास्तविक संजीवनी सहायता कोई आयुर-कर्मी ही दे सकता है।

डाक्टरखानों, दवाखानों तथा किसी भी प्रकार के अन्य आयुर-केंद्रों में इस तरह का कक्ष अवश्य होना चाहिये, जहां व्यक्ति को संजीवनी सहायता पहुंचायी जा सके; इसके लिये विशेष बैग में निम्न वस्तुएं सदैव तैयार रहनी चाहिये :

(1) निष्कीटित पट्टियां और नैपकिन ;

(2) विशेष पैकिंगों में सिरिंज ;

(3) रक्त-रोधक पाश ;

(4) मुँह से मुँह में फुंक कर कृत्रिम श्वसन कराने के लिये वातनली ;

(5) सुवाह्य श्वासदायक उपकरण ;

(6) दवाएं : आद्रेनालीन का 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल (ऐंपुलों में) ; कैल्सियम क्लोराइड का 10 प्रतिशत सांद्र घोल (ऐंपुलों में) ; काफेइन ; एफेद्रीन ; स्त्रोफांतीन ; प्रोमेडोल या मोर्फीन ; प्रेद्नीजोलोन (भीतर आधान कराने के लिये) ; नोवोकेन (प्रोकेन) हाइपोक्लोराइड ; पापावेरिन ; नित्रोग्लीसेरिन (टिकियों में) ; अंतर्शिरीय सूई के लिये घोल – पोलीग्लूसीन, हेमोड और जेलाटीनोल ;

(7) शिरा-छिद्रन के लिये सूइयां ;

(8) अंतर्शिरीय आधान के लिये निष्कीटित तंत्र।

द्रुत आयुरी सेवा के अंतर्गत संजीवनीलोचनी सेवा का संगठन यथासमय संजीवनी सहायता प्रदान करने के लिये अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसमें विशेष गाड़ियों का उपयोग होता है, जिनमें संजीवन-कार्य और यहां तक कि छोटे-मोटे आपरेशनों (जैसे श्वासनली-छेदन, शिराओं, धमनियों तथा हृदय में नलिका प्रविष्ट कराने, हृदय की प्रत्यक्ष मालिश करने) के लिये भी सभी आवश्यक वस्तुएं उपस्थित रहती हैं।

अध्याय 6

रक्ताधान

रक्ताधान (रक्त का आधान) बीमार व्यक्ति (ग्राहक) के रक्त-मार्ग में अन्य व्यक्ति (डोनर; दाता) का रक्त प्रविष्ट कराने की क्रिया को कहते हैं। एक आदमी का रक्त दूसरे को देने के प्रयत्न 17-वीं शती से ही शुरू हो गये थे, लेकिन यह आपरेशन सिर्फ 20-वीं शती में ही निरापद हो पाया, जब तुल्य-अभिश्लेषण का नियम ज्ञात हुआ, जिसके आधार पर सभी लोग रक्ताभिश्लेषी गुणों के अनुसार चार ग्रुपों में बाँटे जाते हैं (या. यांस्की, 1907)। रक्त या रक्त-विस्थापक द्रव के आधान का सिद्धांत विकसित करने में निम्न रूसी एवं सोवियत वैज्ञानिकों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है: अ. फीलोमाफीत्स्की, ई. बूयास्की, से. स्पासोकूकोत्स्की, व्ला. शामोव, नि. बुर्देंको आदि।

रक्त-ग्रुप. बहुसंख्य अन्वीक्षणों से यह दिखाया गया कि रक्त में भिन्न प्रकार के प्रोटीन (एग्लूतीनोजन और एग्लूतीनिन) होते हैं, जिनके मेल (उपस्थिति या अनुपस्थिति) के अनुसार रक्त के चार ग्रुप बनते हैं। हर ग्रुप को अलग प्रतीक द्वारा द्योतित करते हैं:

O(I), A(II), B(III), AB(IV)। ज्ञात किया गया है कि समान ग्रुप का ही रक्त ग्राधानित किया जा सकता है। ग्रपवादजनक स्थितियों में, जब समान ग्रुप का रक्त नहीं मिल पाता, ग्रन्य ग्रुप का रक्त भी ग्राधानित किया जा सकता है। इन स्थितियों में ग्रुप O(I) का रक्त किसी भी ग्रुप के रक्त वाले रोगी में ग्राधानित किया जा सकता है ग्रौर ग्रुप AB(IV) के रक्त वाले रोगी में किसी भी ग्रन्य ग्रुप का रक्त ग्राधानित किया जा सकता है।

बेमेल का रक्त ग्राधानित करने पर गंभीर जटिलताएं उत्पन्न होती हैं ग्रौर रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसी-लिये रक्ताधान से पूर्व रोगी ग्रौर डोनर के रक्त के ग्रुप सही-सही निर्धारित कर लेने चाहिये।

रक्त का ग्रुप निर्धारित करने के लिये ग्रुप O(I), A(II), B(III) के मानक रक्त-सीरम प्रयुक्त होते हैं, जिन्हें रक्ताधान-केंद्र की प्रयोगशाला में विशेष रूप से तैयार किया जाता है। सफेद प्लेट पर 3-4 सेंटीमीटर की दूरी पर ग्रंक I, II, III ग्रंकित कर लेते हैं, जो मानक सीरमों को द्योतित करते हैं। ग्रुप O(I) के मानक सीरम की एक बूंद ड्रौपर से प्लेट के उस हिस्से पर डालते हैं, जिसपर I ग्रंकित है। इसके बाद दूसरे ड्रौपर से ग्रुप A(II) के मानक सीरम की एक बूंद ग्रंक II के नीचे रखते हैं; इसी तरह तीसरे ड्रौपर से ग्रुप B(III) के सीरम की एक बूंद ग्रंक III के नीचे रखते हैं।

इसके बाद परीक्षणाधीन व्यक्ति की उंगली में सूई चुभा कर बहते रक्त को काँच की छड़ से प्लेट में स्थित सीरम की बूंद में डालते हैं और तबतक अच्छी तरह फेंटते (मिश्रित करते) हैं, जबतक वह समरूपता से रंजित नहीं हो जाती। अन्य सीरमों की बूंदों के साथ भी यही करते है (काँच की छड़ हर बार अलग-अलग लेते हैं)। रंजित होने के ठीक 5 मिनट बाद (घड़ी देख कर!) मिश्रणों में उत्पन्न परिवर्तन के अनुसार रक्त का ग्रुप निर्धारित करते हैं। जिस सीरम में अभिश्लेषण (लाल रक्तकणों का आपस में चिपकना) संपन्न होता है, उसमें लाल कण और ढोंके साफ-साफ दिखने लगते हैं; जिस सीरम में अभिश्लेषण नहीं होता, वह समज रह जाता है, गुलाबी रंग में समरूपता से रंगा नजर आता है। परीक्षणाधीन व्यक्ति के रक्त-ग्रुप के अनुसार अभिश्लेषण निश्चित नमूनों में ही उत्पन्न होगा। यदि उसके रक्त का ग्रुप O(I) है, तो अभिश्लेषण एक भी सीरम में नहीं होगा। यदि उसके रक्त का ग्रुप A(II) है, तो अभिश्लेषण सिर्फ ग्रुप A(II) के सीरम में नहीं होगा। परीक्षणाधीन रक्त का ग्रुप B(III) होने पर अभिश्लेषण सिर्फ ग्रुप B(III) के सीरम के साथ नहीं होगा। यदि रक्त का ग्रुप AB(IV) होगा तो अभिश्लेषण सभी सीरमों के साथ हो जायेगा (चित्र 43)।

रेजुस-फैक्टर. कभी-कभी समान ग्रुप का रक्त आधानित करने पर भी गंभीर प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है।
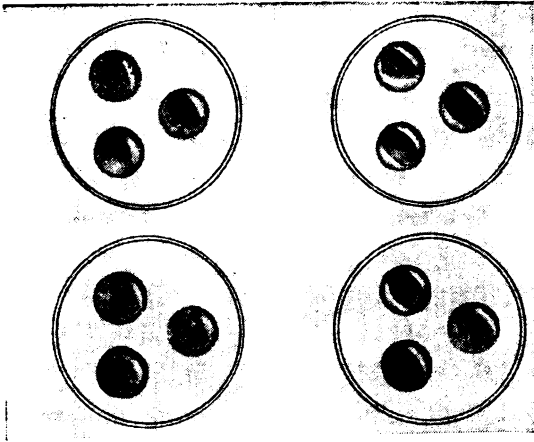
चित्र 43. मानक सीरम की सहायता से रक्त का ग्रुप निर्धारित करना।

अन्वीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि लगभग 15 प्रतिशत लोगों के रक्त में एक विशेष प्रोटीन – तथाकथित रेज़ुस फैक्टर (क्योंकि यह फैक्टर या घटक पहली बार बंदरों के रक्त में पाया गया) – अनुपस्थित होता है। यदि इन लोगों में इस फैक्टर से युक्त रक्त दुबारा आधानित किया जाये, तो गंभीर क्लिष्टता उत्पन्न होती है, जिसे रेजुस-द्वंद कहते हैं, और अभिघात विकसित होता है। आजकल हर रोगी का रेजुस फैक्टर अवश्य निर्धारित किया जाता है, क्योंकि ऋण रेजुस फैक्टर वाला रक्त

सिर्फ ऋण रेजुस फैक्टर वाले रक्त में ग्राधानित किया जा सकता है।

रेजुस फैक्टर शीघ्रता से निर्धारित करने की रीति. पेट्री (Petri) के कप में उसी ग्रुप के एंटीरेजुस-सीरम की 5 बूंद डालते हैं, जो ग्राहक के रक्त का ग्रुप है। सीरम में परीक्षणाधीन रक्त की एक बूंद डालते हैं और अच्छी तरह मिश्रित कर देते हैं। फिर कप को 42-45°C तापक्रम पर पानी के टब में रख देते हैं। प्रतिक्रिया के परिणाम का मूल्यांकन 10 मिनट बाद किया जाता है। यदि रक्त का अभिश्लेषण हो जाता है, तो परीक्षणाधीन व्यक्ति का रक्त रेजुस-धन (Rh+) होता है, अन्यथा रेजुस-ऋण (Rh—) होता है।

रेजुस फैक्टर निर्धारित करने की अन्य रीतियां भी विकसित की गयी हैं, जिनमें एक विशेष है—सार्विक एंटीरेजुस प्रतिकारी D की सहायता से रेजुस फैक्टर का निर्धारण।

अस्पताल में भरती सभी रोगियों के रेजुस का परीक्षण अवश्य होता है और परिणाम रोगी के पासपोर्ट में दर्ज कर दिया जाता है।

हर रक्ताधान से पूर्व रक्त का ग्रुप और रेजुस निर्धारित करने के अतिरिक्त व्यक्तिगत एवं जीवलोचनी सुमेलपन का भी परीक्षण किया जाता है।

व्यक्तिगत सुमेलपन का परीक्षण निम्न रीति से होता है: रोगी के रक्त-सीरम की दो बूंद पेट्री के कप में रख

कर उसमें डोनर के रक्त की एक बूंद अच्छी तरह मिला देते हैं। यदि 10 मिनट बाद अभिश्लेषण नहीं होता, तो दोनों के रक्त व्यक्तिगत रूप से मेल खाते हैं और डोनर का रक्त रोगी को दिया जा सकता है।

जीवलोचनी सुमेलपन का परीक्षण रक्ताधान के क्षण किया जाता है। रक्ताधान-तंत्र जब रक्त की शीशी के साथ जोड़ दिया जाता है और सूई रक्तवाही कुंभी (शिरा या धमनी) के मार्ग में प्रविष्ट करा ली जाती है, शुरू में 3-5 मिलिमीटर रक्त धार के रूप में आधान करा के रोक दिया जाता है। अब कुछ मिनटों तक रोगी की सार्वदैहिक अवस्था का प्रेक्षण करते हैं। यदि कोई अवांछनीय प्रतिक्रिया नहीं होती (जैसे – सरदर्द, कमर व हृदय के क्षेत्र में दर्द, घुटन, चर्म में रक्तातिरेक, कँपकँपी आदि), तो समझना चाहिये कि रक्त जीवलोचनी रूप से मेल खाता है और आधान कराया जा सकता है। परीक्षण या रक्ताधान के समय प्रतिक्रिया उत्पन्न होते ही रक्ताधान रोक देना चाहिये।

रक्ताधान की रीतियां. रक्ताधान प्रत्यक्ष रीति से की जा सकती है, जिसमें डोनर का रक्त सिरिंज में लेकर उसे तुरंत उसी रूप में ग्राहक के रक्तवाही मार्ग में आधानित करा देते हैं। रक्ताधान की अप्रत्यक्ष रीति में डोनर का रक्त पहले से एक बर्तन में रख लेते हैं और उसे स्कंदन (फटने) से बचाने के लिये उसमें एक विशेष घोल मिला देते हैं; इस रक्त को कुछ समय बाद रोगी में आधानित कराते हैं।

3
4
2
1
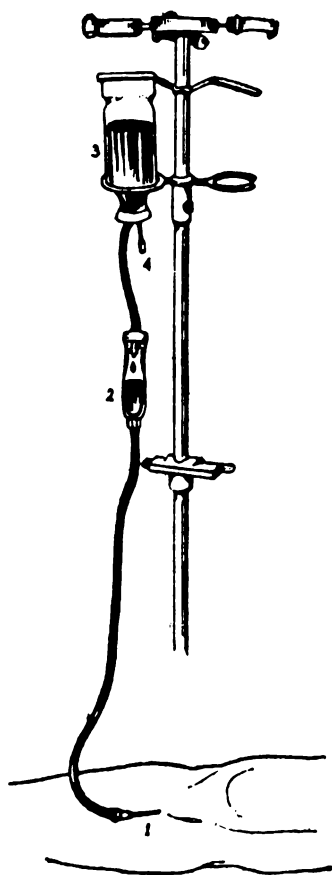
प्रत्यक्ष रीति जटिल होती है, उसे अपवादजनक स्थितियों में ही अपनाया जा सकता है, जब इसके लिये विशेष सुसंकेत होते हैं। अप्रत्यक्ष रीति काफी सरल होती है, इसमें रक्त का भंडार संचित करने का समय रहता है, आधान की गति और मात्रा दोनों सरलतापूर्वक नियंत्रित की जा सकती है। अप्रत्यक्ष रीति से रक्ताधान विविध परिस्थितियों में भी संभव होता है (जैसे द्रुत आयुरी सेवा के ऐंबुलेंस, विमान आदि में भी), और कई क्लिष्टताओं से बचा जा सकता है, जो प्रत्यक्ष रीति में अक्सर उत्पन्न हो जाती हैं।

रक्त का आधान धमनी, शिरा और अस्थि-मज्जा में किया जा सकता है। गति के अनुसार आधान दो प्रकार से होता है: बूंद-बूंद कर के या धार के रूप में।

रक्त का अंतर्धमनीय आधान संजीवन के समय उन परिस्थितियों में किया जाता है, जब शीघ्रता से रक्त-हानि की पूर्त्ति करनी पड़ती है, दाब बढ़ाना होता है और हृदय के कार्य को उद्दीपित करना पड़ता है। अधिकांशत: रक्त का अंतर्शिरीय आधान कराया जाता है (चित्र 44)। शिरा में जब सूई प्रविष्ट कराना

चित्र 44. बूंद-बूंद कर के अंतर्शिरीय आधान। 1. शिरा के भीतर प्रविष्ट सूई; 2. ड्रौपर-युक्त तंत्र (प्लास्टिक का); 3. रक्त का बरतन; 4. बरतन में हवा के प्रवेश के लिये फिल्टर-युक्त सूई।

असंभव होता है, तो रक्त का आधान अस्थि के भीतर मज्जा में कराया जाता है (उरोस्थि, एड़ी की अस्थि, कूल्हे की अस्थि में)।

रक्ताधान के सुसंकेत. (1) तीव्र रक्ताल्पता: आधानित रक्त शरीर में रक्त के आयतन और हेमोग्लोबिन एवं एरीथ्रोसीत (लाल रक्त-कणों) की मात्रा को सामान्य करता है। जब रक्तहानि बहुत अधिक होती है, तब दो से तीन लीटर तक रक्त आधान करना पड़ता है।

(2) अभिघात: रक्ताधान से रक्त-दाब और हृदय का कार्य ठीक होता है, कुंभियों की तानता बढ़ती है और गंभीर आपरेशन के समय चोटज अभिघात के विकास को रोकता है।

(3) चिरकालिक क्षयकारी रोग, आगरण, रक्त के रोग: आधानित रक्त से रक्तसर्जक प्रक्रियाएं उद्दीपित होती हैं, शरीर के रक्षी कार्य बेहतर हो जाते हैं, आगरण (शरीर में विषाक्रांति) कम होता है।

(4) तीव्र विषाक्रांति (विषों या गैसों से): रक्त में अच्छे निरागरणकारी गुण होते हैं, वह विषों की हानिकारी क्रिया को कम करता है।

(5) रक्त की स्कंदन-क्षमता में गड़बड़ी: अल्प खुराकों में (100-150 मिलिलीटर) रक्त आधानित करने पर उसकी स्कंदन-क्षमता बढ़ती है।

रक्ताधान के प्रतिसंकेत: वृक्क और यकृत में गंभीर शोथी रोग, हृदय की त्रुटियां जिनका संपूरण नहीं हो

पाता, मस्तिष्क में रक्तस्राव और क्लोम-गंठिक्लेश (फेफड़े के यक्ष्मा) के अंतर्स्यंदी रूप।

<u>सोवियत संघ में रक्तदान</u>. अपने रक्त का एक अंश दान करने वाले व्यक्ति को (रक्त-) दाता या डोनर कहते हैं। डोनर 18 से 55 वर्ष की उम्र का कोई भी स्वस्थ व्यक्ति हो सकता है। अधिकांश डोनर रोगियों के चिकित्सा के लिये अपना रक्त निःशुल्क देते हैं। हजारों स्वस्थ लोग रक्तदान को अपना नागरिक कर्त्तव्य मानते हैं और कई-कई बार अपना रक्त देते हैं, उन्हें "सोवियत संघ का डोनर" की पदवी से विभूषित किया जाता है।

रक्त जमा करने का काम रक्ताधान-केंद्रों में, बड़े अस्पतालों और विशेष शोध-संस्थानों में होता है।

कारखानों, उच्च शिक्षा-संस्थानों एवं अन्य विविध प्रतिष्ठानों में "डोनर-दिवस" मनाया जाता है। इस दिन आयुर-कर्मी इन स्थलों पर आ कर लोगों से रक्त जमा करते हैं। रक्तदान लोग अपनी स्वेच्छा से करते हैं।

अध्याय 7

रक्तस्राव का प्राथमिक उपचार

आदमी के शरीर में रक्त का परिसंचरण रक्तवाही कुंभियों—धमनियों, केशिकाओं और शिराओं—के सहारे होता रहता है। कुंभियां सभी अंगों एवं ऊतकों में फैली रहती हैं। किसी भी अंग या ऊतक के क्षत होने पर कमोबेश रूप से रक्तवाही कुंभियां भी अवश्य क्षत होती हैं।

किसी रक्तवाही कुंभी से रक्त का असामान्य रास्ते से निकलना रक्तस्राव कहलाता है। रक्तस्राव के अनेक कारण हो सकते हैं। अधिकांशतः इसका कारण सीधा (प्रत्यक्ष) चोट होती है (चुभना, कटना, कुचलना, लमड़ना, आघात आदि)। रक्तस्राव की तीव्रता क्षत कुंभियों की संख्या, उनके आकार (व्यास), क्षति की प्रकृति (कुंभी का पूरी तरह कट जाना, उसकी दीवार का क्षत होना, उसका कुचलना आदि) और क्षत कुंभी के प्रकार (धमनी, शिरा, केशिका) पर निर्भर करता है। रक्तस्राव की तीव्रता धमनी-दाब और रक्त के स्कंदक-तंत्र की अवस्था पर भी निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त, इस बात का भी महत्त्व होता है कि रक्त किधर स्रावित हो रहा है: शरीर के बाहर या भीतर (किसी बड़े या छोटे कोटर में, जैसे—प्लूरा-कोटर, उदरीय कोटर, घुटने की संधि के कोटर आदि में), या मृदु

ऊतकों में (अवचार्म कोशिकीय ऊतक, पेशियों, अंतरापेशीय अवकाश आदि में)।

खीरकठोरनी प्रक्रिया से ग्रस्त कुंभियां धमनी-दाब बढ़ने से (अतितान-रोग में) नष्ट होने लगती हैं। (खीरकठोरन: कुंभियों की भीतरी दीवारों पर वसावत मुलायम द्रव्यों के जमकर कठोर होने की क्रिया, जिससे रक्त के बहाव में अवरोध पड़ने लगता है। — अनु.)। धमनीय अपस्फारण के स्थल का फटना विशेष खतरनाक होता है, क्योंकि इससे सारा संचाररत खून कुछ मिनटों में बह कर निकल जा सकता है। अपस्फारित शिरा से भी रक्तस्राव काफी गंभीर होता है।

निवाहिकीय अतितान (यकृत की पीतार्ति) की स्थिति में ग्रासनली की शिरा के विस्फारण-स्थल से रक्तस्राव सबसे अधिक खतरनाक होता है। रक्तवाही कुंभी की दीवार का नष्ट होना शोथ एवं व्रणन की प्रक्रिया या दुर्दम अर्बुद से भी संबंधित हो सकता है।

रक्तस्राव का कारण कभी-कभी रक्त की रासायनिक संरचना में परिवर्तन भी हो सकता है, जिसके फलस्वरूप वह अक्षत कुंभी की दीवार भी पार कर के निकल आ सकता है। ऐसी अवस्था कई रोगों में अवलोकित होती है, जैसे पीलिया, सृपन, रक्त के रोगों आदि में।

रक्तस्राव के प्रकार

रक्तस्राव विभिन्न तीव्रताओं से होता है, जो क्षत रक्तवाही कुंभी के प्रकार पर निर्भर करती है। रक्तस्राव

के निम्न भेद हैं: धमनीय, शिरीय, केशिकीय और मृदूतकीय।

धमनीय रक्तस्राव क्षत धमनियों से होता है। स्रावित रक्त चमकदार लाल रंग का होता है और प्रबल स्पंदमान धार के रूप में निकलता है। धमनीय रक्तस्राव सबसे खतरनाक होता है; यह अक्सर बहुत तीव्र होता है, इसलिये इससे रक्तहानि बहुत बड़ी मात्रा में होती है। बड़ी धमनियों एवं महाधमनियों के क्षत होने पर कुछ मिनट में इतना अधिक रक्त बह जा सकता है कि रोगी की मृत्यु हो जाती है।

शिरीय रक्तस्राव शिराओं के क्षत होने पर उत्पन्न होता है। शिराओं में दाब धमनियों की तुलना में काफी कम होता है, इसलिये रक्त धीरे-धीरे कभी समरूप, तो कभी असमरूप धार के रूप में बहता है। रक्त गाढ़े जामुनी रंग का होता है। शिरीय रक्तस्राव धमनीय से कम तीव्र होता है, इसीलिये कम ही स्थितियों में खतरनाक होता है। लेकिन गरदन और वक्ष की शिराओं के क्षत होने पर एक अन्य घातक खतरा उत्पन्न हो जाता है। इन शिराओं में साँस खींचते समय ऋण दाब उत्पन्न होता है, इसलिये गहरी साँस लेने पर उनमें क्षत स्थल से हो कर हवा प्रविष्ट हो जा सकती है। हवा के बुल-बुले रक्तधारा के साथ बहते हुए हृदय में प्रविष्ट हो जाते हैं, वे हृदय और रक्तवाही कुंभियों को अवरुद्ध कर दे सकते हैं; इसे वात-लोष्टन कहते हैं, जिससे क्षण भर में मृत्यु हो जा सकती है।

केशिकीय रक्तस्राव केश जैसी पतली नलियों के समान सूक्ष्म रक्तवाही कुंभियों–केशिकाओं–की क्षति से होता है। इस तरह का रक्तस्राव चर्म के कम गहराई तक कटने या कुचलने से होता है। सामान्य स्कंदन-क्षमता की स्थिति में केशिकीय रक्तस्राव स्वयं रुक जाता है।

मृदूतकीय रक्तस्राव. यकृत, प्लीहा, वृक्क तथा अन्य मृदूतकीय अंगों में धमनीय, शिरीय एवं केशिकीय कुंभियों का जाल-सा बना होता है। इन अंगों के क्षत होने पर उनमें स्थित सभी प्रकार की कुंभियां क्षत हो जाती हैं और विपुल रक्तस्राव होता है, जिसे मृदूतकीय कहते हैं। चूँकि ये कुंभियां अंग के ऊतकों में लिपटी होती हैं, इसलिये उनका निपात नहीं होता और रक्तस्राव लगभग कभी भी खुद ब खुद नहीं रुकता।

क्षत कुंभी से रक्त शरीर से बाहर निकल रहा है या भीतर, इसके आधार पर बाह्य और आंतर रक्तस्राव में भेद करते हैं।

बाह्य रक्तस्राव चर्म में घाव से होकर शरीर की बाह्य सतह पर रक्त बहने की क्रिया को कहते हैं। जब बाहरी परिवेश से संबंधित खोखले अंगों (जैसे जठर, आंत्र, मूत्राशय, श्वास-नली) के भीतरी भाग में रक्त बहता है, तो इसे बाह्य गुप्त रक्तस्राव कहते हैं, क्योंकि रक्त का बाहर की ओर विरेचन कुछ समय बाद होता है (कभी-कभी तो कुछ घंटों बाद ही)।

आंतर रक्तस्राव में रक्त शरीर के अंदर किसी कोटर में जमा होने लगता है। यह निम्न परिस्थितियों में

अवलोकित होता है: बेधक घावों (जखमों) तथा बंद (भीतरी) क्षतियों में (जैसे शक्तिशाली चोट लगने, ऊँचाई से गिरने या भारी वस्तु से दबने के कारण चर्म के क्षत हुए बगैर आंतर अंगों के विदार में) और आंतर अंगों के रोगों की स्थिति में (जैसे आंतर अंगों के व्रण, कैंसर, यक्ष्मा आदि से; रक्तवाही कुंभियों के विस्फारण से)।

चारों ओर से बंद कोटरों (प्लूरिक व उदरीय कोटरों, परिहृद् वस्तिका और कपाल-कोटर) में रक्त का आंतर स्राव विशेष खतरनाक होता है। यह रक्तस्राव छिपा होता है और इसीलिये इसका निदान कठिन होता है; रोगी का बहुत ध्यानपूर्वक निरीक्षण किये बगैर उसका पता नहीं चलता।

शरीर में रक्त की जो कुल मात्रा संचारित होती रहती है, वह प्लूरिक या उदरीय कोटर में सरलतापूर्वक अँट जा सकती है, इसलिये इस तरह के रक्तस्राव से मृत्यु भी हो सकती है।

कभी-कभी रक्तस्राव अपनी मात्रा के कारण नहीं, वरन् इसलिये खतरनाक होता है कि वह किसी जीव-नावश्यक अंग को दबाने लगता है। यथा, परिहृद वस्तिका में रक्त जमा होने से हृदय दबने लग सकता है, जिससे उसका धड़कना रुक सकता है; इसी तरह कपाल-कोटर में रक्त बहने से मस्तिष्क संपीडित होने लगता है, जिससे मृत्यु हो सकती है। अंतरा-ऊतकीय व्योम और ऊतकों (पेशियों, वसीय ऊतकों) में भी

रक्तस्राव से रक्तहानी काफी बड़ी हो सकती है। ऐसी स्थितियों में तथाकथित रक्तार्ब, निस्सृतिक्लेश (रक्तावसृति) उत्पन्न होते हैं।

रक्तस्राव इसलिये खतरनाक होता है कि संचाररत रक्त की मात्रा में कमी से हृदय का कार्य बदतर होने लगता है, जीवनावश्यक अंगों—मस्तिष्क, वृक्कों तथा यकृत—में आक्सीजन की आपूर्त्ति में गड़बड़ी उत्पन्न होती है। इससे शरीर में द्रव्य-विनिमय से संबंधित सभी प्रक्रियाओं में कुपरिवर्तन होने लगते हैं, जिससे अंत्य अवस्था का विकास तेज हो जाता है।

बाह्य रक्तस्राव में प्राथमिक उपचार

प्राथमिक उपचार की परिस्थितियों में रक्तस्राव सिर्फ अस्थायी तौर पर इतनी देर तक रोका जा सकता है कि आहत को किसी चिकित्सालय तक पहुँचाया जा सके।

रक्तस्राव को अस्थायी तौर पर रोकने के लिये निम्न रीतियां प्रयुक्त होती हैं: (1) शरीर के क्षत अंग को धड़ के सापेक्ष ऊँचाई पर रखना; (2) क्षत स्थल पर संपीडक पट्टी से रिसने वाली कुंभी को दबा कर रखना; (3) धमनी को उंगलियों से दबा कर रखना; (4) हाथ या पैर को इस स्थिति में रखना कि जोड़ (संधि) पर वह पूरी तरह मुड़ा या फैला रहे; (5) रक्तरोधक पाश द्वारा अंग को चारों ओर से संपीडित करना; (6) घाव

(जखम) में रक्तस्रावी कुंभी को क्लिप करना (इस कार्य में विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है)।

केशिकीय रक्तस्राव घाव पर साधारण पट्टी बांधने से ही सरलतापूर्वक रुक जाता है। परिधान-सामग्री (पट्टी आदि) तैयार करते समय रक्तस्राव कम करने के लिये क्षत हाथ या पैर को धड़ से ऊँचा रखना काफी होता है। इससे हाथ (या पैर) में रक्त का आगमन तेजी से कम हो जाता है, कुंभियों में दाब घट जाता है, जिससे घाव में रक्त के शीघ्र स्कंदन में सहायता मिलती है; स्कंदन से कुंभी अवरुद्ध हो जाती है और रक्तस्राव रुक जाता है।

शिरीय रक्तस्राव को अस्थायी तौर पर संपीडक पट्टी से रोका जा सकता है। घाव पर गजी की कई तर परतें और कसी रूई का पैड रखते हैं, फिर कस कर पट्टी बांध देते हैं। पट्टी से दब कर रक्त-कुंभियां शीघ्र ही लोष्टित (लोष्ट, अर्थात् रोड़े से अवरुद्ध) हो जाती हैं, अतः इसके बाद रक्तस्राव रोकने के लिये अक्सर और कुछ नहीं करना पड़ता। तीव्र शिरीय रक्तस्राव की स्थिति में संपीडक पट्टी तैयार करते समय शिरा से रक्त का बहना घाव को उंगलियों से दबा कर अस्थायी तौर पर रोका जा सकता है। यदि हाथ या पैर में घाव लगा है, तो उसे ऊपर की स्थिति में ला कर रक्तस्राव को काफी कम किया जा सकता है।

छोटी धमनी से रक्तस्राव भी संपीडक पट्टी से सफलतापूर्वक रोका जा सकता है (चित्र 45)।
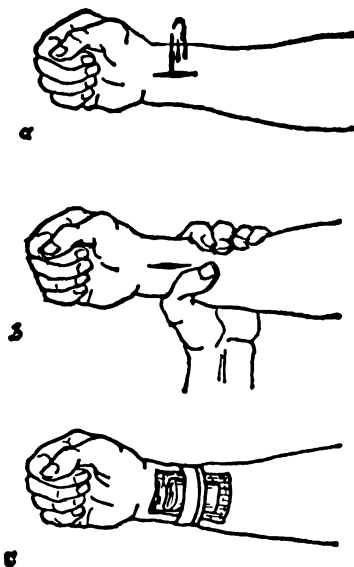
चित्र 45. संपीडक पट्टी। (a) धमनीय रक्तस्राव; (b) धमनी को कुछ ऊपर की ओर हाथ से दबा कर रक्तस्राव को अस्थायी तौर पर रोकना; (c) संपीडक पट्टी।

धमनी से रक्तस्राव तुरंत रोकने के लिये घाव को उंगली से दबा दिया जाता है और इस बीच अधिक विश्वसनीय रूप से खून का बहना रोकने के लिये आवश्यक साधन तैयार किये जाते हैं। घाव में रक्तस्राव रोकने की एक अन्य रीति भी है: उछेदित (कटी) रक्तवाही कुंभी को क्लिप से दबा देते हैं

ग्रौर घाव पर निष्कीटित रूमाल या पट्टी का टैंपन कस कर बांध देते हैं। क्लिप को अचलता के साथ बांधना चाहिये, ताकि वह परिवहन के समय हिले-डुले नहीं।

रक्तस्राव को शीघ्रता से रोकने के लिये धमनी को घाव से कुछ पीछे स्थित स्थल पर दबाने की रीति विस्तृत तौर पर प्रयुक्त होती है। इस रीति का वैज्ञानिक ग्राधार यह है कि चंद धमनियां ग्रच्छी तरह से परिस्पर्शित हो सकती हैं ग्रौर उनके नीचे स्थित ग्रस्थि के साथ उन्हें दबा कर पूरी तरह ग्रवरुद्ध किया जा सकता है। उंगली से धमनी को दबा कर खून का बहना लंबे समय तक नहीं रोका जा सकता, क्योंकि इसमें बहुत शारीरिक बल लगता है; यह रीति प्राथमिक उपचारकर्ता को थका देती है, ग्रौर चिकित्सालय तक परिवहन में तो बिल्कुल ही ग्रव्यावहारिक सिद्ध होती है। इसीलिये इस रीति का इतना ही उपयोग है कि रक्तस्राव रुक जाता है, घाव संदूषित नहीं होता ग्रौर इस बीच रक्त रोकने की ग्रधिक सुविधाजनक रीति ग्रपनाने के लिये ग्रावश्यक साधन जुटाने का समय मिल जाता है; ये साधन हैं—संपीडक पट्टी (चित्र 45), ऐंठनयुक्त बंधन, रक्तरोधक पाश। धमनी को ग्रंगूठे, हथेली या मुक्के से दबाया जा सकता है। ऊरुक एवं बाहुक (जांघ ग्रौर बाँह की) धमनियों को दबाना सबसे ग्रासान होता है, ग्रैव ग्रौर ग्रधोजत्रुक धमनियों को दबाना ग्रपेक्षाकृत कठिन होता है (चित्र 46)।

हाथ या पैर को विशेष स्थिति में लाकर (मोड़ कर
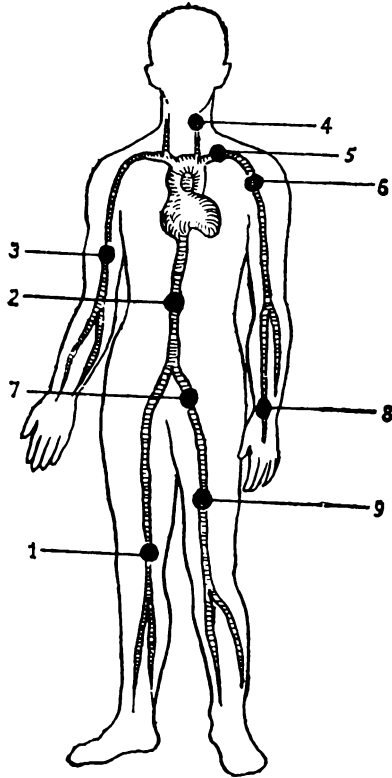
चित्र 46. धमनियों को दबाने के विशिष्ट स्थल। 1. घुटने के पीछे; 2. पेट पर; 3. बाँह पर; 4. गरदन पर; 5. हँसुली के नीचे; 6. काँख के समीप; 7. जंघामूल पर; 8. रश्मिका पर; 9. जांघ पर।

या फैला कर) धमनी को दबाने की रीति का उपयोग रोगी को अस्पताल ले जाते वक्त होता है। अधोजत्रुक धमनी के क्षत होने पर रक्त निम्न रीति से रोका जा सकता है: बाहों को कोहनियों पर मोड़ कर यथासंभव पीछे खींचते हैं और कोहनियों पर उन्हें एक साथ बांध देते हैं। अवजानु-धमनी को पैर घुटनों के पास अधिक से अधिक मोड़ कर दबाया जा सकता है। ऊरुक (जांघ की) धमनी को दबाने के लिये जांघ को यथासंभव पेट के पास लाया जाता है।

हाथ को कोहनी पर अधिक से अधिक मोड़ कर कोहनी के पास स्थित बाहुक धमनी को दबाया जा सकता है। यह रीति और भी कारगर होती है, जब संधि (कोहनी, घुटने आदि) पर अंग को मोड़ने से पहले उसमें गजी या रूई की मसनद डाल दी जाती है (चित्र 47)।

अंग (हाथ या पैर) को घाव से कुछ ऊपर, सब ओर से दबाने पर (अर्थात् घाव से ऊपर सभी कुंभियों को दबाने पर) रक्तस्राव विश्वसनीय रूप से रोका जा सकता है। यह काम रबड़ के विशेष रक्तरोधक पाश से किया जाता है।

पाश बांधने की तकनीक. पाश (रक्तरोधक पाश) प्रत्यास्थ रबड़ की नली या पट्टी हो सकती है, जिसके एक सिरे पर चेन होती है और दूसरे सिरे पर हुक। हुक को चेन में फँसा कर ही पाश को स्थिर किया जाता है। विशेष रक्तरोधक पाश न होने पर 1-1.5 सेंटीमीटर
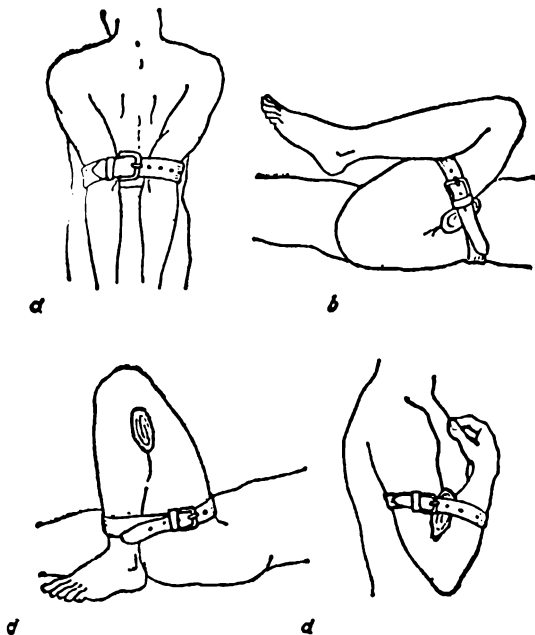
चित्र 47. अंगों को निश्चित स्थिति में मोड़ कर अस्थायी रूप से रक्तस्राव रोकना। (a) अधोजत्तुक धमनी; (b) ऊरुक धमनी; (c) जानुक धमनी; (d) बाहुक एवं कफोणिक धमनियां।

व्यास वाली रबड़ की कोई भी मजबूत नली काम में लायी जा सकती है।

हाथ पर पाश बांधने का उत्तम स्थल बाँह का ऊपरी तिहाई अंश है और पैर पर—जांघ का मध्य तिहाई

अंश। पाश का उपयोग बहुत प्रबल रक्तस्राव में ही सुसंकेतित है, अन्य स्थितियों में इसकी सलाह नहीं दी जाती।

पाश एक मुलायम गद्दी (रूई की) या तौलिये अथवा घायल के कपड़ों पर से बांधी जाती है, ताकि त्वचा में चुभे नहीं। घायल अंग को हल्के से ऊपर उठाया जाता है, पाश को अंग के नीचे रखा जाता है और उसे लमड़ा कर अंग के गिर्द कई बार लपेटा जाता है, जबतक कि रक्तस्राव रुक न जाये। पाश इस तरह बांधा जाता है कि उसकी लपेटनें पास-पास हों, लेकिन त्वचा में चुभन न महसूस हो। पहली लपेटन सबसे अधिक कसी होती है, दूसरी कुछ कम और अन्य लपेटनें अपेक्षाकृत और भी ढीली रखी जाती हैं; इसके लिये
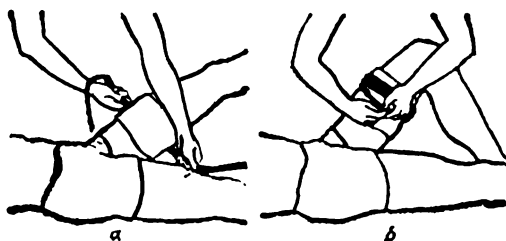
चित्र 48. रबड़ का रक्तरोधक पाश बांधने की तकनीक। (a) पाश को लमड़ाना; (b) चेन और हुक की सहायता से पाश को स्थिर करना।

पाश को बहुत कम लमड़ाते हैं (बाद की लपेटनों के लिये)। पाश के सिरों को स्थिर करने के लिये सभी लपेटनों के ऊपर चेन में हुक फँसा देते हैं (चित्र 48)। ऊतकों को तभी तक दबाना चाहिये, जबतक रक्तस्राव रुक न जाये। पाश सही ढंग से लगे होने पर धमनीय रक्तस्राव तुरंत रुक जाता है, अंग (हाथ या पैर) पीला पड़ जाता है और पाश से नीचे स्पंदन रुक जाता है। पाश बहुत जोर से कसा होने पर मृदु ऊतक, पेशियां, नर्वं या कुंभियां कुचल जा सकती हैं, जिससे अंग में लकवा हो जा सकता है। यदि पाश पर्याप्त कसा हुआ नहीं होता, तो वह रक्तस्राव नहीं रोकता, बल्कि उल्टा शिरीय स्तंभन उत्पन्न करता है (अंग पीला नहीं, नीला पड़ जाता है) तथा रक्तस्राव को और भी तेज कर देता है। पाश बांधने के बाद अंग को निश्चल कर दिया जाता है।

पाश बांधने में गलतियां: सुसंकेत की अनुपस्थिति में, अर्थात् शिरीय या केशिकीय रक्तस्राव में पाश बांधना; पाश के नीचे कोई मुलायम पैंड नहीं रखना; घाव से बहुत दूर बांधना; बहुत ढीला या बहुत कस कर बांधना; पाश के सिरों को ठीक से नहीं स्थिर करना। यदि पाश बांधने की जगह पर शोथ होने लगे, तो उसे उतार देना चाहिये।

पाश को अंग पर बांध कर 1.5-2 घंटे से अधिक नहीं रखना चाहिये, क्योंकि कुंभियों के दीर्घकालीन संपी-डन से पूरे अंग की विमृति हो सकती है। इसीलिये पाश
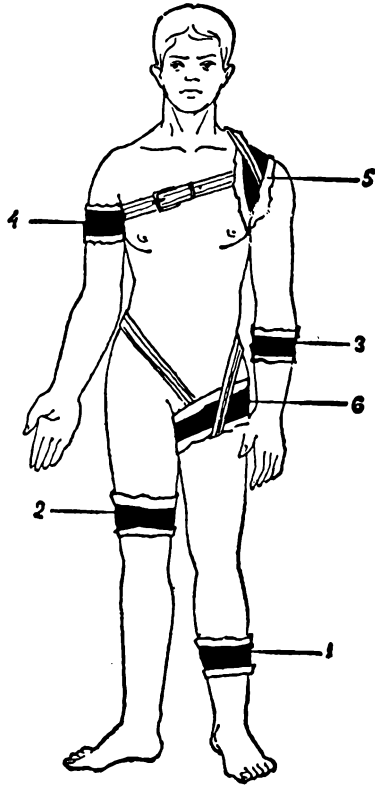
चित्र 49. धमनीय रक्तस्राव में रक्तरोधक पाश बांधने के मुख्य स्थल (निम्न स्थलों से रक्तस्राव होने पर : 1. गोड़ ; 2. पंडली और घुटना ; 3. कलाई ; 4. प्रबाहु तथा कफोणि ; 5. कंधा ; 6. जांघ) ।

पर पट्टी (परिधान) या रूमाल बांधना बिल्कुल मना किया जाता है। रोगी को अस्पताल पहुँचाने का हर संभव उपाय करना चाहिये, जहां दो घंटे के अंदर (पाश बांधने के बाद से) रक्तस्राव पूरी तरह रोका जा सके। यदि किसी कारणवश रक्तस्राव जारी रहता है, तो पाश को 10-15 मिनट के लिये ढीला कर दिया जाता है (इस बीच धमनीय रक्तस्राव को रोकने के लिये धमनी को उंगलियों से दबा कर रखा जाता है)। इसके बाद पाश को पहले से कुछ ऊपर या नीचे बांधते हैं। कभी-कभी यह प्रक्रिया कई बार दुहरानी पड़ती है (जाड़ों में हर आधे घंटे पर और गर्मियों में हर एक घंटे पर)। किस समय पाश बांधा गया है, इसका ठीक-ठीक खयाल रखने के लिये पाश बांधने का समय एक कागज पर लिख कर आहत के कपड़े के साथ ऐसी जगह नत्थी करनी चाहिये कि वह हमेशा दिखता रहे। विभिन्न धमनियों से रक्तस्राव होने पर पाश बांधने के सामान्य स्थल चित्र 49 में दिखाये गये हैं।

जब मानक पाश उपलब्ध नहीं होता, तो कोई भी रबड़ की नली, बेल्ट, रूमाल या कपड़े की पट्टी (चित्र 50) का कामचलाऊं रक्तरोधक पाश के रूप में उपयोग किया जा सकता है। यह ध्यान रखना चाहिये कि कठोर एवं रुक्ष पाश से नर्व सरलतापूर्वक क्षत हो जा सकते हैं।

<u>अंग को सब ओर से दबाने के लिये ऐंठन-युक्त बंधन का उपयोग.</u> मानक पाश न होने पर दुर्घटना के समय
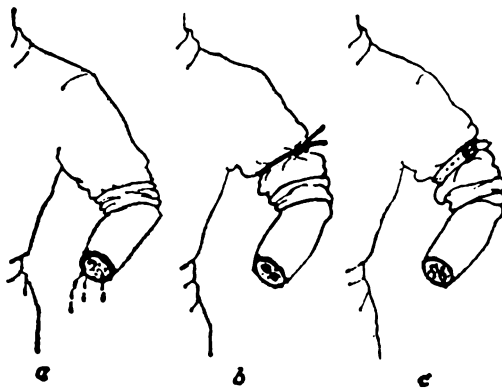
चित्र 50. कामचलाऊं पाश का उपयोग। (a) धमनीय रक्तस्राव ; (b) रबड़ की नली से बनाया गया पाश ; (c) बेल्ट से बनाया गया पाश।

उपलब्ध किसी भी कपड़े से कामचलाऊं पाश बनाया जाता है। कपड़े को अंग के गिर्द सही स्थल पर लपेटते हैं, फिर एक छड़ या छड़ी कपड़े की लपेटन में घुसा
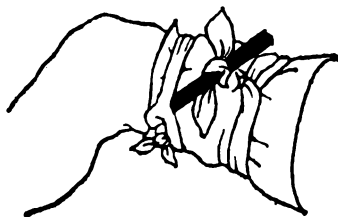
चित्र 51. ऐंठन-युक्त बंधन से धमनीय रक्तस्राव रोकना।

कर उसे घुमाते हुए कपड़े को ऐंठन देना शुरू करते हैं। फिर छड़ी को अंग के साथ ही बांध दिया जाता है (चित्र 51)। ऐंठन से पीड़ा हो सकती है, अतः उसके नीचे पैंड अवश्य रखना चाहिये। पाश बांधने में जो भी गलतियां हो सकती हैं, वे ऐंठन-युक्त बंधन में भी हो सकती हैं।

बाह्य एवं आंतर रक्तस्राव की चंद स्थितियों में प्राथमिक उपचार

रक्तस्राव जखम से ही नहीं, रोग या कुंद चोट से भी हो सकता है।

नाक से रक्तस्राव कभी-कभी इतना विपुल होता है कि आपत्कालीन सहायता की जरूरत पड़ जा सकती है। नासा-रक्तस्राव के कई कारण हो सकते हैं, जैसे – स्थानीय गादिक परिवर्तन (चोट, खरोंच, नासा में विभाजक दीवार का व्रण, कपाल का अस्थि-भंग, आदि आदि)। विभिन्न रोगों से भी नासा-रक्तस्राव हो सकता है, जैसे रक्त के रोगों, हृदय की गड़बड़ियों, पैठनजनित रोगों (शोण-ज्वर, इन्फ्लुएंजा) या अतितान। कभी-कभी रक्त बाहर नहीं निकलता, वरन् नासा-मार्ग से कंठ और मुँह में आने लगता है, जिससे खाँसी और अक्सर वमन होता है। तब रोगी बेचैन होने लगता है और इससे रक्तस्राव और भी तीव्र हो जाता है।

प्राथमिक उपचार करने वाले को चाहिये कि वह सबसे

पहले नासा-रक्तस्राव को प्रोत्साहित करने वाले घटकों की पहचान करे और उन्हें दूर करे। रोगी को शांत करना बहुत आवश्यक होता है, उसे यह अवश्य बता देना चाहिये कि किसी भी प्रकार की तेज (झटके से) गति करने, खाँसने, बात करने, नाक छिड़कने या तनाव डालने से रक्तस्राव और भी तीव्र हो जायेगा। रोगी को सहारा देकर आरामदेह स्थिति में बैठाना चाहिये, जिससे रक्त कंठ में न बहे। बर्फ की थैली या रूमाल में लिपटी बर्फ को, अथवा रूई या किसी अन्य मुलायम कपड़े को ठंडे पानी में तर कर के नासा-सेतु पर रखते हैं। इसके अतिरिक्त, रोगी को स्वच्छ वायु भी मिलनी चाहिये। यदि रक्तस्राव बहुत अधिक गर्मी के कारण हुआ हो तो रोगी को छांह में बिठाना चाहिये और सर एवं वक्ष पर शतिल पुल्टिस रखते हैं।

यदि रक्तस्राव जारी रहता है, तो रोगी को अपने नाक के मुलायम हिस्सों को नासा-विभाजक दीवार के साथ अच्छी तरह दबा कर और सर थोड़ा सा आगे झुका कर रखने को कहना चाहिये। नाक को 3 से 5 मिनट तक दबा कर रखा जा सकता है। रोगी को मुँह से साँस लेने को कहना चाहिये, यदि रक्त मुँह में आ जाता है, तो उसे थूक देना चाहिये।

शुष्क निष्कीटित रूई का टैंपन हाइड्रोजन पेरोक्साइड के घोल में तर कर के नासा-मार्ग में प्रविष्ट करा कर रखने से भी नाक से खून बहना रुक जाता है। रोगी के सर को हल्का सा आगे झुका कर नासा मार्ग में रूई

की गोलियां प्रविष्ट कराने से उस पर रक्त जल्द ही थक्के में परिणत हो जाता है, जिससे रक्तस्राव रुक जाता है। इन रीतियों से रक्तस्राव अक्सर रुक जाता है; यदि न रुके तो रोगी को अस्पताल ले जाना चाहिये।

दाँत उखाड़ने पर रक्तस्राव बहुत तेज हो सकता है। इसे रोकने के लिये रूई का पैंड दाँत के सौकेट पर रख देते हैं। रोगी से कहा जाता है कि वह पैंड को दाँतों के बीच दबा कर रखे।

श्रवण-मार्ग और कान की आंतरिक संरचनाओं की क्षति से रक्तस्राव (चोट, खरोंच, कपाल-अस्थि के टूटने आदि से). रक्तस्राव रोकने के लिये गजी के टुकड़े को शंकु की आकृति में मोड़ कर कान में प्रविष्ट कराते हैं और उसे कान पर गजी की पट्टी से बांध कर स्थिर करते हैं।

फेफड़े (क्लोम) से रक्तस्राव फेफड़े की विक्षति से हो सकता है (वक्ष पर भारी चोट से या पसलियों के टूटने से)। क्लोमिक रक्तस्राव फेफड़े या हृदय के रोग से भी संभव है (जैसे क्लोमिक गंठिक्लेश, फेफड़े में कर्कार्बु, विद्रधि, हृदय के दुपर्दी कपाट की अपूर्णता में)। रोगी सिंदुरी रंग के गाढ़े खून के साथ थूकता है। क्लोमिक रक्तस्राव कभी-कभी बहुत ही विपुल होता है।

जब थूक में रक्त का मिश्रण दिखे, तो रोगी को अधलेटी अवस्था में लिटा देते हैं, साँस में कठिनाई उत्पन्न करने वाले तंग वस्त्रों को तुरंत ढीला कर देते

हैं। रोगी के कमरे में ताजी (और बेहतर हो, यदि ठंडी) हवा आने का प्रबंध करते हैं। रोगी से कहा जाता है कि वह गहरी साँसें ले, यदि संभव हो तो खाँसे नहीं, चले-फिरे नहीं, बात भी न करे। वक्ष पर बर्फ की थैली रखी जाती है और खाँसी शांत करने के लिये दवा दी जाती है।

क्लोमिक रक्तस्राव सदैव किसी गंभीर बीमारी का शोचनीय लक्षण होता है, अतः प्राथमिक उपचार का मुख्य लक्ष्य रोगी को शीघ्रातिशीघ्र किसी आयुरी प्रतिष्ठान में भरती कराना होता है।

क्लोमिक रक्तस्राव के रोगी के लिये चलना-फिरना बहुत खतरनाक होता है, अतः उसका परिवहन विशेष ऐंबुलेंस में अधलेटी स्थिति में बहुत मुलायमियत के साथ करते हैं, ताकि उसे कोई तेज गति न करनी पड़े, उसे किसी तरह का झटका नहीं लगे, क्योंकि इससे खांसी और रक्तस्राव बढ़ सकते हैं।

वक्ष-कोटर में रक्तस्राव. वक्ष में भारी चोट, पसलियों के टूटने तथा चंद क्लोमिक रोगों से रक्तवाही कुंभियां क्षत हो जा सकती हैं। उनसे निकलने वाला रक्त प्लूरिक कोटर में भरने लगता है और फेफड़े को दबाने लगता है, जिससे साँस की गड़बड़ियां उत्पन्न हो सकती हैं। रक्तहानि और फेफड़े के संवातन में रुकावट से रोगी की अवस्था तेजी से बदतर होने लगती है: साँस तीव्रता से त्वरित हो उठती है, त्वचा पीली पड़ जाती है, उस पर नीली आभा छाने लगती है।

रोगी को तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिये। उसे अधलेटी अवस्था में सहारा देते हैं, वक्ष पर बर्फ की थैली रखते हैं।

जठरांत्र से रक्तस्राव या तो किसी रोग (पेप्टिक अल्सर, जठर में कर्कार्बुद, ग्रासनली की शिराओं में अपस्फारण) की क्लिष्टता के रूप में अथवा चोट (परज अथवा बाहरी वस्तु, दग्ध आदि) के फलस्वरूप होता है। यह विपुल और घातक भी हो सकता है। जठरांत्र के रक्तस्राव में तीव्र रक्ताल्पता के लक्षणों के अतिरिक्त रक्त या कौफी जैसे तलछट का वमन होता है, मल बार-बार, ढीला और अलकतरे जैसा होता है।

रोगी की अवस्था में सुधार लाने और रक्तस्राव रोकने के लिये उसे क्षैतिज स्थिति में लिटाया जाता है और पेट पर बर्फ की थैली रखी जाती है। उसे विश्राम की अवस्था में रखा जाता है और खाने-पीने के लिये कुछ नहीं दिया जाता है।

उदरीय रक्तस्राव उदर में कुंद चोट से यकृत या प्लीहा में विदार के कारण होता है। उदर में रक्तस्राव यकृत या प्लीहा के कुछ रोगों से भी संभव है; स्त्रियों में यह गर्भाशयेतर सगर्भता की स्थिति में गर्भाशय-नली में विदार के कारण हो सकता है।

उदरीय रक्तस्राव पेट में प्रबल पीड़ा, त्वचा के पीलेपन और तीव्र नाड़ी द्वारा व्यक्त होता है। विपुल रक्तस्राव से बेहोशी हो सकती है। रोगी को क्षैतिज स्थिति में लिटाया जाता है और पेट पर बर्फ की थैली रखी जाती

है; उसे खाने या पीने के लिये कुछ नहीं दिया जाता है। उदरीय रक्तस्राव के रोगी को चित स्थिति में शीघ्रता से अस्पताल ले जाया जाता है।

तीव्र रक्ताल्पता बहुत अधिक रक्तहानि से विकसित होती है। भिन्न रोगी रक्तहानि को भिन्न प्रकार से सहन करते हैं, फिर भी बच्चे और अधेड़ व्यक्ति इसके प्रति सबसे अधिक संवेदी होते हैं। इससे ग्रस्त होने की सबसे अधिक संभावना उन लोगों में होती है, जो किसी प्रलंबित रोग के शिकार होते हैं, भूखे, क्लांत या भयाकुल होते हैं।

वयस्क आदमी 300-400 मिलिलीटर रक्त खो कर भी संभवतः कुछ असामान्य महसूस नहीं करे, लेकिन बच्चे के लिये इतनी रक्तहानि घातक सिद्ध हो सकती है। 2 से 2.5 लीटर रक्त खोने पर वयस्क की मृत्यु हो जाती है।

1-1.5 लीटर रक्त खोना बहुत खतरनाक होता है, ऐसी रक्तहानि तीव्र रक्ताल्पता, रक्तसंचार में भयानक गड़बड़ियों और आक्सीजन की भूख के रूप में व्यक्त होती है। रक्तहानि की दर भी महत्त्वपूर्ण होती है: अल्प अवधि में अधिक रक्तहानि से भी वैसे ही परिणाम उत्पन्न होते हैं। रोगी की अवस्था कितनी गंभीर है, इसका अनुमान कुंभी से निकले हुए रक्त की मात्रा और रक्तदाब के स्तर के आधार पर किया जा सकता है।

तीव्र रक्ताल्पता के लक्षण बहुत विशिष्ट होते हैं और वे इस बात पर निर्भर नहीं करते कि रक्तस्राव बाह्य

है या ग्रांतर। रोगी बेचैनी बढ़ने, मूर्छा, कानों में शोर, ग्राँखों के ग्रागे ग्रंधेरा छाने, मतली ग्रौर वमन की शिकायत करता है। त्वचा ग्रौर दृश्य श्लेष्मल झिल्लियां पीली पड़ जाती हैं, चेहरे की रेखाएं तीव्र हो जाती हैं। रोगी कभी दमित, तो कभी उद्दीपित होता है; उसकी साँस तेज हो जाती है, नाड़ी क्षीण होती है (उसे गिन पाना मुश्किल होता है), रक्तदाब घट जाता है। इसके बाद मस्तिष्क की रक्ताल्पता के कारण बेहोशी हो जाती है; नाड़ी ग्रौर रक्तदाब निर्धारित नहीं हो पाते, वितान ग्रौर ग्रस्वैच्छिक मलमूत्र-विसर्जन हो सकता है। यदि शीघ्र ग्रायुरी सहायता नहीं की जाये, तो रोगी की मृत्यु हो सकती है।

रक्तस्राव बड़ी मात्रा में रक्तहानि ग्रौर ग्रल्प रक्तदाब के कारण स्वयं रुक जा सकता है, फिर भी प्राथमिक उपचार के समय घाव पर संपीडक पट्टी ग्रवश्य बांध देनी चाहिये ग्रौर ग्रभिघातनिरोधी उपाय शुरू करने चाहिये। रोगी को समतल सतह पर लिटा देते हैं, ताकि मस्तिष्क में रक्ताल्पता न विकसित हो। जब रक्तहानि बहुत ग्रधिक होती है ग्रौर इससे रोगी को बेहोशी या ग्रभिघात होता है, तो उसे इस तरह लिटाते हैं कि सर धड़ से कुछ नीचे रहे; इससे सर में रक्त का बहाव बढ़ जाता है। ग्रलग-थलग केसों में रक्त का "स्व-ग्राधान" लाभकर होता है: रोगी के हाथ-पैर ऊपर कर दिये जाते हैं (चित्र 52), जिससे फेफड़ों, मस्तिष्क, वृक्कों तथा ग्रन्य जीवनावश्यक ग्रंगों की ग्रोर रक्त के ग्रस्थायी
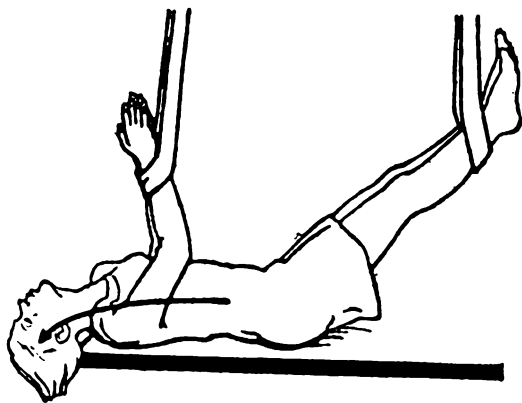
चित्र 52. तीव्र रक्ताल्पता में आहत की स्थिति : "स्व-रक्ताधान"।

बहाव में सुविधा होती है। जब चेतना बची रहती है और उदर का कोई अंग क्षत नहीं होता, तो रोगी को गर्म चाय, खनिज या प्राकृतिक जल दिया जा सकता है। अन्य अवस्थाओं और हृदय में विराम के विकास की स्थिति में संजीवन कार्य करते हैं। शीघ्रता से डोनर का रक्त आधानित करना तीव्र रक्ताल्पता के उपचार की एक मुख्य रीति है, इसीलिये रोगी को जल्द से जल्द किसी चिकित्सालय में ले जाना चाहिये। यदि रोगी का परिवहन ऐसे एंबुलेंस में हो रहा है, जिसमें डोनर का रक्त संचित है, रक्त का आधान रास्ते में भी किया जा सकता है।

अध्याय 8

घाव का प्राथमिक उपचार

घाव

घाव (जखम) या खुली क्षति यांत्रिक या अन्य कारणों से चर्म, श्लेष्मल झिल्ली, गहराई में स्थित ऊतकों या किसी आंतर अंग की सतह के सातत्य में अपसामान्य अवछिन्नता को कहते हैं। घाव करने वाली वस्तु से बेधन के फलस्वरूप ऊतकों के बीच उत्पन्न कोटर घाव का कैनल कहलाता है।

घाव सतही एवं गहरे होते हैं। सतही घाव में चर्म और श्लेष्मल झिल्लियां क्षत होती हैं। गहरे घावों में रक्तवाही कुंभियां, नर्व, अस्थियां, कंडराएं, आंतर अंग भी क्षत हो सकते हैं। बंद कोटरों (जैसे वक्ष, उदर, कपाल, संधिकोटरों) की आंतरिक झिल्लियों को क्षत करने वाला घाव बेधक कहलाता है। अन्य घाव चाहे कितने भी गहरे क्यों न हों, अबेधक कहलाते हैं।

आपरेशान के समय निष्कीटित राछों से उत्पन्न घाव के अतिरिक्त सभी घावों को संदूषित मानना चाहिये। ऐसा घाव, जिस पर किन्हीं अन्य भौतिक अथवा जीवलो-

चनी घटकों (विष, विकिरण, आदि) की भी अभिक्रिया होती है, क्लिष्ट घाव कहलाता है।

घाव करने वाली वस्तु के आकार-प्रकार के अनुसार घाव निम्न प्रकार के होते हैं: चुभा हुआ, कटा हुआ, कुचला हुआ, फटा हुआ, आग्नेयास्त्र से, किसी जंतु के काटने से, आदि।

वस्तु जितनी ही तीक्ष्ण होती है और क्षति जितनी ही तेजी से संपन्न होती है घाव की किनारियां उतनी ही कम विक्षत होती हैं। कुंद वस्तु से उत्पन्न घाव की किनारियां अधिक विक्षत होती हैं, दर्द भी अधिक होता है, जिससे अक्सर अभिघात विकसित हो जाता है।

घाव के प्रकार

चुभा हुआ या भोंका हुआ घाव चाकू, भाला, सूई आदि से उत्पन्न होता है। इसमें सतह पर विवृति छोटी होती है, पर भीतर घाव काफी गहरा होता है। घाव का कैनल सँकरा होता है, लेकिन ऊतकों के स्थानांतरण से (पेशियों के संकोचन, चर्म के स्थानांतरण के फलस्वरूप) वह सीधा एवं सतत नहीं रह जाता। इसीलिए भोंकाने से उत्पन्न घाव बहुत खतरनाक होता है, क्योंकि क्षति की गहराई का अनुमान लगा सकना कठिन होता है, हो सकता है कि कोई आंतर अंग भी क्षत हुआ हो। अंतिम स्थिति में आंतर रक्तस्राव, परितानिकाशोथ (उदरस्थ अंगों के सीरमी आवरणों का शोथ), वक्षवात (प्लूरिक कोटर में हवा का प्रवेश) हो सकता है।

कटा हुआ घाव जब तीक्ष्ण वस्तु (चाकू, ब्लेड, काँच) में होता है, तो उसकी किनारियां विक्षत नहीं होतीं, सीधी रहती हैं, घाव अधिक गहरा होता है।

तीक्ष्ण और साथ ही बहुत भारी वस्तु (गँड़ासे, तलवार, कुल्हाड़ी आदि) से कटने पर घाव उपरोक्त स्थिति की ही याद दिलाता है, पर वह अधिक विस्तृत होता है। अक्सर अस्थियां भी क्षत हो जाती हैं, घाव की किनारियां कुचली हुई सी लगती हैं।

कुचला हुआ घाव किसी कुंद एवं भारी वस्तु (हथौड़ा, ईंट, पत्थर आदि) से ऊतक पर चोट के कारण होता है। ऐसे घाव की किनारियां विक्षत एवं रक्तरंजित होती हैं, सीधी नहीं होतीं। कुंभियों की क्षति और स्कंदक्लेश (रक्त के थक्का होने) के कारण किनारियों पर स्थित ऊतकों का पोषण रुक जाता है और उनकी विमृति शुरू हो जाती है। कुचले हुए ऊतक जीवाणुओं के प्रजनन के लिये अच्छा माध्यम होते हैं, इसलिए ऐसा घाव सरलतापूर्वक संदूषित हो जाता है।

आग्नेयास्त्र से घाव बंदूक की गोली आदि लगने से होता है। गोली की बनावट के अनुसार छर्रों के घाव, बुलेट के घाव, बम के टुकड़ों के घाव में भेद किया जाता है।

आग्नेयास्त्र का घाव आर-पार, कुंद (दूसरी तरफ से बंद) या स्पर्शरेखीय हो सकता है (अंतिम में गोली अंग की सतह को हल्के से क्षत करती हुई निकल जाती है)। आर-पार घाव में प्रवेश-छिद्र निकास-छिद्र से हमेशा

ही छोटा होता है। कुंद घाव में गोली (या बम का टुकड़ा) घाव के कैनल में स्थित ऊतकों में फँसा रह जाता है और शरीर के लिये परज पिंड बन जाता है। घाव के कैनल में वस्त्र के नन्हें टुकड़े भी खिंच कर आ जा सकते हैं। कैनल में स्थित परज पिंड से घाव का पूयन होने लगता है।

बम के टुकड़ों से अक्सर एक साथ कई घाव हो जाते हैं; इनसे ऊतकों की क्षति विस्तृत होती है, क्योंकि टुकड़ों की किनारियां सपाट नहीं होतीं। टुकड़ों की कटी-छटी किनारियों में फँस कर घाव में विभिन्न चीजें प्रविष्ट हो जाती हैं (जैसे मिट्टी, वस्त्र के टुकड़े, आदि), जिससे ऊतकों का संदूषण बढ़ जाता है। घाव के कैनल में रक्त के विपुल मात्रा में जमा होने से संदूषण जल्द होता है और गंभीर पूयकारी शोथ विकसित हो जाता है।

आग्नेयास्त्र से घाव अक्सर अनेक और मिश्र प्रकार के (बहुविध) होते हैं। मिश्र घाव तब होता है जब गोली एक ही बार में कई अंगों और कोटरों को भेदती हुई निकल जाती है (जैसे उदरीय कोटर, महाप्राचीरा और लूरिक कोटर को); इससे एक साथ कई अंगों के कार्य में गड़बड़ियां उत्पन्न हो जाती हैं।

हर घाव में पीड़ा, विवृति और रक्तस्राव होता है।

पीड़ा घाव लगने के क्षण विशेष तीव्र होती है, उसकी तीव्रता घाव लगने के स्थल की संवेदिता पर निर्भर करती है। सबसे अधिक संवेदी निम्न अंग होते हैं: दाँत, जननेंद्रिय, पृष्ठद्वार के क्षेत्र। पीड़ा की तीव्रता घाव ठीक

होने की प्रक्रिया में क्रमशः घटती जाती है। पीड़ा में तेजी से वृद्धि और उसकी प्रकृति में परिवर्तन का अर्थ है कि घाव में क्लिष्टताओं (पूयन, अवातजीवी कीटाणुओं के पैठन) का विकास हो रहा है।

घाव की विवृति – उसकी किनारियों के दूर होने की क्रिया – मृदु ऊतकों की प्रत्यास्थता और संकोचन-क्षमता पर निर्भर करती है। घाव जितना ही बड़ा और गहरा होगा, विवृति उतनी ही अधिक होगी।

घाव से रक्तस्राव क्षति और क्षत कुंभियों (धमनी, शिरा, केशिका) के प्रकार पर, धमनी-दाब स्तर और घाव की प्रकृति पर निर्भर करता है। कटे हुए घाव से रक्तस्राव अधिक स्पष्ट होता है। कुचले हुए ऊतकों में कुंभियां दब जाती हैं, उनमें स्कंदक्लेश हो जाता है (रक्त थक्का हो जाता है), इसीलिये ऐसे घाव से रक्तस्राव कम होता है। अपवाद सिर्फ चेहरे और सर के कुचलने से उत्पन्न घाव होते हैं। सर की मृदु ऊतकों में बहुत ढेर सारी रक्त-वाही कुंभियां होती हैं, जो क्षति से निपातित नहीं होतीं। यही कारण है कि सर की किसी भी क्षति से रक्तस्राव बहुत अधिक मात्रा में होता है। सर के घावों की एक अन्य विशेषता चर्म और उसके नीचे स्थित मृदु ऊतकों की अत्यधिक स्थानांतरण-क्षमता के साथ संबंधित है: घाव बहुत अधिक विवृत हो जाता है, उसकी किनारियां अक्सर चर्म के विपटलित टुकड़ों से बनी होती हैं (तथाकथित स्काल्पित घाव)।

घाव की गंभीरता (हल्का, साधारण, गंभीर) बाह्य

की परिमापों, उसकी गहराई, आंतर अंगों की क्षति की प्रकृति और क्लिष्टताओं के विकास द्वारा निर्धारित होती है (क्लिष्टताएं: रक्तस्राव, घायल अंग के कार्य में गड़-बड़ी, परितानिकाशोथ, वक्षवात आदि)।

आहत के लिये घातक परिस्थितियां किसी भी घाव से उत्पन्न हो सकती हैं। सभी चोटों की तरह घाव भी आदमी में एक सार्वदैहिक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर उसकते हैं, जैसे – मूर्छा, अभिघात, अन्य अवस्थाएं। ये संवृत्तियां सिर्फ पीड़ाकारी क्षोभों के कारण ही नहीं, घाव से रक्तस्राव और रक्तहानि के फलस्वरूप भी उत्पन्न हो सकती हैं (अंतिम स्थिति कहीं अधिक प्रायिक है)। इसीलिये घाव (जखम) में सबसे खतरनाक बात है रक्तस्राव। लेकिन बाद में विकसित होने वाला संदूषण भी कम खतरनाक नहीं होता, जो घाव में जीवाणुओं के पैठन से उत्पन्न होता है; जीवाणु घाव से शरीर में भी प्रविष्ट हो सकते हैं।

घाव का संदूषण

घाव करने वाली वस्तुओं और त्वचा पर विभिन्न प्रकार के करोड़ों करोड़ बाक्तेरी होते हैं, जो घाव में पैठित हो कर उसे संदूषित कर देते हैं। अधिकांशतः घाव का संदूषण पूयकारी बाक्तेरियों से होता है, जो पूयिक शोथी प्रक्रिया उत्पन्न करते हैं। इससे घाव के ठीक होने की प्रक्रिया बहुत धीमी हो जाती है और सार्वदैहिक पूयिक संदूषण का खतरा उत्पन्न हो जाता है। घायल

करने वाली वस्तु के माध्यम से घाव में (घाव होने के क्षण) जीवाणुओं का प्रवेश और प्रजनन प्राथमिक पैठन कहलाता है। घायल होने के बाद कुछ समय बीतने पर जब दुहरा कर संदूषण होता है, तो इसे द्वितीयक पैठन कहते हैं।

द्वितीयक पैठन निम्न कारणों से होता है: गंदे हाथों से घाव का संसाधन करना, संदूषित (अनिष्कीटित) परिधानिक सामग्रियों का उपयोग करना, गलत ढंग से घाव संसाधित करना, पट्टी बदलते वक्त गलत ढंग से पट्टी लगाना। शरीर के किसी अन्य भाग में स्थित पूयकारी पैठन-केंद्र से रक्तवाही कुंभियों के सहारे भी घाव में द्वितीयक पैठन संभव होता है; ऐसे पैठन-केंद्र चिरकालिक कंठशोथ, मृदु ऊतकों का पूयकारी शोथ, फुंसी, हाइमोरशोथ आदि हो सकते हैं।

विस्तृत और गहरे घाव में पूयकारी शोथी प्रक्रिया इतनी दुर्दांत और तेज हो सकती है कि शरीर पूयन-केंद्र के गिर्द रक्षी उपरोध इतना जल्द नहीं बना पाता। ऐसी स्थिति में इस बात की संभावना रहती है कि जीवाणु रक्त-प्रवाह में प्रविष्ट हो जाते हैं और रक्त के साथ-साथ सभी अंगों तथा ऊतकों में फैल जाते हैं, सार्वदैहिक पूयिक पैठन (सृपन) का विकास होता है। इस तरह की क्लिष्टता बहुत खतरनाक होती है और अक्सर गहन चिकित्सा से भी रोगी को बचाना असंभव हो जाता है।

सृपन – यह एक गदलोचनी अवस्था है, जो रक्त-प्रवाह में विभिन्न जीवाणुओं (स्ताफिलोकोकों, स्त्रेप्तोकोकों

ग्रादि) तथा उनके द्वारा विसर्जित तोक्सिनों (गरल पदार्थों) के प्रवेश से उत्पन्न होती है। सृपन की तल्पिक ग्रभिव्यक्तियां बहुविध होती हैं। इस रोग के सामान्यतम लक्षण निम्न हैं: तेज बुखार (40°C या इससे भी ग्रधिक), जिसमें भयंकर कँपकँपी होती है; सामान्य ग्रवस्था में तेजी से विकार (विक्षिप्ति, विभ्रम, बेहोशी); साँस ग्रौर हृदय की गति का तेज होना, धमनी-दाब घटना। बाद में तेजी से कृशता ग्रौर क्षयता विकसित होती है, त्वचा पर पीलापन छाने लगता है, चेहरे की भाव-रेखाएं तीक्ष्ण हो जाती हैं। घाव की ऐसी क्लिष्टताएं बहुत खतरनाक होती हैं, जिनसे ग्रक्सर मृत्यु हो जाती है। सही समय पर सही प्राथमिक उपचार से इस खतरनाक क्लिष्टता के विकास को रोका जा सकता है।

पूयकारी बाक्तेरियों के ग्रतिरिक्त घाव में ग्रधिक खतरनाक जीवाणु भी प्रविष्ट हो सकते हैं, जो धनुर्वात ग्रौर गैसकारी विगलन जैसे रोग उत्पन्न करते हैं।

धनुर्वात. यह पैठनजनित रोग कृषि तथा यातायात में ग्रथवा ग्राग्नेयास्त्र से घायल होने पर घाव के मिट्टी, धूल, गोबर ग्रादि से संदूषित होने पर विकसित होता है।

धनुर्वात के प्रारंभिक लक्षण निम्न हैं: घायल होने के बाद 4-10- वें दिन तेज बुखार (40-42°C) घाव के क्षेत्र में पेशियों का ग्रस्वैच्छिक फरकन, जठर के क्षेत्र ग्रौर पेट की पेशियों में दर्द, घोंटने में कठिनाई, चेहरे की भावदायक पेशियों का संकोचन, चबाने वाली पेशियों का ग्रपतान, जिससे मुँह खोलना ग्रसंभव हो जाता

है (हनुस्तंभन)। कुछ समय बाद सार्वदैहिक यंत्रणादायक वितान शुरू हो जाता है (चित्र 53), जिसे हल्के क्षोभ
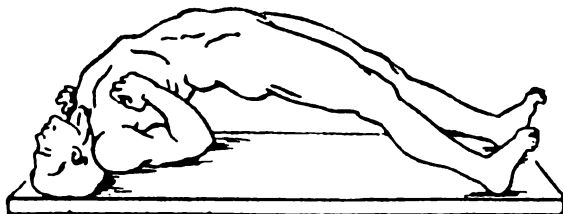
चित्र 53. धनुर्वात में पश्चतान।

से भी उद्दीपित किया जा सकता है; साँस लेने वाली पेशियों में अपतान और घुटन विकसित होती है। धनुर्वात की चिकित्सा एक कठिन काम है: यह विशेष चिकित्सा-प्रतिष्ठानों में ही कारगर होती है, क्योंकि इस रोग की विशिष्ट चिकित्सा नहीं है, लक्षणगत चिकित्सा के लिये विशेष उपस्करों और अनुभवी विशेषज्ञों की जरूरत पड़ती है।

धनुर्वात से संघर्ष की सबसे कारगर रीति है – विशिष्ट एंटीधनुर्वात इमूनन। इसके लिये आंत्रेतर मार्ग से धनुर्वात का अधिशोषी प्रतिगरल आधानित कराया जाता है, जिससे शरीर में वर्षों तक धनुर्वात के विरुद्ध प्रतिरोध बना रहता है; प्रतिगरल से पुनर्टीका हर 5-10 वर्ष पर कराना चाहिये।

धनुर्वात का निर्विलंब विशिष्ट निरोध निम्न परिस्थितियों में अनिवार्य रूप से करना चाहिये: जब भी ऐसी चोट लगे, जिसमें त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियों का सातत्य

भंग हो जाये ; द्वितीय या अधिक उच्च कोटि की झुलसन और तुषारण में, किसी जंतु के काटने पर, चिकित्सालयेतर गर्भपात की स्थिति में, प्रसूता को कुशल आयुरी सहायता के बगैर घर में प्रसव होने पर।

जिस आदमी का पहले सही-सही इमूनन हो चुका हो, उसमें धनुर्वात के निरोध के लिये परिष्कृत अधिशोषित प्रतिगरल की 0.5 की मात्रा आधानित करते हैं, चाहे उसका घाव कितना भी कम गंभीर हो (सक्रिय इमूनन)। इन स्थितियों में एंटीधनुर्वात सीरम (ATS) नहीं आधानित करते। जिसे टीका नहीं पड़ा हो या सही ढंग से नहीं पड़ा हो, उसे साक्रिय-निष्क्रिय रीति से इमूनित करते हैं (यह धनुर्वात का निर्विलंब विशिष्ट निरोध है): धनुर्वात का 1. मिलिलीटर अधिशोषित प्रतिगरल और 3000 IU एंटीधनुर्वात सीरम आधानित कराते हैं। इस रीति के 30-40 दिन बाद टीके को दुहराया जाता है (0.5 मिलिलीटर प्रतिगरल से)। इमूनन को स्थायी करने के लिये धनुर्वात का 0.5 मिलिलीटर प्रतिगरल पुनः 10-12 महीने बाद देते हैं।

विशिष्ट एंटीधनुर्वात प्रतिकायों से युक्त ATS द्वारा निष्क्रिय इमूनन का उपयोग बहुत विस्तृत है। ATS शरीर में अल्पकालीन इमूनता उत्पन्न करता है। निरोधक खुराक 3000 IU (1 मिलिलीटर) है, चाहे रोगी की उम्र कुछ भी हो। यह रीति कम विश्वसनीय है। ATS के आधान से पूर्व संवेदिता का परीक्षण अवश्य करना चाहिये : तनु ATS (1:100) की 0.1 मिलिलीटर मात्रा प्रबाहु

की ग्राकुंचक सतह पर ग्रंतर्चार्मि सूई द्वारा दी जाती है। परीक्षण को ऋणात्मक माना जाता है, यदि सूई के 20 मिनट बाद वहां कोई 9 मिलिमीटर व्यास का लाल पिटक उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति में ग्रतनुकृत ATS की ग्रगली 0.1 मिलिलीटर मात्रा की सूई दी जाती है, यदि इस पर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो 30-60 मिनट बाद पूरी खुराक ग्राधानित कर दी जाती है। यदि ग्रंतर्चार्मि परीक्षण धनात्मक होता है, तो ATS नहीं दिया जाता।

धनुर्वात का प्रतिगरल नहीं देना चाहिये यदि प्रथम पुन-र्टीका के बाद 6 महीने से ग्रधिक नहीं बीते हैं, या दूसरे पुनर्टीका के बाद साल भर से ग्रधिक नहीं हुग्रा है।

गैसकारी विगलन. जब वातावरणीय ग्राक्सीजन की ग्रनु-पस्थिति में प्रजनित होने वाले जीवाणु घाव में प्रविष्ट होते हैं (ग्रवातजीवी-पैठन), तो उसमें ग्रौर उसके गिर्द ऊतकों में तीव्र शोथी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। इस क्लि-ष्टता का सबसे प्रारंभिक लक्षण (ग्रक्सर 24-28 घंटे बाद) यह है कि रोगी को घाव में कुछ ठेलने जैसी ग्रनुभूति होती है, जो बाद में ग्रसह्य पीड़ा में परिणत हो जाती है। घाव के गिर्द जल्द ही ऊतकों में शोफ उत्पन्न हो जाता है। त्वचा ठंडी हो जाती है, उस पर गाढ़े (काले) धब्बे छा जाते हैं, कुंभियों का स्पंदन लुप्त होने लगता है। घाव के क्षेत्र में ऊतकों को दबाने पर चट-चटाहट महसूस होती है। इसका कारण गैसों के बुलबुले हैं, जो इस रोग में उत्पन्न होते हैं ग्रौर ऊतकों में प्रविष्ट

हो जाते हैं। बुखार तेजी से बढ़ता है (39·41°C तक)। गैमकारी विगलन की चिकित्सा निम्न उपायों से होती है : (1) एंटीविगलन सीरम का आधान ; (2) करोर्जी रीति – आक्रांत अंग के ऊतकों में विस्तृत चीरा लगाना या उसे उच्छेदित करना ; (3) आक्सीजन विगलित करने वाले प्रसाधनों (जैसे हाइड्रोजन पेरोक्साइड से) स्थानीय चिकित्सा करना। भविष्यवाणी सदा शोचनीय होती है।

गैसकारी विगलन, सृपन और धनुर्वात अधिकांशत: विस्तृत घावों में होता है, जिनमें कुचले हुए निर्जीव ऊतकों की विपुलता होती है ; जीवाणुओं के लिये ये ही ऊतक पोषक माध्यम का काम करते हैं। जीवाणुओं के प्रजनन के लिए सुंदर परिस्थितियां क्लांति और ठंड से उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी तो क्लिष्टताएं कुछ घंटों में ही विकसित हो जाती हैं। इसीलिये इन आहतों को शीघ्रता से अस्पताल में भरती कराना चाहिये, जहां उन्हें ठीक समय पर आयुरी सहायता दी जा सके और विशिष्ट प्रतिगरल सीरम का आधान किया जा सके।

घाव में पैठन रोकने का मुख्य उपाय है – शीघ्रातिशीघ्र उसका प्राथमिक करोर्जिक संसाधन करना। यह आपरेशन घायल होने के बाद 6 घंटे के अंदर संपन्न हो जाना चाहिये।

<u>घाव का प्राथमिक करोर्जिक संसाधन.</u> प्राथमिक खिंचाव मे (बिना पूयन के) सिर्फ ऐसे घाव ठीक होते हैं, जो तीक्ष्ण औजार द्वारा कटने से अथवा निसृपित परिस्थितियों में करोर्जिक चीर-फाड़ द्वारा बनते हैं। सभी अन्य आकस्मिक घाव अवश्य ही संदूषित हो जाते हैं और करो-

र्जिक संसाधन के बगैर वे द्वितीयक खिंचाव से ही ठीक हो पाते हैं; इसका मतलब है कि उनमें पूयन होता है, मृत ऊतक धीरेधीरे अलग होते हैं, घाव धीरे-धीरे कणी-करण से भरता है, फिर अंत में क्षतांक रह जाता है। प्राथमिक करोर्जिक संसाधन से घाव के पूरे कैनल में किनारियों तथा भीतरी दीवारों को तराशा जाता है। इस आपरेशन से कुचले हुए एवं संदूषित ऊतक और परज पिंड दूर किये जाते हैं, रक्तस्राव अंतिम रूप से रोका जाता है, फिर घाव को परत दर परत सीया जाता है। घायल होने के बाद प्रथम घंटे के अंदर घाव का प्राथमिक करोर्जिक संसाधन करने से अधिकांशतः प्रथम खिंचाव में ही घाव भर जाता है। यह संसाधन सूपन, गैसकारी विगलन और धनुर्वात का उत्तम निरोध है।

घायल के प्राथमिक उपचार के मुख्य सिद्धांत

घायल का प्राथमिक उपचार घाव के प्रारंभिक संसाधन पर आधारित है। घायल होने के बाद प्रथम क्षणों में सबसे अधिक खतरा रक्तस्राव से होता है।

घायलों के लिये अधिकांश स्थितियों में घातक परिणाम तीव्र रक्तस्राव से ही उत्पन्न होते है, इसीलिये उनके प्राथमिक उपचार में सबसे पहले किसी भी तरह रक्तस्राव रोकने का उपाय करना चाहिये (जैसे कुंभी को दबाना, संपीडक पट्टी बांधना, आदि)।

घाव को संदूषण (गंदगी और जीवाणुओं के पैठन)

से बचाना भी कम महत्त्वपूर्ण काम नहीं है। घाव का सही ढंग से संसाधन करने पर उसमें क्लिष्टताओं के विकास में बाधा पड़ती है और घाव भरने का समय तीन गुना कम हो जाता है। घाव का संसाधन स्वच्छ हाथों से करना चाहिये; यदि उन्हें निष्पैठित कर लिया जाये तो और भी अच्छा हो। निसृपक पट्टी लगाते समय गजी की उन परतों को हाथ से नहीं छूना चाहिये, जो सीधे घाव से स्पर्श करेंगी। यदि कोई प्रतिसृपक प्रसाधन नहीं हो, तो सिर्फ निसृपक पट्टी (निजी पैकेट की पट्टी, रूमाल आदि) से ढक कर घाव की रक्षा करनी चाहिये। यदि निष्पैठक प्रसाधन (हाइड्रोजन पेरोक्साइड, फूरासिलिन का घोल, टिंचर आयडीन, बैंजीन आदि) हों तो निसृपक पट्टी लगाने से पहले घाव के गिर्द त्वचा को किसी उपरोक्त प्रसाधन से तर गजी अथवा रूई के टुकड़े से पोंछते हैं, ताकि उस-पर से कपड़ों के सूक्ष्म टुकड़े, धूल, मिट्टी आदि गंदगी दूर हो जाये। इससे पट्टी लगाने के बाद इर्द-गिर्द की त्वचा से घाव के संदूषित होने का खतरा दूर हो जाता है।

घाव को पानी से नहीं धोना चाहिये, इससे संदूषण को बढ़ावा मिलता है। घाव की सतह पर दागने वाले (प्रदाहक) प्रतिसृपक प्रसाधन को नहीं पड़ने देना चाहिये। अल्कोहल, टिंचर आयडीन और बैंजीन आदि से कोशिकाएं मृत हो जाती है, जिससे पूयन को प्रोत्साहन मिलता है; इनसे पीड़ा तीव्र हो उठती है और यह भी अवांछनीय है। घाव में गहरी परतों में फंसी परज वस्तु या गंदगी को निकालने का प्रयास नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे

घाव और भी संदूषित हो जाता है और क्लिष्टताएं उत्पन्न हो सकती हैं (जैसे रक्तस्राव, अंगो की विक्षति आदि)।

चर्म में चुभी नन्हीं वस्तुओं (काँटा, काँच या धातु के टुकड़ों, खैंक आदि) से पीड़ा होती है, ऊतक में पैठन होता है, जिससे गंभीर शोथी प्रक्रियाएं (परिनखशोथ, फ्लेगमोन) शुरू हो सकती हैं। इसीलिये प्राथमिक उपचार में ऐसे परज पिंडों को निकाल देना युक्तिसंगत होता है।

खरोंच (निस्त्वचन) से गंदगी, धूल, रेत, मिट्टी आदि हाइड्रोजन पेरोक्साइड से धोकर सरतापूर्वक दूर की जा सकती है। खैंक, काँटा आदि नन्हें परज पिंड चिमटी, सूई या सिर्फ उंगलियों से भी निकाले जा सकते हैं। परज पिंड निकालने के बाद घाव को किसी प्रतिसृपक घोल मे अवश्य संसाधित करना चाहिये। वृहत घावों से परज पिंड सिर्फ डाक्टर को प्राथमिक करोर्जिक संसाधन के समय निकालना चाहिये।

घाव पर पाउडर नहीं छिड़कना चाहिये, उस पर कोई मल्हम नहीं लगाना चाहिये, सीधे घाव पर रूई भी नहीं रखनी चाहिये, क्योंकि इन सब से घाव में पैठन को प्रोत्साहन मिलता है।

कभी-कभी घाव (जखम) से आंतर अंगों के हिस्से निकल आते हैं (जैसे मस्तिष्क, आँत, कंडरा आदि के)। ऐसे घाव का संसाधन करते वक्त बाहर निकल आये अंग को घाव के भीतर घुसाने का प्रयास नहीं करना चाहिये; उसे ज्यों का त्यों छोड़ कर ऊपर से पट्टी लगा देनी चाहिये।

हाथ-पैर में विस्तृत घाव होने पर उन्हें निश्चल कर देना चाहिये।

घायल के प्राथमिक उपचार का महत्त्वपूर्ण अंग है उसे शीघ्रातिशीघ्र अस्पताल पहुँचाना। जितनी ही जल्द उसे डाक्टरी सहायता मिलेगी, उसकी चिकित्सा उतनी ही कारगर होगी। यह याद रखना चाहिये कि शीघ्र अस्पताल पहुँचाने की कोशिश में सही परिवहन की उपेक्षा नहीं होनी चाहिये।

घायल को ऐसी स्थिति (मुद्रा) में रख कर उसका परिवहन करना चाहिये, जिसमें उस पर कोई बुरा प्रभाव न पड़े, उसे झटके न लगें, और घाव की प्रकृति, स्थिति और रक्तहानि के स्तर को ध्यान में रखा गया हो। चोट के साथ अभिघात और अत्यधिक रक्तस्राव से आक्रांत सभी घायलों का परिवहन चित लेटी अवस्था में किया जाता है।

सर, वक्ष और उदर के घाव में प्राथमिक उपचार की विशेषताएं

सर के मृदु ऊतकों के घायल होने पर प्राथमिक उपचार के रूप में रक्तस्राव रोकना चाहिये। चूँकि मृदु ऊतकों के नीचे कपालास्थि होती है, इसलिये रक्तस्राव को अस्थायी रूप से रोकने की उत्तम रीति है – संपीडक पट्टी बांधना। कभी-कभी रक्तस्राव धमनी को उंगली से दबा कर भी रोका जा सकता है (कनपटी के पास की बाहरी धमनी को कान के सामने दबाया जाता है, जबड़े की बाहरी धमनी को

उसके कोण से 1-2 सेंटीमीटर दूर)। सर के घायल होने में सबसे खतरनाक बात यह है कि मस्तिष्क क्षत हो सकता है (जैसे धमसन, झर्झन, उसका संपीडन)। इस तरह घायल होने पर आहत को क्षैतिज स्थिति में लिटाना चाहिये, विश्राम की परिस्थितियां उत्पन्न करनी चाहिये, सर पर ठंड का प्रयोग करना चाहिये और जल्द से जल्द अस्पताल पहुँचाने के लिये परिवहन का प्रबंध करना चाहिये।

वक्ष-कोटर में बेधक घाव इसलिये खतरनाक होता है कि इससे हृदय, महाधमनी, फेफड़े तथा अन्य जीवनावश्यक अंग क्षत हो सकते हैं; इन अंगों के घायल होने से गंभीर आंतर रक्तस्राव होता है, शीघ्र मृत्यु हो जा सकती है। वक्ष में बेधक घाव आंतर अंगों की क्षति के बिना भी घातक होता है, क्योंकि प्लूरिक कोटर के जखमी होने पर उसमें हवा प्रविष्ट हो जाती है और विवृत वक्षवात विकसित होता है। इसके फलस्वरूप फेफड़ा पिचक जाता है (फेफड़े का निपात) और एक दुर्दांत सार्वदैहिक अवस्था उत्पन्न होती है, जिसे प्लूरोक्लोमिक अभिघात कहते हैं। उपचारकर्ता को ज्ञात होना चाहिये कि इस तरह के घाव को हर्मेटिक रूप से बंद करके ऐसी खतरनाक क्लिष्टनाओं के विकास को रोका जा सकता है या काफी कम किया जा सकता है। वक्ष के घाव को विश्वसनीय रूप से बंद करने के लिये उस पर चौड़े स्टिकर को खपड़ों की तरह सटा-सटा कर चिपकाया जाता है। वैसलीन में तर गजी, आयल क्लौथ या प्लास्टिक की झिल्ली से अवरोधक पट्टी भी बना सकते हैं, जिसे संपीडक पट्टी की तरह बांधते

हैं। अभिघात दूर करने के उपाय करने चाहिये। आहत का परिवहन अधबैठी स्थिति में करना चाहिये (चित्र 54)।
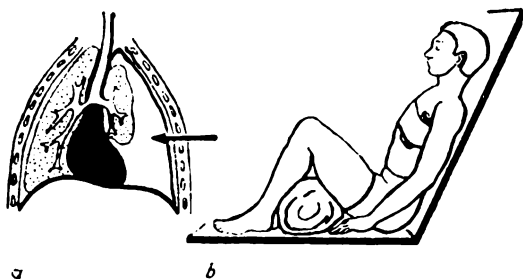
चित्र 54. वक्ष-कोटर में बेधक घाव। (a) खुला वक्ष-वत (आरेख); (b) वक्ष का घाव बंद करने के बाद परिवहन के समय आहत की स्थिति।

उदर (उदर की दीवार) में घाव बहुत ही खतरनाक होता है: छोटा सा घाव भी बेधक हो सकता है, जिससे उदरस्थ अंग भी क्षत हो जा सकते हैं। इससे दुर्दांत क्लिष्टताएं उत्पन्न हो सकती हैं: आंतर रक्तस्राव और आंतर-द्रव्य का बाहर (उदरीय कोटर में) बह आना, जिससे परितानिका का पूयिक (मलज) शोथ होने लगता है (परितानिकाशोथ)। इस स्थिति में निर्विलंब आपरेशन की आवश्यकता होती है। (परितानिका आंतर अंगों पर आच्छादित झिल्ली को कहते हैं, जो उन्हें अपनी जगह पर स्थिर रखती है।—अनु.)।

उदरीय दीवार के घाव का संसाधन सामान्य सिद्धांतों

के अनुसार ही किया जाता है। घाव विस्तृत होने पर उसके छेद मे उदरस्थ अंग बाहर निकल आ सकते हैं, कभी-कभी वे क्षत भी हो जाते हैं। ऐसे घाव को अवश्य ही निम्सृपक पट्टी से बांध देना चाहिये। बाहर निकले अंग को उदर के भीतर नहीं करना चाहिये, अन्यथा परितानिकाशोथ हो जायेगा। घाव के गिर्द त्वचा संसाधित कर लेने के बाद निकले अंगों पर निष्कीटित गजी रखते हैं, फिर गजी पर और अंगों के पार्श्व-स्थलों पर रूई की मोटी परत फैला देते हैं। यह सब पट्टी की वृत्ताकार लपेटनों से ढक देते हैं। तौलिये या पतली चादर से भी ढक सकते हैं (फिर उसकी किनारियों को सी दिया जाता है)। उदरस्थ अंग के बाहर निकलने से घायल में बहुत तेजी से अभिघात विकसित होने लगता है, इसलिये उसे रोकने का उपाय करना चाहिये।

उदर में किसी भी तरह का घाव लगने पर उदरस्थ अंगों के क्षत होने की आशंका अवश्य रहती है, इसलिये घायल को खाने-पीने की कोई सामग्री अथवा दवा मुख-मार्ग से नहीं देनी चाहिये। आँत में बेधक घाव होने पर इन चीजों से परितानिकाशोथ का विकास तेज होने लगता है।

पेट में घाव लगने पर घायल का परिवहन लेटी अवस्था में करते हैं, धड़ का ऊपरी भाग ऊँचा रखते हैं और पैर को घुटनों के पास मोड़ देते हैं। इस मुद्रा में पीड़ा कम हो जाती है और शोथी प्रक्रिया उदर के सभी हिस्सों में नहीं फैलती।

अध्याय 9

मृदु ऊतकों, संधियों और अस्थियों की क्षति का प्राथमिक उपचार

चोट की अवधारणा. परिवेशी घटकों की अभिक्रिया के फलस्वरूप ऊतकों और अंगों में उत्पन्न अनाटोमिक एवं कार्यात्मक गड़बड़ियों को चोट या (चोटज) क्षति कहते हैं। अभिक्रियाएं निम्न प्रकार की हो सकती हैं: यांत्रिक (आघात, संपीडन, लमड़ाव), भौतिकीय (ताप, ठंड, विद्युत, रश्मिसक्रिय विकिरण), रासायनिक (अम्ल, क्षार, विषों की अभिक्रिया), मानसिक (भय, डर)। क्षति की गंभीरता इन घटकों की अभिक्रिया की शक्ति और कालावधि पर निर्भर करती है।

अधिकांशतः क्षतियां शरीर के ऊतकों पर यांत्रिक बलों (आघात, संपीडन, लमड़ाव) की प्रत्यक्ष अभिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। यांत्रिक क्षतियां खुली (बाहरी) या बंद (भीतरी) होती हैं। बंद या भीतरी क्षतियों में त्वचा एवं श्लेष्मल झिल्लियों का सातत्य अवछिन्न नहीं होता। इनमें अंगों और मृदु ऊतकों (पेशियों, कंडराओं, कुंभियों, नर्वों) का कुचलाव (या धमसन),

चमड़ाव, मोच, अवचार्म विदार आदि आते हैं। बाहरी क्षतियों में अंगों एवं ऊतकों की क्षति के साथ-साथ त्वचा या श्लेष्मल झिल्लियों का सातत्य या अखंडता भी अवछिन्न हो जाती है (घाव, खुला अस्थि-भंग)।

शरीर के ऊतकों पर क्षणिक एवं आकस्मिक शक्तिशाली अभिक्रिया से उत्पन्न क्षतियों को तीव्र चोट कहते हैं, जबकि अल्प शक्ति की पुनरावर्तित होती रहने वाली अभिक्रियाओं से उत्पन्न क्षति को चिरकालिक चोट कहते हैं। इनमें अधि-कांशतः वृत्तिक चोटें आती हैं (जैसे कठिन शारीरिक श्रम में लगे लोगों में सपाट-पांव का विकास, टाइपिस्ट स्त्रियों को टेंडोवैजीनीटिस की बीमारी, और एक्सरे के साथ काम करने वाले लोगों के हाथ में दिनाइ और व्रण)।

कोई भी चोट स्थानीय ऊतकों में विक्षति के अतिरिक्त आदमी में सार्वदैहिक परिवर्तन भी उत्पन्न करती है: हृत्कुंभी-तंत्र, श्वसन, द्रव्य-विनिमय आदि के कार्यों में गड़बड़ी (दे. अध्याय 4 व 5)।

सीमित कालावधि में जनसंख्या के निश्चित ग्रुपों को जो चोटें लगती हैं, उनकी संचि को चोटलता कहते हैं। निम्न प्रकार की चोटलताएं होती हैं: वृत्तिक (औद्योगिक, कृषिक, खेल-कूद से संबंधित, दैनंदिन घरेलू, सैन्य, परिवहन से संबंधित, आदि) और अवृत्तिक। चोटलता से संघर्ष स्वास्थ्य एवं श्रम-सुरक्षा से संबंधित विभागों के मुख्य कर्त्तव्यों में से एक है।

कुचलाव (धमसन), मोच, विदार, संपीडन श्रौर खसकन का प्राथमिक उपचार

अनेक केसों में त्वचा अक्षत रहती है, जबकि उसके नीचे स्थित मृदु ऊतक और अस्थियां क्षत हो जाती हैं।

धमसन या कुचलाव किसी कुंद एवं भारी चीज से चोट लगने से मृदु ऊतकों की क्षति को कहते हैं। इसमें सूजन और अक्सर नीलापन होता है, क्योंकि बड़ी कुंभियों की विक्षति से रक्त निकल कर चर्म के नीचे जमा होने लगता है (रक्तार्बु)। धमसन (कुचलाव) से क्षत अंग में कार्यात्मक गड़बाड़ियां उत्पन्न हो सकती हैं। जब मृदु ऊतक ही क्षत होते हैं, तो पीड़ा और गति में रुकावट (या कठिनाई) होती है, लेकिन किसी आंतर अंग (मस्तिष्क, यकृत, फुफ्फुस या वृक्क) के कुचलने पर पूरे शरीर में गंभीर गड़बड़ियां उत्पन्न होती हैं, यहां तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

धमसन का प्राथमिक उपचार. क्षत अंग को विश्रामावस्था में रखा जाता है और मृदु ऊतकों में रक्तस्राव रोकने के लिये उसे कुछ ऊँचाई पर रखा जाता है। धमसित क्षेत्र में पीड़ा और शोथ कम करने के लिये उस पर संपीडक पट्टी बांधते हैं, बर्फ की थैली रखते हैं।

आबंधों में मोच (लमड़ाव) और विदार तब होता है, जब संधियों पर अंग में गति शरीरलोचनी सीमाओं से बाहर हो जाती है। मोच में तीव्र पीड़ा होती है, चोट-

स्थान पर तेजी से सूजन बढ़ती है और संधि में स्पष्ट क्रियात्मक गड़बड़ी होती है।

प्राथमिक उपचार. कंडराओं में विदार होने पर संधि को स्थिर रखने के लिये पट्टी बांधी जाती है। रोगी को पूर्ण विश्राम की अवस्था में रखा जाता है और क्षत संधि पर कस कर पट्टी बांध दी जाती है, ताकि वह एक निश्चित स्थिति में ही रहे। दर्द कम करने के लिये 0.25-0.5 ग्राम अनाल्जिन अथवा अमीदोपीरीन दी जाती है, क्षत स्थान पर बर्फ की थैली रखी जाती है।

मोच के रोगी को डाक्टर से परामर्श अवश्य लेना चाहिये, क्योंकि सामान्यत: मोच के लक्षण अस्थि-भंग से मिलते जुलते हैं।

संपीडन अंगों की एक बहुत ही गंभीर क्षति है, जिसमें पेशियां, अवचार्म वसा, कुंभियां और नर्व कुचल जाते हैं यह किसी भारी बोझ के नीचे दबने से होता है (जैसे दीवार, शहतीर, बहुत अधिक मिट्टी आदि के नीचे दबने से), या भूकंप में। संपीडन के साथ अभिघात होता है, फिर मृदु ऊतकों के अपघटन से उत्पन्न गरल पदार्थों से शरीर का आगरण शुरू हो जाता है।

प्राथमिक उपचार. आहत को तुरंत बोझ के नीचे से निकालना चाहिये, दबे अंग के आधार के निकट एक पाश बांधना चाहिये, ताकि अंग के कुचले ऊतकों से गरल पदार्थ पूरे शरीर में न फैले (पाश बांधने का तरीका वैसा ही है, जैसा धमनी से रक्तस्राव रोकने के लिये पाश बांधने का)। क्षत अंग के साथ खपची बांध कर उसे निश्चल

कर देना चाहिये और उसे बर्फ की थैली या ठंडे पानी से गीले कपड़े से ढक देना चाहिये। इस तरह की क्षति से ग्रस्त आहतों में क्षति के क्षण अक्सर अभिघात विकसित हो जाता है। इसे नियंत्रित करने अथवा रोकने के लिये उसके शरीर को गर्म करना चाहिये। गर्म चाय या कौफी पिलानी चाहिये, वोद्का या शराब की कुछ घूँटें देनी चाहिये। यदि संभव हो, तो अम्नोपोन या मोर्फीन (1 प्रतिशत सांद्र घोल की 1 मिलिलीटर मात्रा) और कोई हृदोद्दीपक दवा देनी चाहिये।

आहत को लेटी अवस्था में तुरंत अस्पताल ले जाना चाहिये।

खसकन ऐसी क्षति है, जब कोई अस्थि संधि-कोटर (संधि-संपुट) से निकल आती है और आसपास की ऊतकों में चुभने लगती है; यह अक्सर संधि-कोटर में विदार से होती है।

पूर्ण खसकन में अस्थियों की संधिगत सतहें एक-दूसरे को बिल्कुल स्पर्श नहीं करतीं, जबकि अपूर्ण खसकन में वे आंशिक रूप से स्पर्श करती हैं।

खसकन का नाम क्षत संधि में परिसर के निकट वाली अस्थि के नाम पर रखा जाता है, जैसे टखने में खसकन को गोड़ की खसकन कहा जाता है, स्कंधसंधि में खसकन को बांह की खसकन कहा जाता है। खसकन का मुख्य कारण अप्रत्यक्ष चोट होता है, जैसे—जांघ की खसकन संधि पर और भीतर की ओर मुड़े हुए पैर के बल गिरने

में उत्पन्न होती है और बाँह की खसकन आगे बढ़े हाथ के बल गिरने से।

खसकन के निम्न लक्षण हैं: हाथ (या पैर) में पीड़ा; संधि की परिरेखा की विकृति (संधि-स्थल पर गड्ढा); संधि में सक्रिय गति की अनुपस्थिति (निष्क्रिय गति असंभव होती है); अंग (हाथ या पैर) का अनैसर्गिक स्थिति में स्थिर हो जाना, जिसे ठीक नहीं किया जा सकता; अंग की परिमाप में परिवर्तन (अक्सर लंबाई में कमी)।

प्राथमिक उपचार. सबसे पहले दर्द दूर करने का उपाय किया जाता है: क्षत संधि के क्षेत्र में ठंड का उपयोग, वेदनाहर दवा (अनाल्जिन, अमीदोपीरिन, प्रोमेडोल, आदि) देना, अंग को उसी स्थिति में निश्चल करना, जो वह चोट के बाद ग्रहण करता है। हाथ को तिकोण रूमाल या पट्टी के सहारे लटका दिया जाता है, पैर को खपचियों या किसी अन्य कामचलाऊँ उपलब्ध सामग्री की सहायता से निश्चल किया जाता है। ताजी खसकन को ठीक करना सरल है बनिस्बत कि पुरानी को। चोट के 3-4 घंटे बाद ही क्षत संधि के क्षेत्र में ऊतकों का शोफ शुरू हो जाता है और रक्त जमा होने लगता है, जिससे अंग को सोझा करना कठिन हो जाता है।

खसकन सोझा करना – यह डाक्टर का काम है, इसलिये आहत को तुरंत डाक्टर के पास ले जाना चाहिये। हाथ में खसकन होने से आहत खुद भी अस्पताल जा सकता है, या उसे बैठी स्थिति में किसी भी प्रकार के

वाहन में ले जाया जा सकता है। पैर में खसकन वाले रोगी का परिवहन लेटी स्थिति में करते हैं।

खसकन को खुद सीधा करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि कभी-कभी यह निर्धारित करना मुश्किल होता है कि यह खसकन है या विभंजन (अस्थि-भंग); इसके अतिरिक्त, खसकन के साथ-साथ अक्सर अस्थियों में विदार और टूटन भी जरूर होती है।

विभंजन का प्राथमिक उपचार

विभंजन (अस्थि-भंग, हड्डी का टूटना) अस्थि के सातत्य में भंग या अवछिन्नता को कहते हैं। विभंजन दो प्रकार का होता है: चोटज और गदलोचनी। गदलोचनी विभंजन की उत्पत्ति अस्थि में किसी रोग-प्रक्रिया के चलते रहने से होती है; उदाहरणार्थ, अस्थि-यक्ष्मा, अस्थि-मज्जाशोथ, अर्बुद या गुल्म जैसे रोग के निश्चित चरण पर हड्डी सामान्य बोझ से भी टूट जाती है।

चोटज विभंजन भीतरी या बाहरी होता है; भीतरी

चित्र 55. विभंजन (अस्थि-भंग) के प्रकार। (a) बंद (भीतरी)। (b) खुला (बाहरी);

विभंजन में त्वचा अक्षत रहती है, बाहरी विभंजन में चर्म भी क्षत हो जाता है (चित्र 55)। बाहरी (या खुला) विभंजन अधिक खतरनाक होता है, क्योंकि अस्थि-खंडों के संदूषित होने से अस्थिमज्जाशोथ विकसित हो सकता है। इसमें अस्थि-खंडों का ठीक से जुड़ना भी कठिन होता है।

विभंजन पूर्ण और अपूर्ण भी होता है, अंतिम में अस्थि के व्यास का एक अंश ही क्षत होता है, अधिकांशतः यह अनुतीर विदार के रूप में होता है।

आकृति के अनुसार भी विभंजन के अनेक प्रकार हैं: अनुप्रस्थ, तिरछा, सर्पिल, अनुतीर। अक्सर ऐसा विभंजन भी होता है, जिसमें अस्थि छोटे-छोटे टुकड़ों में चूर हो जाती है। ऐसा अक्सर आग्नेयास्त्र से चोट में होता है। दबने से संपीडनजनित विभंजन उत्पन्न होता है।

अधिकांश केसों में टूटी हड्डी के खंड अलग हो जाते हैं। ये खंड किस ओर मुड़ेंगे, यह दो बातों पर निर्भर करता है: विभंजन उत्पन्न करने वाला यांत्रिक बल किस दिशा में लगा था और अस्थियों से संलग्न पेशियां विभंजन के बाद अस्थि-खंडों को किस ओर खींचती हैं। अंग (हाथ या पैर) में अस्थि-खंड अंग के अनुतीर, अनुप्रस्थ या किसी कोण पर खिसक सकते हैं; यह इस बात पर निर्भर करता है कि क्षति कहां और कैसी है, अस्थियों से संलग्न पेशियों का बल कितना है। पच्चड़नुमा विभंजन भी अक्सर प्रेक्षित होता है, जिसमें अस्थि का एक खंड दूसरे में धँस जाता है।

विभंजन के लक्षण निम्न हैं : क्षति स्थल पर तीव्र पीड़ा, जो थोड़ी भी गति से या थोड़ा भी बोझ पड़ने से एकदम तीव्र हो जाती है ; अंग की विकृत स्थिति और आकृति ; कार्यात्मक गड़बड़ी (क्षत अंग से काम लेने में अक्षमता) ; क्षतिस्थल पर सूजन और नीलापन ; अंग का उस दिशा में मुड़ सकना, जिधर उसे मुड़ना नहीं चाहिये (अपसामान्य गति)। विभंजन-स्थल को छूने से तीव्र पीड़ा होती है, परिस्पर्शन से अस्थियों की असमतलता और तीक्ष्ण कीनारी का पता चलता है ; थोड़ा सा दबाने पर कटकटाहट की आवाज आती है। अंग में यदि अपसामान्य गति है, तो उसका परीक्षण दोनों हाथों से पकड़ कर बहुत सावधनी से करना चाहिये, ताकि अतिरिक्त पीड़ा और क्लिष्टता उत्पन्न न हो (जैसे अस्थि-खंडों से रक्तवाही कुभियों, नर्वों, पेशियों, चर्म या श्लेष्मल झिल्लियों की अतिरिक्त क्षति)।

यदि विभंजित अस्थि का सिरा घाव से बाहर निकल आता है, तो परिस्पर्शन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

विभंजन की चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण घटक है—ठीक समय पर सही प्राथमिक उपचार। रक्तस्राव, अस्थि-खंडों के स्थानांतरण, अभिघात तथा अन्य गादिक अवस्थाओं की रोक-थाम और पूर्ण चिकित्सा इसी बात पर निर्भर करती है कि प्राथमिक उपचार कितना शीघ्र किया गया है।

विभंजन की स्थिति में प्राथमिक उपचार निम्न चरणों में संपन्न होता है : (1) विभंजनस्थल पर अस्थियों का निश्च-

लकरण; (2) अभिघात पर नियंत्रण और उसकी रोक-थाम; (3) आहत को शीघ्र अस्पताल ले जाना।

विभंजित अस्थियों को शीघ्रता से निश्चल कर देने पर पीड़ा कम हो जाती है, अभिघात के निरोध में भी यह मुख्य घटक है।

पर्यंगों (हाथ या पैर) का विभंजन अधिक प्रायिक है। पर्यंग को सही स्थिति में सही ढंग से निश्चल करने से निम्न लाभ हैं: रोगी को हिलानेडुलाने पर अस्थि-खंड स्थानांतरित नहीं होते, बड़ी रक्तवाही कुंभियों, नर्वों, या पेशियों के क्षत हो जाने का खतरा कम हो जाता है, टूटी हड्डी के तीक्ष्ण सिरे से चर्म नहीं फटता। अंग को खप-चियों की सहायता से निश्चल किया जाता है, जिन्हें उप-लब्ध सामग्रियों से बनाना पड़ता है।

खपची दुर्घटना-स्थल पर ही लगायी जाती है और इसके बाद ही आहत को अस्पताल ले जाया जाता है। खपची बहुत सावधानी के साथ लगायी (अंग के साथ बांधी) जाती है, ताकि अस्थि-खंड अपनी जगह से और अधिक न खिसकें तथा पीड़ा न बढ़े। अस्थि-खंडों की स्थिति ठीक करने या उन्हें सोझा करने का प्रयत्न भी नहीं करना चाहिये; यदि हड्डी के टूटे नुकीले सिरे से चर्म के फटने की आशंका है, तो इस स्थिति में उसे हल्के से दबाया जा सकता है। आहत को ढोते हैं बहुत सावधानी से, उसके हाथ-पैर और धड़ को एक साथ उठाते हुए या एक साथ रखते हुए।

खुले (बाहरी) विभंजन में घाव के गिर्द चर्म पर

टिंचर आयडीन या कोई अन्य प्रतिसृपक दवा लगाते हैं, फिर निस्सृपक पट्टी बांधते हैं; अंग का निश्चलकरण इसके बाद ही करते हैं। यदि निष्कीटित परिधान-सामग्री न हो, तो घाव को साफ सूती कपड़े से ढकना चाहिये। बंद (भीपरी) विभंजन की तरह बाहरी विभंजन में भी अस्थि-खंडों को सीधा करने या उनके सिरों को घाव के भीतर घुसाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे रक्त-स्राव, अस्थियों तथा मृदु ऊतकों का अतिरिक्त संदूषण हो सकता है। यदि खून बह रहा है, तो उसे अस्थायी संपीडक पट्टी, रक्तरोधक पाश या ऐंठनयुक्त बंधन से रोका जा सकता है।

पैर निश्चल करने के लिये डीड्रिख की परिवहन खपचियों का उपयोग सबसे अच्छा होता है और हाथ के लिये – क्रामेर की सीढ़ीनुमा खपची या वातिल खपची (दे. अध्याय 3)। यदि मानक खपचियां उपलब्ध न हों, तो किन्हीं अन्य सुलभ सामग्रियों से कामचलाऊ खपचियां बनायी जाती हैं (जैसे लकड़ी की पट्टियों, बंदूक, लाठी, वृक्ष की डाली आदि से)। पर्यंग (हाथ या पैर) को निश्चल करने के लिये कम से कम दो कड़ी वस्तुएं चाहियें, जिन्हें पर्यंग के दो तरफ से लगा कर बांधा जा सके। यदि कुछ न मिले, तो हाथ को धड़ के साथ या टूटे पैर को स्वच्छ पैर के साथ ही रूमालों, मफलरों या पट्टियों की सहायता से बांध देना चाहिये (चित्र 56)।

परिवहन के लिये खपची बांधते समय निम्न नियमों को ध्यान में रखना चाहिये: (1) खपचियों को इस तरह
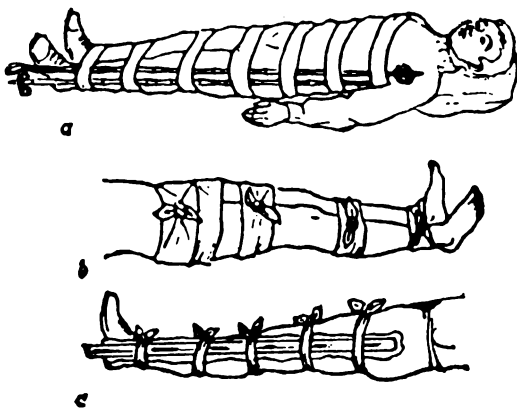
चित्र 56. उपलब्ध सामग्रियों से ही टूटे पैर का निश्च-लकरण। (a) जांघ की हड्डी टूटने पर दो छड़ियों की सहा-यता से; (b) जांघ व टांग की हड्डी टूटने पर आहत पैर को स्वस्थ पैर के साथ बांध कर; (c) टांग (घुटने और टखने के बीच) की हड्डी टूटने पर।

बांधना चाहिये कि विभंजन-स्थल निश्चल हो जाये; (2) खपचियों के नीचे रूई या किसी अन्य मुलायम सामग्री से गद्दी जैसा अवश्य बना लेना चाहिये; (3) विभंजित स्थल को निश्चल करने के लिये उसके ऊपर और नीचे की संधि-यों को भी निश्चल करना चाहिये, जैसे—टंगास्थि (टांग अर्थात पैर के घुटने से नीचे टखने तक के हिस्से की हड्डी) टूटने पर घुटने और टखने की संधियों को आरामदेह स्थि-

ति में निश्चल करना चाहिये ; (4) जांघ की हड्डी के टूटने पर पैर की सभी (टखने, घुटने और कमर की) संधियों को निश्चल करना चाहिये।

अभिघात एवं अन्य सार्वदैहिक गड़बड़ियों का निरोध. यदि विभंजन-स्थल अच्छी तरह से निश्चल कर दिया गया है, अर्थात वह ऐसी स्थिति में है कि पीड़ा अल्पतम होती है, तो अभिघात और अन्य क्लिष्टताओं से बचाव अक्सर स्वयं हो जाता है। रोगी के इर्द-गिर्द व्यर्थ की भाग-दौड़ और घाव एवं घायल की अवस्था के बारे में घबराहट के साथ जोर-जोर से बातें करना नुकसानदेह होता है। ठंड अभिघात के विकास को प्रोत्साहित करती है, अतः आहत को अच्छी तरह कंबल आदि उढ़ा देना चाहिये। कभी-कभी अल्कोहलिक पेय (जैसे वोद्का, ब्रैंडी या शराब) की कुछ घूंटें, या गर्म कौफी, चाय आदि भी फायदेमंद होती हैं। पीड़ा का शमन निम्न दवाओं से हो सकता है: 0.5-1 ग्राम अमीदोपीरीन या अनाल्जिन, या कोई वेदनाहर दवा, जैसे – मोर्फीन, ओम्नोपोन या प्रोमेडोल के 1 प्रतिशत सांद्र घोल की 1-2 मिलि-लीटर मात्रा।

रोगी को ऐंबुलेंस या किसी अन्य उपलब्ध गाड़ी में ही अस्पताल ले जाना अच्छा होता है। बांह टूटने पर रोगी को बिठा कर ले जाते हैं, बाँह कुछ ऊपर उठी अवस्था में रखते हैं, इसके लिये उसके नीचे कोई मुलायम वस्तु रख देते हैं। पैर टूटने पर घायल को स्ट्रेचर पर लिटा कर ले जाना चाहिये। रोगी को उठाने, हिलानेडुलाने में विशेष

सावधानी बरतनी चाहिये, क्योंकि अस्थि-खंडों का अत्यल्प स्थानांतरण भी तीव्र पीड़ा उत्पन्न करता है। इसके अलावा अस्थि-खंड मृदु ऊतकों में धँस जा सकते हैं, जिससे नयी गंभीर क्लिष्टताएं उत्पन्न हो सकती हैं।

कपाल और मस्तिष्क की क्षतियां. सर पर टक्कर या आघात से उत्पन्न मस्तिष्क की क्षति बहुत खतरनाक होती है, कपाल की अस्थियों के अक्षत रहने पर भी। मस्तिष्क में निम्न प्रकार की क्षतियां होती हैं: झर्झन (मस्तिष्क द्रव्य का झकझोरा जाना), धमसन और संपीडन। झर्झन का लक्षण है – मस्तिष्क में शोफ और सूजन। मस्तिष्क के धमसन और संपीडन में मस्तिष्क के कुछ ऊतक नष्ट भी हो जाते हैं।

मस्तिष्क की क्षति में निम्न सार्वमस्तिष्कीय लक्षण प्रकट होते हैं: चक्कर, सरदर्द, मतली और नाड़ी का क्षीण होना। लक्षणों की तीव्रता मस्तिष्क की क्षति की गहराई और विस्तार पर निर्भर करती है। मस्तिष्क का झर्झन एक बहुत ही प्रायिक क्षति है, इसमें निम्न मुख्य लक्षण उत्पन्न होते हैं: चेतना कुछ समय के लिये लुप्त हो सकती है (कुछ मिनटों से लेकर 24 या अधिक घंटे तक के लिये) या पश्च-विस्मृति (दुर्घटना से पूर्व की घटनाओं की याद न रहना) विकसित हो सकती है। धमसन और संपीडन में मस्तिष्क की स्थानाबद्ध क्षतियों के लक्षण प्रकट होते हैं, जैसे – वाक्, संवेदना, अंगों में गति, भाव-भंगिमा आदि में गड़बड़ी।

अधिक गंभीर चोटों में कपालास्थियों का विभंजन भी

अवलोकित होता है। मस्तिष्क बहुत हद तक खुद आघात से ही क्षत हो जाता है, फिर रक्तस्राव से (संपीडक रक्तार्बु के कारण) और अस्थि-खंडों के कपाल-कोटर में प्रविष्ट होने से भी काफी क्षति होती है। कपालास्थियों का खुला (बाहरी) विभंजन विशेष खतरनाक होता है, क्योंकि इससे मतिष्क-द्रव्य का कुछ भाग नष्ट हो जाता है या मस्तिष्क में जीवाणुओं का पैठन हो जाता है।

यह निर्धारित करना बहुत ही कठिन होता है कि मस्तिष्क किस हद तक क्षत हुआ है। इसीलिये मस्तिष्क के झर्झन, धमसन या संपीडन के लक्षण प्रकट होने पर आहत को शीघ्र अस्पताल में भरती कराना चाहिये। प्राथमिक उपचार के रूप में आहत को विश्राम की अवस्था में रखते हैं। उसे क्षैतिज दिशा में लिटाया जाता है और वालेरियान-टिंचर की 15-20 बूंदें या जेलेनिन की बूंदें दी जाती हैं, सर पर ठंडी पुल्टिस रखी जाती है। यदि रोगी बेहोश है, तो उसके मुंह से श्लेष्मा और वमन द्रव्य साफ कर देना चाहिये। इसके बाद उसे स्थायी स्थिति (मुद्रा) में रखना चाहिये और साँस तथा हृदय की गति ठीक करने के लिये हर संभव उपाय करना चाहिये (दे. अध्याय 3)।

कपाल की गुंबद में खुला विभंजन होने पर घाव को निस्सृपक परिधान-सामग्री से ढक कर उसे पैठन से बचाने का खयाल अवश्य करना चाहिये।

घायल के परिवहन के समय उस पर निरंतर निगरानी रखनी चाहिये कि दुहरा कर वमन न हो, वमन-द्रव्य

साँस के साथ अंदर न चला जाये, जीभ श्लथ हो कर कंठ में न लुढ़क आये (इससे साँस रुक जायेगी), या दम न घुटने लगे।

सर में घाव, मस्तिष्क या कपालास्थि की क्षति वाले आहत के परिवहन में उसे स्ट्रेचर पर क्षैतिज लिटा कर रखते हैं। सर को अतिरिक्त चोट और झटके लगने से बचाने के लिये उसे निश्चल कर दिया जाता है; इसके लिये किसी भी ऐसी वस्तु का उपयोग किया जा सकता है, जिसे सर के गिर्द रखा या लपेटा जा सके, जैसे – रूई और गजी से बनाया हुआ मोटा छल्ला, रबड़ के तकिये, कपड़े, कंबल, पुआल, बालू के थैले आदि। सर को एक पट्टी से भी स्थिर किया जा सकता है, जिसका मध्य भाग ठुड्डी पर रखते हैं और सिरे पीछे की ओर स्ट्रेचर के डंडों के साथ बांध दिये जाते हैं (चित्र 57)। यदि पश्च
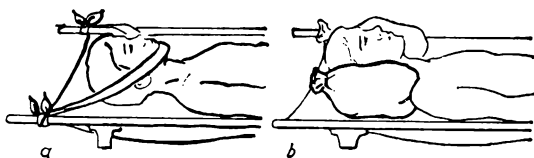
चित्र 57. सर का निश्चलकरण। (a) स्ट्रेचर के साथ गलपट्टी बांध कर; (b) बालू की बोरियों की सहायता से।

कपालास्थि में घाव या विभंजन है, तो आहत को करवट के बल लिटा कर सावधानी से अस्पताल ले जाते हैं।

इस प्रकार की क्षति में अक्सर वमन होता है, अतः आहत पर निगाह रखनी चाहिये कि वमन-द्रव्य से उसकी साँस न घुटे।

नाक की हड्डियों के टूटने पर अक्सर नाक से रक्त-स्राव होता है। ऐसी स्थिति में आहत को स्ट्रेचर पर अध-बैठी मुद्रा में ले जाते हैं, सर और कंधों को ऊँचाई पर टेक लगाकर रखते हैं।

जबड़े की क्षति में आहत को बैठा कर ले जाना चाहिये; इसमें उसका सर पीछे की ओर झुका होना चाहिये। बेहोश आहत को परिवहन के समय घुटन से बचाने के लिये पेट के बल लिटा कर रखना चाहिये (घुटन का कारण रक्त या लार का जमा होना या जीभ का कंठ में आ गिरना हो सकता है)। ललाट और वक्ष के नीचे कंबल या कपड़े लपेट कर गद्दी सी बना देते हैं। परिवहन से पहले निचले जबड़े को गुलेलनुमा पट्टी से निश्चल करते हैं; ऊपरी जबड़े को निश्चल करने के लिये प्लाइ-वुड का एक टुकड़ा घुसा कर उसे सर के साथ बांधते हैं।

<u>रीढ़ में विभंजन</u>. यह अक्सर ऊँचाई से गिरने, पीठ पर कोई बोझ गिरने अथवा सड़कदुर्घटना में पीठ पर धक्का या टक्कर लगने से होता है। गरदन के पास कशेरुकों का टूटना अक्सर पानी में छलांग लगाते समय जमीन से सर के टकराने पर होता है।

रीढ़ में विभंजन बहुत खतरनाक होता है और थोड़ा भी हिलने-डुलने पर दारुण पीड़ा के रूप में व्यक्त होता है। मेरुरज्जू विदीर्ण या संपीडित हो सकता है, जिससे

पर्यंगों (हाथ-पैर) में लकवा हो जाता है (गति और संवेदिता नहीं रह जाती)। वह कशेरुकों के थोड़ा सा भी खिसकने से विदीर्ण हो सकता है, अतः रीढ़ टूटने की आशंका होने पर आहत को बैठाने या खड़ा करने की कोशिश बिल्कुल नहीं करनी चाहिये। पूर्ण विश्राम की स्थितियां उत्पन्न करनी चाहिये। आहत को कठोर समतल सतह (लकड़ी के तख्ते) पर लिटाना चाहिये; यह तख्ता परिवहन के वक्त आहत के शरीर को निश्चल करने के काम आता है (चित्र 56)। यदि इस तरह की सामग्री न हो या आहत बेहोश हो, तो उसे स्ट्रेचर पर पट लिटा
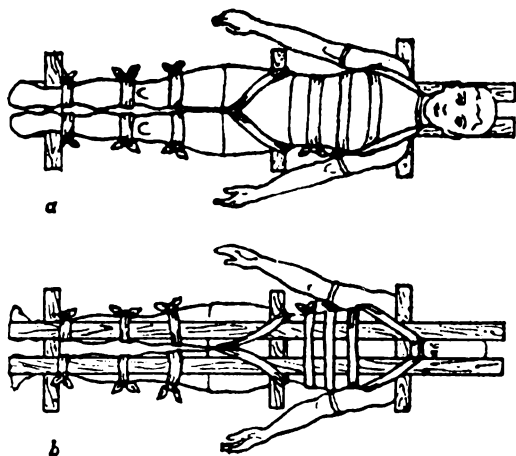
चित्र 58. रीढ़ टूटने पर निश्चलकरण। (a) सामने से दृश्य; (b) पीछे से।

कर भी गाड़ी में ले जाया जा सकता है; इस स्थिति में उसके सर और कंधों के नीचे तकिये रखते हैं, जिससे परिवहन कम खतरनाक होता है। ग्रैव मेरु (गरदन के पास की रीढ़) के टूटने पर आहत को चित लिटा कर ले जाना चाहिये और उसके सर को वैसे ही निश्चल करना चाहिये, जैसे कपाल के विभंजन में करते हैं। परिवहन बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये। उठाते वक्त तीन या चार आदमी मिल कर एक साथ आहत के धड़ को एक ही ऊंचाई पर रखते हुए सहारा देते हैं, ताकि रीढ़ कहीं से मुड़े नहीं। बेहतर तो यही होता है कि आहत को तख्ता समेत उठाया जाये, जिस पर उसे लिटाया जाता है।

श्रोणि-विभंजन गंभीरतम क्षतियों में से एक है। यह ऊंचाई से गिरने, दबने या शक्तिशाली प्रत्यक्ष टक्कर से होता है। इस क्षति के साथ आंतर अंग भी क्षत होते हैं, तीव्र अभिघात विकसित होता है। इसका मुख्य लक्षण यह है कि पर्यंगों को थोड़ा भी हिलाने पर या आहत की मुद्रा बदलने पर कूल्हे (श्रोणि) के क्षेत्र में तीव्र पीड़ा होती है। कूल्हे की अस्थियों पर खपची नहीं लगायी जा सकती, इसीलिये आहत को सबसे आरामदेह स्थिति में रखना चाहिये, जिसमें पीड़ा कम पुनरावर्तित हो और कम शक्तिशाली हो, अस्थि-खंडों से श्रोणिस्थ (कूल्हे के भीतर स्थित) अंगों के और अधिक क्षत होने का खतरा न हो। आहत को कठोर समतल सतह पर पीठ के बल लिटाना चाहिये, घुटने मुड़े हुए और एक-दूसरे से कुछ

दूर होने चाहिये (भेक-मुद्रा, मेढ़क की मुद्रा)। घुटनों के नीचे कड़ी मसनदें (तकिये, कंबल, कोट या पुग्राल ग्रादि से बना कर) रखते हैं। ग्रभिघात-निरोधी उपाय लागू करने ग्रावश्यक होते हैं।

ग्राहत को स्ट्रेचर पर या कठोर तख्ते पर लेटी ग्रवस्था में ले जाते हैं (दे. चित्र 30b)। मसनद को ग्रपनी जगह स्थिर रखने के लिये किसी मुलायम कपड़े (तौलिये या पट्टी) से जांघों के साथ बांध देते हैं।

पसलियों में विभंजन भी शक्तिशाली प्रत्यक्ष ग्राघात, वक्ष के शक्तिशाली संपीडन या ऊंचाई से गिरने के फलस्वरूप होता है। ऐसे केस भी ग्रवलोकित हुए हैं, जिसमें बहुत जोर से खाँसने या छींकने से पसली टूट जाती है। इस विभंजन का लक्षण है—तीव्र पीड़ा, जो साँस लेने, खाँसने या शरीर की मुद्रा बदलने पर ग्रौर भी तेज हो जाती है। बहुसंख्य पसली-विभंजन खतरनाक होता है, क्योंकि इससे श्वसन की ग्रपूर्णता बढ़ने लगती है। ग्रस्थि-खंडों की तीक्ष्ण किनारियां फेफड़े को क्षत कर सकती हैं, जिसके फलस्वरूप वक्षवात या ग्रंतर्प्लूरिक रक्तस्राव विकसित हो सकता है।

प्राथमिक उपचार: पसलियों को पट्टियों की कसी हुई वृत्ताकार लपेटनों से निश्चल करते हैं; पट्टी उपलब्ध न होने पर तौलिये, चादर ग्रथवा कपड़े के किसी टुकड़े से भी किया जा सकता है। पीड़ा ग्रौर खाँसी कम करने के लिये एनाल्जिन, कोडेइन ग्रथवा ग्रमीडोपीरीन की एक टिकिया दी जा सकती है। ग्राहत को बैठी हुई ग्रवस्था

में अस्पताल ले जाते हैं, ताकि उसे पीड़ा कम हो। यदि आहत की अवस्था गंभीर हो और वह बैठने में असमर्थ हो, तो उसे स्ट्रेचर पर अर्धलेटी अवस्था में ले जाते हैं।

पसली-विभंजन के क्लिष्ट केसों में (वक्षवात, वक्ष में रक्तस्राव होने पर) प्रथमिक उपचार और परिवहन उसी तरह किया जाता है, जैसे वक्ष में बेधक घाव के केस में (दे. अध्याय 7)।

हँसुली में विभंजन पीड़ा और क्षत पक्ष की कार्यात्मक गड़बड़ियों के रूप में व्यक्त होता है। अस्थि-खंडों की तीक्ष्ण किनारियां सरलतापूर्वक परिस्पर्शित होती हैं।

प्राथमिक उपचार. तिकोण रूमाल से बाँह को बांध कर क्षत स्थल निश्चल करते हैं (दे. चित्र 5); डेजो की पट्टी (चित्र 14) या रूई तथा गजी के छल्लों (चित्र 59) का भी उपयोग हो सकता है।
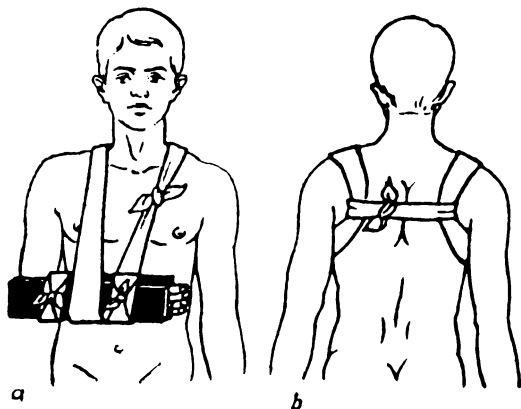
चित्र 59. प्रबाहु (a) तथा हँसुली (b) टूटने पर उनका निश्चलकरण।

अध्याय 10

झुलसन और तुषारण का प्राथमिक उपचार

झुलसन

झुलसन (या दग्ध) ऊतकों की ऐसी क्षति को कहते हैं, जो ताप, रसायनों, विद्युत, एक्स-किरणों, धूप या आयनक विकिरण की स्थानीय अभिक्रिया से उत्पन्न होती है।

तापीय झुलसन

तापीय झुलसन सीधे शरीर पर उच्च तापक्रम (लपटों, खौलते पानी, दहनशील गर्म द्रव आदि) की अभिक्रिया मे उत्पन्न होती है। क्षति की गंभीरता तापक्रम की उच्चता, अभिक्रियाकाल की लंबाई, आक्रांति-क्षेत्र के विस्तार और झुलसन-स्थल पर निर्भर करती है। आग की लपेट और उच्च दाब के अधीन वाष्प से विशेष गंभीर झुलसनें उत्पन्न होती हैं। अंतिम स्थिति में मुँह और नाक के कोटरों, साँसनली तथा वातावरण के साथ संपर्क रखने वाले अन्य अंगों में भी झुलसन हो सकती है।

अधिकांशतः हाथ, पैर, आँख में झुलसन की घटनाएं प्रेक्षित होती हैं, धड़ और सर में अपेक्षाकृत कम होती

हैं। झुलसन जितनी ही विस्तृत और गहरी होती है, आहत के लिये वह उतनी ही घातक होती है। शरीर की तिहाई सतह पर झुलसन से अक्सर मृत्यु हो जाती है।

गहराई के अनुसार झुलसन की चार कोटियां निर्धारित की गयी हैं।

प्रथम कोटि की झुलसन (ललामी) त्वचा की लाली, शोफ और पीड़ा द्वारा अभिव्यक्त होती है। यह सबसे हल्की कोटि की झुलसन है, इसमें चर्म का शोथ शुरू हो जाता है। शोथी संवृत्तियां बहुत जल्द समाप्त हो जाती हैं (3-6 दिनों में)। झुलसन के क्षेत्र में वर्णकता रह जाती है; बाद के दिनों में त्वचा का शल्कन होता है (चोंइया उघड़ती है)।

द्वितीय कोटि की झुलसन (फफोले पड़ना). इस स्थिति में शोथी प्रक्रिया अधिक तीव्र होती है। तेज पीड़ा के साथ त्वचा तीव्र लाल हो जाती है और उसके नीचे हल्का सा धुंधला द्रव जमा हो जाता है (फोड़ा या फफोला)। ऐसी झुलसन में चर्म की अधिक गहरी परतों की क्षति नहीं होती, इसलिये यदि उसकी सतह जीवाणुओं से संदूषित नहीं होती, सप्ताह भर में चर्म की सभी परतें ठीक हो जाती हैं, क्षतांक नहीं रहता। झुलसन पूरी तरह 10-15 दिन बाद ठीक होती है। फफोलों में पैठन से ठीक होने की प्रक्रिया में तीव्र गड़बड़ी उत्पन्न होती है, द्वितीयक खिंचाव के बाद ही अंग स्वस्थ होता है और इसमें अधिक समय लगता है।

तृतीय कोटि की झुलसन से चर्म की सभी परतों की

विमृति (स्थानीय ऊतकों, कोशिकाओं की मृत्यु) हो जाती है। चर्मकोशिकाओं का प्रोटीन और रक्त स्कंदित होकर (फट कर) घनी खठ्ठी बना लेते हैं, जिनके नीचे क्षत एवं विमृत ऊतक होता है। तृतीय कोटि की झुलसन के बाद क्षति द्वितीय खिंचाव से ही ठीक होती है। क्षत स्थल पर कणमय ऊतक विकसित होता है, जो योजक ऊतकों के साथ घुल-मिल कर रुक्ष ताराकृतिक क्षतांक बनाता है।

चतुर्थ कोटि की झुलसन (कोयले में परिणति) ऊतकों पर अत्युच्च तापक्रम (आग की लपेट, पिघले धातु) की अभिक्रिया से होती है। यह झुलसन का सबसे गंभीर रूप है, जिसमें चर्म ही नहीं, पेशियां, कंडराएं, अस्थियां आदि भी क्षत हो जाती है। तृतीय और चतुर्थ कोटि की झुलसन बहुत धीरे-धीरे ठीक होती है, झुलसन की सतह पर अक्सर चर्म का प्रत्यारोपण करना पड़ता है।

झुलसन से गंभीर सार्वदैहिक संवृत्तियां उत्पन्न होती हैं, जिनका कारण एक ओर तो केंद्रीय नर्वतंत्र में परिवर्तन है (पीड़ाजनित अभिघात) और दूसरी ओर–आगरण के कारण रक्त में तथा आंतर अंगों के कार्यों में कुपरिवर्तन। झुलसन का क्षेत्र जितना ही विस्तृत होगा, उतनी ही अधिक नर्व-शिराएं क्षत होंगी और उतनी ही शक्तिशाली चोटज अभिघात की संवृत्तियां होंगी। झुलसन होने पर आंतर अंगों के कार्य में गड़बड़ी उत्पन्न होने का कारण यह है कि झुलसी सतह से रक्त का द्रव भाग (प्लाजमा) बहुत अधिक मात्रा में विलगित होता है और क्षत क्षेत्र

से विमृत ऊतकों के विघटन के उत्पाद शरीर में अपचोषित होने लगते हैं। यह सब सरदर्द, मतली, वमन और सामान्य कमजोरी के रूप में व्यक्त होता है।

प्राथमिक उपचार में सबसे पहले आहत को उच्च तापक्रम की अभिक्रिया से मुक्त करना चाहिये। इसके लिये जलते कपड़ों की लपटों को बुझाना चाहिये, आहत को उच्च तापक्रम के क्षेत्र से दूर करना चाहिये, सुलगते या बहुत अधिक तप्त वस्त्रों को उतारना चाहिये, आदि। यह सब बहुत सावधानी से करना चाहिये, ताकि हरमुठता के कारण त्वचा क्षत न हो। प्राथमिक उपचार में वस्त्र को काट कर अलग करना बेहतर होता है, विशेषकर जहां वह त्वचा से चिपक जाता है। चिपके वस्त्र को बलपूर्वक उधेड़ना नहीं चाहिये, झुलसन के चारों तरफ से काटकर उसे वहीं छोड़ देते हैं, उस पर निस्सृपक पट्टी बांधते हैं। आहत को बिल्कुल निर्वस्त्र नहीं करना चाहिये, क्योंकि ठंड से शरीर की सामान्य अवस्था बदतर होने लगती है, जिससे अभिघात के विकास को प्रोत्साहन मिलता है।

प्राथमिक उपचार का अगला कदम है—पैठन से झुलसी सतह की रक्षा के लिये उस पर शीघ्रातिशीघ्र सूखी निस्सृपक पट्टी लगाना। इसके लिये निष्कीटित पट्टी या निजी पैकेट के रूप में मिलने वाली पट्टी का उपयोग अच्छा रहता है। यदि निष्कीटित पट्टी न हो, तो झुलसी सतह को साफ सूती चादर या कपड़े से ढकते हैं, लेकिन इससे पहले चादर पर खूब गर्म इस्तरी करते हैं या उसे एथिल स्पी-

रिट या वोद्का में अथवा एथाक्रीडीन लैक्टेट (रीवानोल) या पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में भिगो लेते हैं। इस तरह की पट्टी से पीड़ा कुछ कम हो जाती है।

प्राथमिक उपचार करने वाले को यह अवश्य जानना चाहिये कि किसी भी प्रकार की अतिरिक्त क्षति अथवा झुलसी सतह का संदूषण आहत के लिये खतरनाक ही होता है। इसीलिये झुलसे क्षेत्र को धोना नहीं चाहिये, उसे हाथ से नहीं छूना चाहिये, उस पर कोई भी स्नेहक वस्तु (तेल, चर्बी, वैजेलीन आदि) नहीं लेपना चाहिये, कोई पाउडर नहीं छिड़कना चाहिये। इन चीजों से घाव ठीक होने में कोई सहायता नहीं मिलती, पीड़ा भी कम नहीं होती; उल्टा, इनसे जीवाणुओं का पैठन सरल हो जाता है और डाक्टरी सहायता (झुलसन का प्राथमिक करोर्जिक साधन) कठिन हो जाता है।

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ कोटि की झुलसनों में सार्वदैहिक संवृत्तिया, अभिघात काफी जल्द विकसित होता है। आहत को ऐसी मुद्रा में लिटाना चाहिये, जिसमें उसे सबसे कम पीड़ा हो; उसे गर्म कपड़ों से ढकना चाहिये, ताकि ठंड न लगे; विपुल मात्रा में पेय पदार्थ देना चाहिये। अभि-घात-निरोधी उपाय तुरंत शुरू कर देने चाहिये। पीड़ा कम करने के लिये यदि संभव हो, तो कोई नर्कोटिक (संज्ञाहर) द्रव्य देना चाहिये, जैसे – ओम्नोपोन, मोर्फीन या प्रोमेडोल के 1 प्रतिशत सांद्र घोल की 1 मिलिलीटर मात्रा का आधान कराना; कड़ी कौफी, चाय, शराब या वोद्का की घूंट भी दी जा सकती है।

विस्तृत झुलसन में बेहतर होता है कि ग्राहत को साफ, इस्तरी की हुई चादर में लपेट कर यथाशीघ्र ग्रस्पताल पहुँचाया जाये। परिवहन से पूर्व निश्चलकरण करना चाहिये: ग्राहत के ग्रंगों को ऐसी मुद्रा में निश्चल करना चाहिये कि झुलसी सतह पर त्वचा ग्रधिकतम तनी हुई स्थिति में रहे। उदाहरणार्थ, कोहनी के भीतरी भाग में झुलसन होने पर हाथ को सीधी ग्रवस्था में निश्चल किया जाता है, लेकिन कोहनी के ऊपरी (बाहरी) भाग में झुलसन होने पर हाथ को मोड़ कर निश्चल किया जाता है; हथेली के झुलसने पर हाथ को इस तरह निश्चल करते हैं कि कलाई ग्रौर उंगलियां ग्रधिकतम सीधी रहें।

रोगी को ग्रस्पताल विशेष गाड़ी में ले जाना ग्रच्छा होना है; यदि इसकी सुविधा न हो, तो किसी भी गाड़ी में ले जाया जा सकता है, लेकिन उसमें रोगी के लिये पूर्ण विश्राम ग्रौर सुविधाजनक मुद्रा के लिये ग्रावश्यक प्रबंध करना चाहिये। यह याद रखना चाहिये कि ठंड से रोगी की ग्रवस्था तेजी से खराब होने लगती है, जिससे ग्रभि-घात-संवृत्तियों के विकास को प्रोत्साहन मिलता है। इसी-लिये चोट लगने (जलने) से ले कर कुशल डाक्टरी सहायता मिलने के बीच की ग्रवधि में ग्राहत की ग्रवस्था पर ध्यानपूर्वक निगरानी रखनी चाहिये: उसके शरीर को गर्म रखना चाहिये, गर्म पेय देने चाहिये।

विस्तृत झुलसन वाले ग्राहत का परिवहन बहुत साव-धानी से करना चाहिये, उसे शरीर के उन हिस्सों के बल लिटाना चाहिये, जो क्षत न हों (जैसे करवट या पेट

के बल, आदि)। आहत को एक बिस्तर से दूसरे पर (जैसे स्ट्रेचर पर) रखने में सुविधा के लिये उसके नीचे पहले से कोई मोटा व मजबूत कपड़ा बिछा देना चाहिये; इस कपड़े को पकड़ कर आहत को उठाने में सरलता होती है और उसे अतिरिक्त पीड़ा भी नहीं होती है।

यदि प्रथम व द्वितीय कोटि की (कभी-कभी तृतीय कोटि की भी) झुलसन अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्र पर है, तो आहत खुद भी अस्पताल जा सकता है। ऐसे आहतों की चिकित्सा उन्हें अस्पताल में भरती किये बगैर हो सकती है (आँख, जननेंद्रियों और मूलाधार-क्षेत्र की झुलसन के केस अपवाद हैं)।

परिवहन के समय अभिघात-निरोधी उपाय करते रहने चाहिये, यदि अभिघात की स्थिति विकसित हो गयी है, तो उसे दूर करने के उपाय करने चाहिये (दे. अध्याय 4)।

रासायनिक झुलसन

रासायनिक झुलसन शरीर पर सांद्रित अम्लों (नमकाम्ल, गंधकाम्ल, नाइट्रिक अम्ल, एसेटिक अम्ल, कार्बोलिक अम्ल आदि) और क्षारों (जैसे पोटाशियम हाइड्रोक्साइड, सोडियम हाइड्रोक्साइड, अमोनियम हाइड्रोक्साइड, अनबुझे चूने आदि) की, फौस्फर तथा भारी धातुओं के कतिपय लवणों (रजत नाइट्रेट, जिंक क्लोराइड आदि) की अभिक्रिया से होती है।

क्षति की गहराई और विस्तार रासायनिक द्रव्य के प्रकार और सांद्रता पर, उसके अभिक्रिया-काल पर निर्भर

करते हैं। रासायनिक द्रव्यों की अभिक्रिया का असर श्लेष्मल झिल्लियों और मूलाधार एवं गरदन के क्षेत्र के चर्म पर सरलता से होता है, हथेली और तलवों का चर्म अधिक सहनशील होता है।

चर्म तथा श्लेष्मल झिल्लियों पर सांद्रित अम्लों की अभिक्रिया से शीघ्र ही शुष्क, गाढ़ी कत्थई अथवा काली, स्पष्ट परिसीमित खट्ठी बनती है, क्षार की अभिक्रिया से आर्द्र, भूरी-धूसर खट्ठी बनती है, जिसकी परिरेखा स्पष्ट नहीं होती।

रासायनिक झूलसन का प्राथमिक उपचार रासायनिक द्रव्य के प्रकार पर निर्भर करता है। सांद्रित अम्ल से (गंधकाम्ल को छोड़ कर) झूलसी सतह को 15-20 मिनट तक ठंडे पानी की धार से धोते हैं। गंधकाम्ल पानी के साथ मिलाने पर ताप विलगित करता है, जिससे झुलसन बढ़ सकती है। क्षारों के घोल से धोने पर अच्छे परिणाम मिलते हैं, जैसे साबुनी पानी से, अथवा खाने वाले सोडे के 3 प्रतिशत सांद्र घोल से (एक गिलास पानी में एक मंझला चम्मच)। क्षार से झुलसी सतह को भी शीतल पानी की धार से धोते हैं और इसके बाद एसेटिक अम्ल या साइट्रिक अम्ल (नींबू के रस) के 2 प्रतिशत सांद्र घोल से धोते हैं। झूलसी सतह के इस संसाधन के बाद उस पर निस्सृपक पट्टी या उन घोलों में तर पट्टी लगाते हैं, जिनसे झुलसन संसाधित किया गया है।

अम्ल व क्षार से उत्पन्न झुलसन के विपरीत फौस्फर से झुलसन की विशेषता यह है कि फौस्फर हवा में जल

उठता है, अतः तापीय और रासायनिक (अम्लीय) प्रकार की मिश्र झुलसन उत्पन्न होती है। शरीर के झुलसे अंग को पानी में डुबाना बेहतर होता है, पानी के भीतर ही लकड़ी अथवा रूई से फौस्फर के कणों को पानी की तेज धार से भी दूर किया जा सकता है। पानी से धोने के बाद झुलसी सतह को कौपर सल्फेट के 5 प्रतिशत सांद्र घोल से संसाधित कर के उस पर शुष्क निष्कीटित पट्टी लगाते हैं। तेल, चर्बी, मलहम आदि नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि इससे फौस्फर शरीर में अपचोषित होने लगता है।

अनबुझे चूने (कैल्स्यिम आक्साइड) से झुलसने पर घाव को पानी से नहीं धोना चाहिये, झुलसी सतह का संसाधन तेल, घी या चर्बी से करना चाहिये, इसी से चूने के कणों को अलग भी किया जाता है; इसके बाद घाव पर गजी की पट्टी बांधी जाती है।

मुखमार्ग से अंदर ग्रहण किये गये अम्ल या क्षार की श्लेष्मल झिल्लियों पर अभिक्रिया का वर्णन "सांद्र अम्लों तथा क्षारों से आगरण का प्राथमिक उपचार" नामक अनुच्छेद में देखें।

तुषारण

निम्न तापक्रम की अभिक्रिया से ऊतकों की क्षति को तुषारण कहते हैं। तुषारण विविध कारणों से हो सकता है। यह 3-7°C तापक्रम पर भी संभव है, यदि तदनुरूप परिस्थितियां हों, जैसे—लंबे समय तक ठंड और हवा की अभिक्रिया, वातावरण में उच्च आर्द्रता, कसे

हुए या भीगे जूते, आदमी की निश्चल मुद्रा, आहत की बुरी सार्वदैहिक अवस्था (रोग, फाका, रक्तहानि, नशा आदि)। तुषारण के प्रति पर्यंगों (हाथ-पैर) के दूरस्थ हिस्से, कान और नाक अधिक सुकुमार होते हैं। तुषारण में पहले ठंड की अनुभूति होती है, फिर अंग सुन्न होने लगता है (पहले तो पीड़ा लुप्त होती है, फिर किसी भी तरह की संवेदना नहीं रह जाती)। इस स्थानीय संज्ञाहरण के कारण निम्न (अल्प) तापक्रम की अभिक्रिया अनदेखी रह जाती है, उसका उपाय नहीं किया जाता, फिर इससे ऊतकों में गंभीर अनुत्क्रमणीय परिवर्तन उत्पन्न होने लगते हैं।

गंभीरता और गहराई के अनुसार तुषारण की चार कोटियां हैं। इसका निर्धारण आहत को गरमाने के बाद ही संभव होता है, कभी-कभी तो कई दिनों बाद ही।

प्रथम कोटि का तुषारण. इसमें चर्म की क्षति उसमें रक्त-संचार की उत्क्रमणीय (वापस ठीक या सामान्य होने लायक) गड़बड़ियों के रूप में उत्पन्न होती है। त्वचा का रंग कुछ फीका होता है, चर्म कुछ शोफित होता है और उसकी संवेदिता बहुत कम होती है या बिल्कुल अनुपस्थित होती है। गरमाहट देने के बाद चर्म का रंग नीला-लाल हो जाता है, शोफ बढ़ता है और कुंद पीड़ा होती है। शोथ (शोफ, लाली और दर्द) कई दिनों तक बना रहता है, फिर धीरे-धीरे दूर हो जाता है। बाद में त्वचा पर शल्कन और हल्की खुजली अवलोकित होती है। तुषारित क्षेत्र ठंड के प्रति हमेशा के लिये संवेदी रह जाता है।

द्वितीय कोटि का तुषारण. इसमें चर्म की ऊपरी परतों की विमृति होती है: गरमाहट देने के बाद आहत की विवर्ण त्वचा लाल-नीली हो जाती है, ऊतकों में तीव्रता से शोफ विकसित होता है, जो तुषारित क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता। तुषारण के क्षेत्र में फफोले उत्पन्न होते हैं, जिनमें पारदर्शक या श्वेत द्रव होता है। क्षतिग्रस्त क्षेत्र में रक्त-संचार बहुत धीरे-धीरे पुनर्स्थापित होता है। त्वचा की असंवेदिता लंबे समय तक बनी रहती है, लेकिन पीड़ा काफी होती है।

इस कोटि के तुषारण में निम्न सार्वदैहिक लक्षण पाये जाते हैं: बुखार, कँपकँपी, क्षुधालोप, अनिद्रा (यदि द्वितीयक पैठन नहीं होता, तो क्षतिग्रस्त क्षेत्र में विमृत ऊतक धीरे-धीरे दूर होते रहते हैं (15-30 दिनों तक); कणीकरण या क्षतांकन नहीं होता। इस स्थल पर त्वचा लंबे समय तक नीलाभ रहती है, उसकी संवेदिता भी कम रहती है।

तृतीय कोटि का तुषारण. इसमें रक्त-संचार व्यवधानित हो जाता है (कुंभियों का स्कंदक्लेश), जिससे चर्म की सभी परतों और विभिन्न गहराइयों पर स्थित ऊतकों की विमृति होती है। क्षति की गहराई का पता बाद में धीरे-धीरे चलता है। प्रथम दिनों चर्म की विमृति अवलोकित होती है: फफोले उत्पन्न होते हैं, जिनमें गाढ़े लाल रंग का या गाढ़े भूरे रंग का द्रव भरा होता है। विमृत क्षेत्र के गिर्द एक मेड़ सी बन जाती है (परिसीमक रेखा)। गहराई पर स्थित ऊतकों की क्षति का पता 3-5 दिन

बाद विकासरत नम विगलन के रूप में चलता है। ऊतकों की संवेदिता बिल्कुल लुप्त हो जाती है, पर ग्राहत दारुण पीड़ा से परेशान रहता है।

इस कोटि के तुषारण में सार्वदैहिक संवृत्तियां ग्रधिक प्रबल होती हैं। ग्रागरण भीषण थरथराहट, ग्रौर पसीने के रूप में व्यक्त होता है, ग्रस्वस्थता ग्रौर ग्रास-पास लोगों के प्रति उदासीनता बढ़ती है।

चौथी कोटि का तुषारण. इसमें ऊतकों की सभी परतें, यहां तक कि ग्रस्थियां भी विमृत हो जाती है। क्षत ग्रंग को गरमाना संभव नहीं होता, वह ठंडा ग्रौर बिल्कुल संवेदनाशून्य रहता है। चर्म जल्द ही छालों से भर जाता है, जिनमें काला द्रव भरा होता है। क्षति की सीमा का पता बहुत धीरे-धीरे चलता है। स्पष्ट परिसीमक रेखाएं 10-17 दिन बाद प्रकट होती हैं। क्षतिग्रस्त क्षेत्र जल्द ही काला पड़ जाता है ग्रौर सूखने लगता है (ममीकरण)। विमृत ऊतकों का विलगन बहुत धीरे-धीरे होता है (1.5 -2 महीने में) घाव बहुत मंद गति से ठीक होते हैं।

इस ग्रवधि में सामान्य ग्रवस्था बहुत खराब होती है, शरीर में कुपोषणजनित परिवर्तन प्रेक्षित होते हैं। ग्रविराम पीड़ा ग्रौर ग्रागरण से रोगी क्षयित होता जाता है, रक्त का ग्रवयवानुपात बदलने लगता है, ग्राहत ग्रन्य रोगों के प्रति सुसंवेदी हो जाते हैं।

प्राथमिक उपचार में सबसे पहले ग्राहत के शरीर को गर्म करने का प्रयास किया जाता है, विशेषकर तुषारित ग्रंगों का; इसके लिये उसे यथाशीघ्र गर्म घर या कमरे

में ले जाना चाहिये। पहले तुषारित अंगों को गर्म करना चाहिये, ताकि उनमें रक्त-संचार पुनर्स्थापित हो जाये। यह काम सबसे निरापद रूप से गर्म पानी के टब में लिटाने से संपन्न होता है। 20-30 मिनट की अवधि में पानी का तापक्रम धीरे-धीरे 20 से 40°C तक बढ़ाते हैं; इस प्रक्रिया में पर्यंगों को साबुन से अच्छी तरह धो कर गंदगी दूर करते हैं।

उष्ण स्नान के बाद क्षतिग्रस्त हिस्सों को सुखाना (अच्छी तरह पोंछना) चाहिये, निष्कीटित पट्टी से बांध कर गर्म कपड़े, कंबल आदि से पूरे शरीर को ढक कर रखना चाहिये। क्षत अंगों पर तेल, चर्बी या मलहम आदि नहीं लेपना चाहिये, क्योंकि इससे उनका प्राथमिक संसाधन कठिन हो जाता है। तुषारित अंगों पर बर्फ भी नहीं मलनी चाहिये, क्योंकि इससे ठंडा होने की प्रक्रिया प्रबल हो जाती है और बर्फ के कण चर्म में घाव उत्पन्न करते हैं, जिससे हो कर तुषारणक्षेत्र में जीवाणुओं का पैठन होने लगता है।

प्रथम कोटि का तुषारण यदि शरीर के सीमित भागों में हुआ है (जैसे नाक, कान में) तो उसे गरमी देने का काम उपचारकर्त्ता अपने हाथ से या गर्म पानी की थैली मे कर सकता है।

शरीर के ठंडे हो गये भागों पर तेजी से मालिश (रगड़) मे भी परहेज करना चाहिये, क्योंकि द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ कोटि के तुषारण में इससे कुंभियों को चोट पहुँच मकती है, फिर तो उनके स्कंदक्लेश का खतरा बढ़ जाता

है, जिससे ऊतकों की क्षति ग्रौर भी गहराई पर पहुँच जाती है।

प्राथमिक उपचार में ग्राहत के पूरे शरीर को गरमाने के उपाय बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उसे गर्म कौफी, चाय, दूध ग्रादि पीने के लिये दिया जाता है। ग्राहत को यथाशीघ्र ग्रस्पताल पहुँचाना भी प्राथमिक उपचार का ही ग्रंग है। परिवहन में इस बात का खयाल रखना चाहिये कि उसे दुबारा ठंड न लगे।

यदि ऐंबुलेंस के ग्राने तक प्राथमिक उपचार न हुग्रा हो, तो यह काम ऐंबुलेंस में परिवहन के समय करना चाहिये।

सार्वदैहिक पाला

पाला लगने का ग्रर्थ है पूरे शरीर का ठंडा होना। यह ग्रक्सर उन लोगों को होता है, जो जाड़े के दिनों रास्ता भूल जाते हैं, थकावट ग्रौर भूख से बहुत कमजोर हो जाते हैं या किसी रोग से क्षयित होते हैं।

सार्वदैहिक पाले में पहले थकान ग्रौर तनाव की ग्रनुभूति होती है, फिर नींद सी ग्राती है, उदासीनता बढ़ने लगती है। शरीर का तापक्रम कुछेक डिग्री भी कम होने पर बेहोशी की सी ग्रवस्था उत्पन्न हो जाती है। ठंड की ग्रभिक्रिया जारी रहने पर जल्द ही साँस ग्रौर रक्त-संचार रुक जाते हैं।

ग्राहत को सबसे पहले गर्म स्थान पर ले जाना चाहिये, फिर उसे धीरे-धीरे गरमाने के उपाय करने चाहिये। टब

में कमरे के तापक्रम पर पानी में लिटा कर गरमाने का तरीका सबसे अच्छा होता है। सावधानीपूर्वक शरीर के सभी अंगों की क्रमबद्ध रूप से मालिश करते हुए पानी का तापक्रम भी धीरे-धीरे बढ़ाते जाते हैं (36°C तक)। त्वचा पर गुलाबी आभा आने पर तथा हाथ-पैर की अकड़न दूर होने पर संजीवन-कार्य शुरू किया जाता है: कृत्रिम श्वसन और हृदय की मालिश। जैसे ही साँस खुद चलने लगे और होश आ जाये, आहत को बिस्तर में गर्म कंबल से ढकते हैं और उसे गर्म कौफी, चाय, दूध आदि पिलाते हैं। पर्यंगों का तुषारण होने पर तदनुरूप उपचार किया जाता है। आहत को अस्पताल अवश्य ले जाना चाहिये।

अध्याय 11

दुर्घटना और आकस्मिक रोगों की स्थिति में प्राथमिक उपचार

दुर्घटना या तीव्र आकस्मिक रोग होने पर शरीर में समय के अत्यंत छोटे अंतराल में ही ऐसे परिवर्तन उत्पन्न होते हैं कि शीघ्र मृत्यु हो जा सकती है। इन रोगों और आकस्मिक क्षतियों के परिणाम बहुत कुछ प्राथमिक उप-चार की समसामयिकता और पूर्णता पर ही निर्भर करते हैं, जो घटना-स्थल पर आहत को दिया जाता है।

विद्युघात और तड़िदाघात

उच्च शक्ति की विद्युत-धारा या आकाशी बिजली (तड़ित; वातावरणीय विद्युत के निरावेशन) की अभिक्रिया से उत्पन्न क्षति को विद्युघात कहते हैं।

विद्युघात से शरीर में स्थानीय और सार्वदैहिक गड़-बड़ियां उत्पन्न होती है। स्थानीय परिवर्तन विद्युत-धारा के प्रवेश तथा निकास स्थलों पर ऊतकों की झुलसन के रूप में व्यक्त होते हैं। आहत की अवस्था (नम त्वचा, थकान, कमजोरी आदि) तथा धारा की शक्ति एवं वोल्टता के

अनुसार स्थानीय अभिव्यक्तियां विविध प्रकार की हो सकती हैं – संवेदना-लोप से ले कर गहरे गड्ढों से युक्त झुलसनों तक। इस स्थिति में चर्म की क्षति तृतीय-चतुर्थ कोटि की झुलसन की याद दिलाती है। घाव की आकृति क्रेटर जैसी होती है, जिसकी किनारियां भूरी-पीली होती है। कभी-कभी घाव हड्डियों तक गहरा होता है। उच्च वोल्टता वाली धारा की अभिक्रिया से ऊतकों की परतों का अलग होना, उनका उधड़ना और कभी-कभी पर्यंगों से बिल्कुल अलग हो जाना भी संभव है।

तड़िदाघत (बिजली गिरने) से स्थानीय क्षतियां वैसी ही होती हैं, जैसी तकनीक में प्रयुक्त विद्युत-धारा की अभिक्रिया से। त्वचा पर गाढ़े भूरे रंग के धब्बे उत्पन्न होते हैं, जो वृक्ष के विशाखन (शाखाओं में बँट जाने) के चित्र की याद दिलाते हैं; इसका कारण है कुभियों का विस्फारण।

विद्युघात में सार्वदैहिक संवृत्तियां अधिक खतरनाक होती हैं। नर्व-कोशिकाओं की क्षति के कारण गंभीर सार्वदैहिक संवृतियां विकसित होती हैं: बेहोशी, शरीर का तापक्रम घटना, साँस रुकना, हृदय के कार्यों का दमन, लकवा आदि। पेशियों के तानात्मक संकोचन के कारण कभी-कभी आहत को बिजली के तार से छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। विद्युघात लगने के क्षण आहत की अवस्था इतनी गंभीर हो सकती है कि बाह्यतः वह लगभग मृतक की तरह ही लगता है, लेकिन त्वचा का पीलापन, पुतलियों का प्रकाश पर प्रतिक्रिया नहीं करना, साँस नहीं चलना,

नाड़ी की अनुपस्थिति—ये सब "मिथ्या मृत्यु" के लक्षण होते हैं। सिर्फ हृदय की धड़कन को बहुत ध्यान से सुनने पर आहत में जीवन के लक्षण नजर आते हैं।

हल्के विद्युघात में ये संवृत्तियां मूर्छा, गंभीर नार्विक अभिघात, चक्कर तथा सामान्य कमजोरी के रूप में व्यक्त हो सकती हैं।

बिजली गिरने पर सार्वदैहिक संवृत्तियां अधिक प्रबल होती हैं। लकवा, बधिरता तथा मूकता का विकास और साँस रुकना विशिष्ट लक्षण होते हैं।

प्राथमिक उपचार का एक प्रमुख कार्य है आहत को विद्युत-धारा की अभिक्रिया से यथाशीघ्र मुक्त करना। इसके लिये लाइन काटी जा सकती है (स्विच ऑफ कर के, फ्यूज निकाल कर, तार को तोड़ कर), बिजली के तार को आहत से दूर किया जा सकता है (सूखी रस्सी या छड़ी की सहायता से), अर्थिंग या शंटिंग किया जा सकता है (दो धारायुक्त तारों को आपस में सटा कर)। जब तक आहत धारा से अलग नहीं कर दिया जाता, उसे नंगे हाथों से छूना खतरनाक है। तारों से आहत को अलग कर उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करना चाहिये। स्थानीय क्षतियों को झुलसन की तरह संसाधित करके परिधानित कर देते हैं।

यदि क्षतियों के साथ हल्की सार्वदैहिक संवृत्तियां भी अवलोकित होती हैं (जैसे मूर्छा, अल्पकालीन बेहोशी, सर में चक्कर, सरदर्द, हृदय के क्षेत्र में पीड़ा), तो प्राथमिक उपचार के रूप में आहत के लिये विश्राम की

परिस्थितियां बनायी जाती हैं और उसे शीघ्र अस्पताल भेजने का प्रबंध किया जाता है। यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि आहत की सामान्य अवस्था चोट (विद्युघात) के घंटों बाद तक किसी भी क्षण तेजी से बिगड़ सकती है (उरोदमन, हृत्पेशी का इन्फार्क्त), द्वितीयक अभिघात की संवृत्ति उत्पन्न हो सकती है, आदि इस तरह की अवस्थाएं हल्की से हल्की सार्वदैहिक संवृत्तियों (सरदर्द, सामान्य कमजोरी) से आक्रांत आहत में भी प्रेक्षित हो सकती हैं, <u>इसीलिये विद्युघात से आहत व्यक्ति को अस्पताल में अवश्य भरती करना चाहिये।</u>

पीड़ा कम करने के लिये वेदनाहर दवाएं (अमीदोपोरीन 0.25 ग्राम, एनाल्जिन–0-25 ग्राम), प्रशांतकारी दवाएं (बेख्तेरेव का मिक्सचर*, वालेरिआन का टिंचर**) दिया जाता है। रोगी को अच्छी तरह गर्म कपड़ों में ढक कर ले जाया जाता है। इन आहतों पर निरंतर निगरानी रखनी चाहिये, क्योंकि साँस या हृदय की गति किसी भी क्षण रुक सकती है। इसीलिये रास्ते में भी

---

* Inf. herbae Adonidis veralis 6.0:180ml
Natrii bromidi 6.0
Codeini phosphatis 0.2

** Tincturae Convalariae
Tinturae valerianae aa 10.0
Tinturae Belladonae 2. 5
Mentholi 0.1

त्वरित और कारगर उपचार करने के लिये तैयार रहना चाहिये।

यदि सार्वदैहिक संवृत्तियां गंभीर हैं (साँस रुकना, "मिथ्या मृत्यु"), तो एकमात्र कारगर उपचार कृत्रिम श्वसन होता है। कभी-कभी तो इसे कई घंटों तक जारी रखना पड़ता है। यदि हृदय कार्य करता रहता है, तो कृत्रिम साँस से आहत की अवस्था जल्द ही ठीक होने लगती है, त्वचा का रंग सामान्य होने लगता है, नाड़ी में स्पंद शुरू हो जाता है, धमनी-दाब नापने लायक हो जाता है। मुँह से मुँह में फूँक कर कृत्रिम साँस देना सबसे कारगर होता है (प्रति मिनट 16-20 बार)। मुँह से मुँह में साँस देने का काम किसी नली अथवा विशेष वातनली की सहायता से अधिक सुविधाजनक होता है। सिल्वेस्टर और शेफर की विधियों से भी कृत्रिम साँस दी जा सकती है, पर वे कम कारगर होती हैं (दे. अध्याय 5)।

संभव हो, तो कृत्रिम साँस के साथ हृदोद्दीपक दवाएं भी देनी चाहिये (2-4 मिलिलीटर कार्डिआमीन की अंतर्पेशीय या अंतर्शिरीय सूई, कोफेइन के 10 प्रतिशत सांद्र घोल की 1 मिलिलीटर मात्रा अथवा एफेड्रीन के 5 प्रतिशत सांद्र घोल की 1 मिलिलीटर मात्रा)। होश आने के बाद आहत को विपुल मात्रा में पेय देने चाहिये (पानी, चाय, फलों का काढ़ा आदि), गर्म कपड़ों से ढक कर रखना चाहिये। अल्कोहलिक पेय अथवा कौफी नहीं देनी चाहिये।

अस्पताल ले जाते समय यदि आहत बेहोश है या साँस अच्छी तरह नहीं चलती है, तो कृत्रिम श्वसन रोकना नहीं चाहिये; उसे प्रणालीबद्ध रूप से कई घंटों तक अविराम जारी रखना चाहिये।

हृदय की गति रुकने पर प्राथमिक उपचार यथासंभव शीघ्र अर्थात प्रथम 5 मिनट के अंदर शुरू करना चाहिये, जबतक मस्तिष्क और मेरुमज्जा की कोशिकाएं जीवित रहती हैं। प्राथमिक उपचार के रूप में कृत्रिम श्वसन के साथ-साथ हृदय की बाह्य मालिश की जाती है (आवृत्ति: प्रति मिनट 50-70 बार)। मालिश की कारगरता का अनुमान ग्रैव धमनियों में स्पंद शुरू होने से लगाया जाता है। एक साथ कृत्रिम साँस देने और हृदय की मालिश करने में एक बार हवा फूँकने पर हृदय के क्षेत्र पर 5-6 बार हाथ से दबाया जाता है, मुख्यतः साँस निकलने के समय। ये दोनों काम तब तक जारी रखे जाते हैं, जब तक साँस और हृदय दोनों स्वतः काम न करने लगें या मृत्यु के स्पष्ट लक्षण न प्रकट हों। संभव हो, तो हृदय की मालिश के साथ हृदोद्दीपक दवाएं भी देनी चाहिये (कार्डिआमीन और अड्रेनालीन का घोल – 1-2 मिलिलीटर, कोफेईन, कोराजोला – 1-3 मिलिलीटर, आदि)

आकाशीय बिजली गिरने से आहत व्यक्ति को जमीन में कभी भी नहीं गाड़ना चाहिये! इससे अन्य प्रतिकूल परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं: साँस की गति बदतर हो जाती है (यदि वह चल रही थी), ठंड लगती है, रक्त-संचार में व्यवधान पड़ता है और, जो विशेष महत्त्वपूर्ण है, अधिक कारगर उपचार का समय निकल जाता है।

डूबना, घुटन, मिट्टी से दबना

फेफड़ों में आक्सीजन का आना पूर्णतया रुकने की स्थिति को घुटन कहते हैं। इससे अंत्य अवस्थाएं बहुत जल्द उत्पन्न होती हैं – 2-3 मिनट के दौरान। फेफड़ों में गैसविनिमय रुकने के कारण मस्तिष्क की कोशिकाओं को आक्सीजन मिलनी बंद हो जाती है, आक्सीजन की भूख (कमी) विकसित होती है और आदमी की चेतना लुप्त हो जाती है। कुछ समय बाद मस्तिष्क की मृत्यु और आक्सीजन की भूख के आक्रमण से हृदय की गति रुक जाती है, आदमी की मृत्यु हो जाती है। घुटन के निम्न कारण हो सकते हैं: श्वास-मार्गों का दबना (हाथों या रस्सी से), उनमें पानी भर जाना (डूबने से), उनका श्लेष्मा, वमन-द्रव्य, मिट्टी आदि से अवरुद्ध हो जाना, कंठ में कोई परज वस्तु फँसना या उसमें श्लथ जीभ का गिर आना (बेहोशी अथवा संज्ञाहरण की अवस्था में), गरणकारी द्रव्यों (विषों, ईथर, कार्बन मोनोक्साइड, निद्रापक दवाओं) की अभिक्रिया से श्वसन-केंद्र का लकवा, अथवा मस्तिष्क में प्रत्यक्ष चोट (विद्युघात, आकाशीय बिजली, प्रहार आदि से)। बच्चों में घुटन अक्सर पैठनजनित रोगों – रोहिणी, इन्फलुएंजा, टोंसिलशोथ – में कंठ के शोफ से भी उत्पन्न हो सकती है।

डूबते व्यक्ति को पानी से निकालने में बहुत सावधानी बरतनी चाहिये। उसके समीप पीछे से तैरते हुए पहुँचना चाहिये। उसके बाल पकड़ते हैं या काँख में हाथ घुसा कर

पकड़ते हैं और चित स्थिति में तट की ओर ले जाते हैं; ध्यान रखते हैं कि वह बचाने वाले को पकड़ न पाये। प्राथमिक उपचार उसे पानी से निकालते ही शुरू किया जाता है। उपचारकर्त्ता अपने मुड़े हुए घुटनों पर आहत का पेट रखता है, ताकि उसका सर वक्ष से नीचे रहे। किसी भी कपड़े द्वारा मुँह तथा कंठ से पानी, वमन-द्रव्य, घास आदि निकालना चाहिये (चित्र 60)। इसके
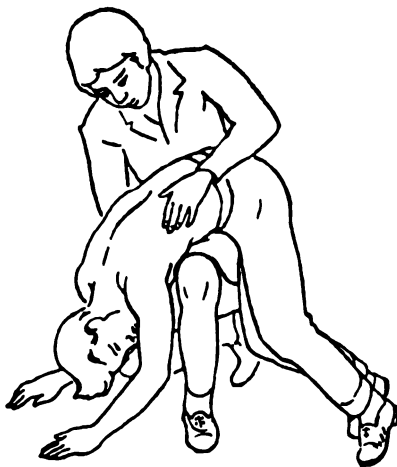
चित्र 60. श्वास-मार्ग से पानी दूर करना।

बाद वक्ष को कुछेक बार पूरे जोर से दबाते हुए साँस-नली और फेफड़ों में उनकी नन्हीं शाखाओं (ब्रोंखों) से पानी निकालने की कोशिश करनी चाहिये। ध्यातव्य है

कि श्वसनकेंद्र को लकवा 4-5 मिनट बाद ही मारा जाता है, लेकिन हृदय की गति 15 मिनट तक सुरक्षित रह सकती है। साँस के लिये वातमार्गों को पानी से मुक्त कर लेने के बाद आहत को समतल सतह पर लिटाते हैं और साँस रुकी होने पर किसी भी ज्ञात विधि से कृत्रिम श्वसन कराते हैं (प्रति मिनट 16-20 बार)। यदि हृदय की गति रुक रही हो तो साथ-साथ उसकी बाह्य मालिश करनी चाहिये।

कृत्रिम श्वसन को अधिक कारगर बनाने के लिये तंग कपड़ों को ढीला कर देना चाहिये या हटा देना चाहिये। कृत्रिम श्वसन और हृदय की मालिश कई घंटों तक जारी रखनी चाहिये, जब तक स्वाभाविक श्वसन और हृदय की पर्याप्त गति न शुरू हो जाये, या जीवलोचनी मृत्यु के स्पष्ट लक्षण प्रकट हो जायें। आहत को अस्पताल ले जाने का प्रबंध करना चाहिये और कृत्रिम श्वसन एवं हृदय की मालिश रास्ते में भी जारी रखनी चाहिये।

घुटन के लिये प्राथमिक उपचार भी इसी तरह किया जाता है। पहले वातमार्गों का संपीडन दूर किया जाता है, मुँह या कंठ में कोई बाहरी वस्तु होती है, तो उसे निकाला जाता है, कृत्रिम श्वसन कराया जाता है।

कंठ में शोफ की पहचान शोरयुक्त कठिन श्वसन से होती है, रोगी का दम घुटता है, त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियां नीली हो जाती हैं।

प्राथमिक उपचार: गरदन (गले) पर शीतल पुल्टिस रखते हैं, पैरों को गर्म पानी में डुबा कर रखते हैं। डिमे-

ड्रोल के 1 प्रतिशत सांद्र घोल की 1 मिलिलीटर मात्रा या डिप्राजीन के 2 प्रतिशत सांद्र घोल की 1 मिलिलीटर मात्रा अवचार्म सूई द्वारा दी जाती है। रोगी को यथाशीघ्र अस्पताल पहुँचाना चाहिये।

यदि कंठ पूरी तरह अवरुद्ध हो जाता है और अंत्य अवस्थाएं उत्पन्न हो जाती हैं, तो निर्विलंब त्राखेओछेदन किया जाता है। इसमें त्राखेया (साँस नली) को काट कर उसमें एक अन्य नली प्रविष्ट करायी जाती है (दे. अध्याय 5, चित्र 38)।

मिट्टी के ढेर के नीचे दबने की दुर्घटना से गंभीर क्षतियां हो सकती हैं। चूँकि इसमें वक्ष पंजर कस कर संपीडित हो जाता है, ऊपरी खोखली शिरा में रक्त का आगमन व्यवधानित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप चेहरे और गरदन (गले) की नन्हीं शिराएं फट सकती हैं। श्वसन में भयंकर गड़बड़ियां होती हैं। इसके अतिरिक्त, आहत को मिट्टी के नीचे से निकालने के बाद दीर्घकालीन संपीडन का सिंड्रोम भी विकसित हो सकता है। शरीर के दीर्घकालीन संपीडन से मृदु ऊतकों में (विशेषकर कंकालीय पेशियों में) गरल पदार्थ और मिओग्लोबिन जमा होने लगते हैं। संपीडन दूर होने के बाद वे रक्त-प्रवाह में प्रविष्ट हो जाते हैं और गंभीर गरलक्लेश तथा अम्लक्लेश उत्पन्न करते हैं, जिसके फलस्वरूप हृदय, यकृत और वृक्कों में खतरनाक गड़बड़ियां होती हैं; इनसे आदमी की मृत्यु भी हो सकती है।

प्राथमिक उपचार क्षति की गंभीरता पर निर्भर करता

है। यदि अंत्य अवस्थाएं विकासित हो जाती हैं, तो सबसे पहले श्वास-मार्ग का अवरोध दूर करना चाहिये – मुँह और कंठसे मिट्टी निकाल कर। इसके बाद संजीवन-कार्य शुरू करना चाहिये – कृत्रिम श्वसन और हृदय की बाहरी मालिश। तत्पिक मृत्यु से उद्धार के बाद ही अन्य कार्य करने चाहिये : क्षतियों का निरीक्षण, निश्चलकरण, हाथ-पैर में चोट और दीर्घकालीन संपीडन का सिंड्रोम प्रेक्षित होने पर पाश का प्रयोग, वेदनाहर दवाओं – प्रोमेडोल या अम्नोपोन – का आधान। आहत को निर्विलंब अस्पताल ले जाना चाहिये।

पानी में डूबते हुए या बोझ से संपीडित आदमी को निकालने के बाद यह ध्यान देना आवश्यक है कि उसे थोड़ी देर के लिये भी ठंड न लगे। हाथ-पैर को सूखे हाथ से रगड़ कर अथवा कोई क्षोभक प्रसाधन (कैंफर-स्पीरिट, विनेगार, वोद्का या अमोनियम हाइड्रोक्साइड) मल कर गरमाहट देते हैं। गर्म पानी की थैलियों या बोतलों से शरीर नहीं गर्म करना चाहिये, क्योंकि अंत्य अवस्थाओं में इससे अवांछित परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे रक्त का पुनर्वितरण, दग्ध आदि।

कार्बन मोनोक्साइड से आगरण

कार्बन मोनोक्साइड से आगरण निम्न परिस्थितियों में हो सकता है : रासायनिक उद्योगों में, जहां विशेष कार्बनिक यौगिकों (एसेटोन, मेथिल अल्कोहल, फेनोल) का

संश्लेषण होता है; गैरेजों में, जहां संवातन की अच्छी सुविधा नहीं होती; नया-नया रोगन किये गये बंद कमरों में। यह दुर्घटना घरों में भी रात को चूल्हा जला छोड़ देने से घट सकती है।

इसके आरंभिक लक्षण निम्न हैं: सरदर्द, सर में भारीपन, मतली, सर में चक्कर, कानों में शोर, तेज धड़कन। कुछ समय बाद पेशियों में कमजोरी और वमन होता है। विषालु परिवेश में और अधिक समय रहने से कमजोरी बढ़ती जाती है; तंद्रा (निद्रालुता), चेतना में अंधकार छाना, हँफनी आदि लक्षण विकसित होते हैं। त्वचा पीली (विवर्ण) हो जाती है और कभीकभी शरीर पर लाल धब्बे प्रकट होते हैं। कार्बन मोनोक्साइड में और अधिक देर तक रहने पर रोगी की साँस सतही होने लगती है, वितान (विलक्षण तान; पेशियों में झटकों के साथ रह-रह कर संकोचन) शुरू हो जाता है, फिर मस्तिष्क में श्वसन-केंद्र के लकवे से मृत्यु हो जाती है।

<u>प्राथमिक उपचार</u> में आहत को विषालु वातावरण वाले स्थल से यथाशीघ्र दूर ले जाना चाहिये। यदि मौसम गर्म है तो उसे खुली हवा में ले जाना उत्तम होता है। क्षीण, सतही साँस होने पर या उसके रुकने पर कृत्रिम श्वसन कराना चाहिये—तब तक, जब तक साँस स्वतः पर्याप्त रूप से न चलने लगे या जीवलोचनी मृत्यु के स्पष्ट लक्षण न उत्पन्न हो जायें। आगरण के प्रभाव को दूर करने में निम्न युक्तियां सहायक होती हैं: शरीर को रगड़-रगड़ कर मालिश करना, पैरों पर गर्म पानी की थैलियां रखना,

अत्यल्प समय के लिये अमोनियम हाइड्रोक्साइड संुघाना। गंभीर रूप से आक्रांत रोगी को शीघ्र अस्पताल ले जाया जाता है, अन्यथा बाद में फेफड़ों और नर्वतंत्र की ओर से जटिल क्लिष्टताएं उत्पन्न हो सकती हैं।

खाद्य पदार्थों से आगरण

जंतु-मूल के निकृष्ट खाद्य पदार्थों के उपयोग से जब शरीर विषाक्रांत होता है, तो इसे खाद्य-गरल का पैठन कहते हैं; ऐसे खाद्य पदार्थ अक्सर निम्न होते हैं: मांस-मछली तथा इनके उत्पाद, दूध और इसके उत्पाद (जैसे – क्रीम, आइसक्रीम आदि)। रोग खाद्य पदार्थ में उपस्थित जीवाणुओं और उनकी जीवनक्रिया के उत्पादों – तोक्सिनों – से उत्पन्न होता है। मांस और मछली में ये जीवाणु तभी से उपस्थित हो सकते हैं, जब जंतु जीवित रहा हो, लेकिन अधिकांशतः उनका पैठन खाद्य पदार्थ तैयार करने की प्रक्रिया में और उन्हें ठीक से सुरक्षित नहीं रखने से होता है। पीसा हुआ मांस (कीमा, आदि) विशेष सुगमता से पैठित हो जाता है। बीमारी के प्रारंभिक लक्षण विषाक्त खाद्य पदार्थ ग्रहण करने के 2-4 घंटे बाद प्रकट होने लगते हैं। कुछ स्थितियों में रोग काफी बड़े अंतराल – 20-26 घंटे – बाद भी शुरू हो सकता है।

रोग अक्सर निम्न लक्षणों के साथ आकस्मिक रूप से शुरू होता है: सामान्य अस्वस्थता, मतली, कई बार वमन,

उदर में रह-रह कर दर्द, दुहरा-दुहरा कर पतला मलोत्सर्जन, जिसमें कभी-कभी श्लेष्मा और रक्तिल रेशों का मिश्रण पाया जाता है। आगरण बहुत जल्द तीव्र होने लगता है, जो निम्न लक्षणों में व्यक्त होता है: धमनी दाब में गिरावट, नाड़ी-स्पंद का तीव्र और क्षीण होना, त्वचा की विवर्णता, प्यास, तेज बुखार (38-40°C)। यदि बीमार को बिना उपचार के छोड़ दिया जाये, तो हृत्कुंभिक अपूर्णता भयंकर तीव्रता से विकसित होने लगती है. पेशियों में रह-रह कर संकोचन होने लगता है और इसके बाद निपात और मृत्यु हो जाती है।

प्राथमिक उपचार के रूप में जठर का पानी से निर्विलंब प्रक्षालण (धोवन) करना चाहिये; इसके लिये जठर में विशेष नली प्रविष्ट करायी जाती है अथवा 1.5-2 लीटर गुनगुना पानी पिलाने के बाद उंगली से जीभ की जड़ को क्षोभित कर के वमन कराया जाता है। प्रक्षालण तब तक जारी रखा जाता है, जबतक जठर से "साफ पानी" न निकलने लगे। यदि वमन खुद हो रहा हो, तो भी विपुल पेय अवश्य देना चाहिये। रोगी की आंत में संदूषित उत्पादों को शीघ्र दूर करने के लिये उसे सक्रियकृत कार्बन और विरेचक प्रसाधन (आधा गिलास पानी में 25 ग्राम लावणिक विरेचक, अथवा 30 मिलिलीटर अंडी का तेल) दिया जाता है। एक-दो दिन तक किसी भी आहार से परहेज कराना चाहिये, पेय विपुल मात्रा में देना चाहिये। तीव्रता-काल में (जठरप्रक्षालण के बाद) गर्म चाय या कौफी सुसंकेतित होती है। रोगी के हाथ-

-पैर को गर्म पानी की थैलियों या बोतलों से गर्म रखना चाहिये। मुखमार्ग से सुल्फोनामीद (0.5 ग्राम सुल्फाग्वानी-दीन अथवा फ्थालिलसुल्फाथिआजोल नित्य 4-6 बार) या प्रतिजीवक (0.5 ग्राम लेवोमीसेटिन नित्य 4-6 बार अथवा क्लोरतेत्रासिक्लीन हाइड्रोक्लोराइड 2-3 दिनों के दौरान 4 बार; प्रति खुराक 300 000IU) ग्रहण करने से भी अच्छा लाभ होता है। रोगी के मल और वमन को बेड-पैन में ही कैल्सियम क्लोराइड से निष्पैठित कर देना चाहिये। रोगी के आगे उपचार के लिये ऐंबुलेंस बुलाते हैं या उसे अस्पताल पहुँचाते हैं।

विषालु खाद्य पदार्थ ग्रहण करने से पीड़ित व्यक्ति पर एक या दो दिन निगरानी रखी जाती है; यदि पुनः वैसे ही लक्षण उत्पन्न होते हैं, तो उसे अस्पताल में भरती करते हैं।

छत्रक से आगरण या तो विषैले प्रकार के छत्रक खाने से होता है (जैसे क्रिम्सन या ग्रे फ्लाइ ऐगारिक, फाल्स हॉनी फंगस, डेथ कैप) या गलत ढंग से सुरक्षित छत्रकों में उपस्थित गरल द्रव्य उन्हें उबालने से नष्ट नहीं होते।

आगरण के प्रथम लक्षण 1.5 से 3 घंटे बाद प्रकट होने लगते हैं। लाल-स्राव, मतली, बार-बार यंत्रणादायक वमन, पेट में शूल, मूर्छा और साथ ही कमजोरी में वृद्धि आदि लक्षण प्रेक्षित होते हैं। अतिसार (अक्सर रक्त के साथ) होता है, नर्वतंत्र की आक्रांति के भी लक्षण शीघ्र उत्पन्न होते हैं, जैसे दृष्टि की गड़बड़ियां, प्रलाप, विभ्रम, प्रेरक-तंत्र का उद्दीपन (छटपटाहट), वितान।

जब आगरण गंभीर होता है (विशेषकर डेथ कप से) उद्दीपन अपेक्षाकृत तेजी से विकसित होता है (6-10 घंटे के अंदर)। इसके बाद निद्रालुता और रागहीनता का दौर शुरू होता है। इस अवधि में हृदय की कार्य-शीलता क्षीण होती है, धमनी-दाब घटता है, शरीर का तापक्रम काफी नीचे हो जाता है, पीलिया शुरू हो जाता है। रोगी को बिना उपचार के छोड़ देने पर निपात होता है और उसकी तुरंत मृत्यु हो जाती है।

प्राथमिक उपचार. छत्रक से आगरण होने पर रोगी की जीवन-रक्षा में प्राथमिक उपचार की भूमिका निर्णायक होती है। जठर का तुरंत प्रक्षालण करना चाहिये; इसके लिये पोटाशियम परमैंगनेट का लाल स्याही जैसे घोल का उपयोग बेहतर होता है, जठर में नली प्रविष्ट करायी जाती है या कृत्रिम वमन कराया जाता है। घोल में सक्रियकृत कार्बन (कार्बोलेन) भी मिलाया जा सकता है। इसके बाद अंडी का तेल अथवा लावणिक विरेचक दिया जाता है, कई बार एनेमा दिया जाता है। रोगी को गर्म कपड़ों से ढक कर रखना चाहिये, गर्म पानी की थैलियों का उपयोग करना चाहिये, गर्म मीठी चाय या कौफी देनी चाहिये। कुशल आयुरी सहायता के लिये उसे यथाशीघ्र अस्पताल ले जाना चाहिये।

बोटूलिज्म एक तीव्र पैठनजनित रोग है, जिसमें स्पोर से उत्पन्न होने वाले निर्वातजीवी बासिलों का गरल (तोक्सिन) केंद्रिय नर्वतंत्र को आक्रांत करता है। बोटूलिज्म भी खाद्य-आगरण है, जिसमें रोगी जीवाणुओं से पैठित

खाद्यपदार्थ पचाने की प्रक्रिया में विषाक्रांत हो जाता है।

पर्याप्त रूप से तप्त किये बगैर बनाये गये खाद्य पदार्थ में बोटूलिज्म के पैठन की संभावना अधिक होती है। ऐसे पदार्थ निम्न हैं: सुखाया हुआ, नमक डाल कर अचार डाला हुआ, धुएं में सिझाया हुआ मांस (या मछली), पुराना टिनबंद मांस, मछली या सब्जी, आदि। संदूषित खाद्य पदार्थ ग्रहण करने और रोग शुरू होने के बीच अक्सर 10-12 घंटे का समय बीत जाता है; कुछ केसों में कई दिन भी लग सकते हैं।

रोग के प्रारंभिक लक्षण हैं—सरदर्द, सामान्य अस्वस्थता और हल्का मूर्छापन। कोष्ठबद्धता (कब्ज) होती है, पेट फूल जाता है, पर शरीर का तापक्रम सामान्य रहता है। अवस्था धीरे-धीरे खराब होती है; रोगारंभ के एक दिन बाद केंद्रीय नर्वतंत्र की आक्रांति के गंभीर लक्षण विकसित होने लगते हैं: आँखों से एक का दो दिखाई देना, भेंगापन, पलकों का नीचे झूल आना, मृदु तालू में लकवा (जिससे स्वर अस्पष्ट हो जाता है, घोंटने की क्रिया में गड़बड़ होती है)। पेट का फूलना बढ़ता है, मूत्र विसर्जन रुक जाता है। रोग तेजी से बढ़ता है और 5 दिन में श्वसन-केंद्र के लकवा और हृदय की दुर्बलता से मृत्यु हो जाती है।

प्राथमिक उपचार खाद्यपदार्थों से आगरण के अन्य प्रकारों की ही तरह है: सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट या पोटाशियम परमैंगनेट के हल्के घोल से जठर का प्रक्षालण (घोल में अधिचोषक अर्थात सक्रियकृत कार्बन भी मिलाया जा

सकता है), विरेचक दवाएं, एनेमा से प्रक्षालण, विपुल मात्रा में गर्म पेय (चाय, दूध)।

ज्ञातव्य है कि उपचार की मुख्य रीति एंटीबोटूलीनुम के सीरम का ग्राधान है, ग्रतः बोटूलिज्म से ग्रस्त रोगी को ग्रस्पताल में निर्विलंब भरती करना चाहिये।

विषैले रसायनों से ग्राक्रांति

कृषि में जंगली पौधों, वनस्पति-रोगों ग्रौर कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करने में विषैले रसायनों का विस्तृत उपयोग होता है।

खेती ग्रौर मवेशी-पालन में विषैले रसायनों के उपयोग के मानक नियम सोवियत संघ की एक विशेष राज्य समिति द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। इन नियमों का सही-सही पालन करने पर जनसंख्या की विषाक्रांति की संभावना नहीं रह जाती। नियमों के उल्लंघन से ही लोग विषाक्रांत हो सकते हैं।

ग्रधिकांशतः फोस्फर के कार्बनिक यौगिकों (जैसे थायो-फोम, त्रिख्लोरफोन या डिप्टेरेक्स) से लोग विषाक्रांत होते हैं; ये यौगिक साँस के साथ या खाद्य पदार्थों के साथ शरीर में पहुँच सकते हैं। श्लेष्मल झिल्लियों पर इन यौगिकों के पड़ने से झुलसन भी हो सकती है।

रोग का ग्रव्यक्त-काल 15-60 मिनट लंबा हो सकता है। इसके बाद नर्वतंत्र की ग्राक्रांति होने के लक्षण प्रकट

होते हैं: अत्यधिक लाला-स्राव, खखार, पसीना। साँस तेज और शोरयुक्त हो जाती है और दूर से सुनाई देती है। रोगी बेचैन और उद्दीप्त हो जाता है। जल्द ही पैरों में ऐंठन महसूस होती है, आँत में क्रमबद्ध संकोचन (अंत-र्द्रव्य निकालने के लिये) तेज हो जाता है। कुछ समय बाद पेशियों में और साथ ही श्वसन-पेशियों में लकवा हो जाता है। साँस रुकने से घुटन (पूरे शरीर में आक्सीजन की भूख) होती है और मृत्यु हो जाती है।

विषैले रसायनों से आक्रांत व्यक्ति को अस्पताल में निर्विलंब भरती कराना ही उसका मुख्य प्राथमिक उपचार है। संभव हो, तो रोगी को एट्रोपीन के 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल की 6-8 बूंद या बेलाडोना की 1-2 टिकिया देनी चाहिये। साँस रुकने पर कृत्रिम श्वसन कराना चाहिये। यदि जठरांत्र-मार्ग में विष पहुँचने से रोगी आगरित हुआ है, तो सक्रियकृत कार्बन के जलीय निलंबन से जठर-प्रक्षालण करना चाहिये। लावणिक विरेचक भी देने चाहिये।

त्वचा और श्लेष्मल झिल्ली से विषैले रसायन को पानी की धार से दूर करना चाहिये।

सांद्र अम्लों एवं क्षारों से आगरण

सांद्र अम्लों एवं क्षारों से आगरण एक गंभीर अवस्था है, जो पहले मुँह, गले, ग्रासनली, जठर और अक्सर

कंठ की विस्तृत झुलसन के कारण उग्र हो उठती है। बाद में अपचोषित विष जीवनावश्यक अंगों (जैसे यकृत, वृक्कों, फेफड़ों या हृदय) को आक्रांत करता है। सांद्र अम्ल तथा क्षार ऊतकों को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। श्लेष्मल झिल्लियों में प्रतिरोध-शक्ति चर्म से कम होती है, अतः वे नष्ट हो जाती हैं और विमृति तेजी से निम्न-स्थ ऊतकों को ग्रस्त करती जाती है।

मुंह और होठों की श्लेष्मल झिल्लियों पर दग्ध (झुलसन) और खट्टियां पड़ जाती हैं। गंधकाम्ल से झुलसन होने पर खट्टी काली होती है, नाइट्रिक अम्ल से भूराभ पीली, नमकाम्ल से पीताभ हरी और एसेटिक अम्ल से भूराभ श्वेत होती है।

क्षार चर्म को अधिक सरलता से बेधते हैं और अधिक गहराई पर स्थित परतों को भी आक्रांत करते हैं। झुलसी सतह श्लथ, अपघटित और श्वेताभ होती है।

अम्ल या क्षार निगलते ही रोगी को मुँह में, उरोस्थि के पीछे तथा अधिजठरीय क्षेत्र (पेट के ऊपरी मध्य क्षेत्र) में तीव्र पीड़ा होती है। लिटाने पर रोगी असह्य पीड़ा में करवटें बदलता रहता है। लगभग हमेशा यंत्रणादायक वमन होता है, जिसमें अक्सर रक्त का अधिमिश्रण होता है। पीड़ाजनित अभिघात तेजी से विकसित होता है। कंठ सूज जाता है और घुटन बढ़ती है। अधिक मात्रा में अम्ल या क्षार ग्रहण करने पर हृदय की दुर्बलता और निपात तेजी से विकसित होता है।

अमोनियम हाइड्रोक्साइड से आगरण का प्रवाह गंभीर

होता है। पीड़ा के सिंद्रोम के साथ घुटन भी होती है, क्योंकि श्वास-मार्ग हमेशा ही आक्रांत होता है।

प्राथमिक उपचार करने वाले को तुरंत ज्ञात करना चाहिये कि किस रसायन से आगरण हो रहा है, क्योंकि चिकित्सा इसी पर निर्भर करती है।

सांद्र अम्ल से आगरण की स्थिति में यदि ग्रासनली अथवा जठर में छेद होने के लक्षण अनुपस्थित हैं, तो जठर में मोटी नली प्रविष्ट करा कर उसका प्रक्षलण करना चाहिये। इसके लिये 6-10 लीटर गुनगुने पानी में मैग्नेशियन आक्साइड (20 ग्राम प्रति लीटर पानी) अथवा चूना-पानी का उपयोग करते हैं। जठर के प्रक्षालण में सोडियम कार्बोनेट का उपयोग प्रतिसंकेतित होता है। "लघु प्रक्षालण", अर्थात् 4-5 गिलास पानी पिला कर वमन प्रेरित करने से रोगी की अवस्था नहीं सुधरती, उल्टा कभी-कभी विष के अपचोषण को प्रोत्साहन मिलता है।

यदि पेट में प्रविष्ट कराने के लिये विशेष नली उपलब्ध न हो, तो रोगी को दूध, तेल, अंडे की सफेदी, श्लेष्मल काढ़ा आदि देना चाहिये। कार्बोलिक अम्ल (फेनोल, लीजोल) से आगरण होने पर दूध, तेल या वसा प्रतिषिद्ध होती है। इस स्थिति में पानी या चूना पानी के साथ मैग्नेशियम आक्साइड मिला कर देना चाहिये, जैसाकि अन्य अम्लों से आगरण में किया जाता है। पीड़ा कम करने के लिये अधिजठरीय क्षेत्र पर शीतल पुल्टिस या बर्फ की थैली रखनी चाहिये।

सांद्र क्षारों से आगरण होने पर जठर का प्रक्षालण तुरंत (चार घंटों के अंदर) 6-10 लीटर गुनगुने पानी में या साइट्रिक अथवा एसेटिक अम्ल के 2-3 प्रतिशत सांद्र घोल से करते हैं। यदि पेट में प्रविष्ट कराने के लिये नली उपलब्ध न हो और रोगी की गंभीर अवस्था (कंठ की सूजन) से जठर का प्रक्षालण संभव न हो तो श्लेष्मल (लसलसे घोल), साइट्रिक अथवा एसेटिक अम्ल के 2-3 प्रतिशत सांद्र घोल (हर 5 मिनट पर एक बड़ा चम्मच) या नींबू का रस दिया जाता है। सोडियम हाइड्रोक्लोराइड के घोल से कुल्ला कराना या उसका आधान कराना प्रतिसंकेतित है।

प्राथमिक उपचार. रोगी को तुरंत अस्पताल में भरती कराना चाहिये, जहां उसकी कुशल चिकित्सा की जा सके।

यह ध्यान रखना चाहिये कि ग्रासनली अथवा जठर में छेद की आशंका होने पर कुछ पिलाना या जठर का प्रक्षालण करना प्रतिषिद्ध है (छेद होने पर जठर में तीव्र पीड़ा तथा उरोस्थि के पीछे असह्य पीड़ा होती है)।

अलकोहल तथा औषधियों से आगरण

औषधियों से आगरण अधिकांशतः बच्चों को होता है, विशेषकर उन परिवारों में, जिनके यहां दवाएं बच्चों की पहुंच के अंदर रखी जाती हैं। बड़ों में औषधियों से आगरण के निम्न कारण हो सकते हैं: खुराक अति कर देना, आत्महत्या की कोशिश, औषधि का व्यसन।

पीड़ाहर तथा ज्वरशामक दवाओं की अतिखुराक. इनमें निम्न दवाओं का नाम आता है: फेनिलबूटाजोन, एनाल्जिन, आस्पिरिन, त्रिमेपेरीडिन हाइड्रोक्लोराइड। इनसे आगरण में केंद्रीय नर्वतंत्र व्यवधानित हो जाता है, केशिकाओं (रक्त-वाही केश-नलियों) में अपूर्ण लकवा होता है और शरीर तेजी से ताप खोने लगता है। इसके फलस्वरूप विपुल स्वेदन, कमजोरी और मूर्छा विकसित होती है, जो गहरी नींद में (और यहां तक कि बेहोशी में भी) परिणत हो सकती है, कभी-कभी साँस में भी गड़बड़ी होने लगती है।

आक्रांत व्यक्ति को तुरंत अस्पताल में भरती करना चाहिये। यदि साँस या हृदय की गति में गड़बड़ी हो तो कृत्रिम श्वसन कराना चाहिये।

आगरण अक्सर निद्रापक दवाओं की अतिखुराक से भी होता है, (जैसे एमीटल सोडियम, ग्लूटेथीमीड, या पेंटो-बार्बीटल सोडियम की)। केंद्रीय नर्वतंत्र बहुत दमित हो जाता है, नींद बेहोशी में परिणत हो जाती है, जिसके बाद श्वसन-तंत्र को लकवा हो जाता है। रोगी विवर्ण हो जाता है, साँस सतही और अनियमित हो जाती है, अक्सर उससे खड़खड़ाहट की आवाज आती है।

चेतना सुरक्षित रहने पर जठर का प्रक्षालण करना चाहिये, सक्रिय वमन कराना चाहिये। साँस की गड़बड़ी होने पर कृत्रिम श्वसन कराना चाहिये।

नशीली दवाओं (मोर्फीन, अफीम, कोडेइन जैसे नर्को-टिकों) से आगरण होने पर सर में चक्कर, मतली, वमन,

कमजोरी और निद्रालुता होती है। इनकी खुराक बहुत अधिक कर देने पर गहरी नींद और बेहोशी की अवस्था विकसित होती है, जिसका अंत श्वसन-केंद्र तथा कुंभी-प्रेरक तंत्र के लकवे से होता है। रोगी विवर्ण हो जाता है, होठ नीले पड़ जाते हैं, साँस सही नहीं होती, पुतलियां बहुत संकुचित हो जाती हैं।

प्राथमिक उपचार के रूप में रोगी को निर्विलंब अस्पताल पहुँचाते हैं। साँस और रक्त संचार रुकने पर संजीवन के उपाय प्रयुक्त करते हैं।

अल्कोहल अत्यधिक (मरणकारी) मात्रा में ग्रहण करने पर घातक आमरण संभव है। एथिल अल्कोहल की घातक मात्रा 8 ग्राम प्रति किलोग्राम शरीर-भार है। अल्कोहल हृदय, कुंभियों, जठरांत्रमार्ग, यकृत, वृक्कों और विशेषकर केंद्रीय नर्वतंत्र पर अभिक्रिया करता है। बहुत अधिक नशा होने पर आदमी सो जाता है, फिर नींद बेहोशी में संक्रमण कर जाती है। अक्सर वमन और अस्वैच्छिक मूत्र-विमर्जन प्रेक्षित होता है। साँस में बहुत गड़बड़ी हो जाती है, वह विरल और लयहीन हो जाती है। श्वसन-केंद्र के लकवा होने के बाद मृत्यु हो जाती है।

सबसे पहले ताजी हवा आने का प्रबंध करना चाहिये (खिड़की खोलना, रोगी को खुली हवा में ले जाना), लघु प्रक्षालण से वमन कराना चाहिये, होश रहने पर गर्म कड़ी कौफी पिलानी चाहिये। साँस रुकने पर संजीवन-कार्य करना चाहिये।

ऊष्माघात और सौरघात

ऊष्माघात शरीर पर परिवेशी उच्च ताप की दीर्घकालीन अभिक्रिया के फलस्वरूप उसमें ताप-नियमन की गड़बड़ियों के कारण तीव्रता से विकासरत रोगी अवस्था को कहते हैं। शरीर के अतितापन का कारण शरीर की सतह से तापहानि में रुकावट (जैसे हवा का उच्च तापक्रम, उसकी आर्द्रता, और स्थिरता) अथवा शरीर में अधिक तापोत्पादन हो सकता है (जैसे शारीरिक श्रम में, ताप-नियमन की गड़बड़ी में)।

सौरघात शरीर पर सौर विकिरण की प्रत्यक्ष अभिक्रिया से उत्पन्न ऊष्माघात को कहते हैं।

इन रोगों के लक्षण मिलतेजुलते होते हैं। शुरू में रोगी थकावट और सरदर्द अनुभव करता है। सर में चक्कर, कमजोरी, पैरों व पीठ में दर्द और कभी-कभी वमन होता है: बाद में कानों में शोर तथा आँखों के सामने अंधेरा महसूस होता है, हँफनी और हृदय की धड़कन में तेजी हो जाती है। यदि इस अवधि में तदनुरूप उपाय नहीं किये गये, तो रोग आगे बढ़ता है। उपचार और परिस्थिति में आवश्यक परिवर्तन न होने पर अवस्था जल्द ही गंभीर हो उठती है, जिसका कारण है—केंद्रीय नर्वतंत्र की आक्रांति। चेहरा नीला पड़ने लगता है, हँफनी बहुत तेज हो जाती है (एक मिनट में सांस की 70 गति), नाड़ी की गति तेज हो जाती है, पर स्पंदों की शक्ति क्षीण होती है। रोगी की चेतना लुप्त हो जाती है; पेशियों में रह-रह

कर संकोचन, प्रलाप और विभ्रम होता है, बुखार 41°C तक पहुँच जाता है। रोगी की अवस्था तेजी से बदतर होती जाती है, साँस अनियमित होने लगती है, नाड़ी निर्धारित नहीं हो पाती और श्वसन केंद्र के लकवा तथा हृदय की गति रुकने से कुछ घंटों में रोगी की मृत्यु हो जा सकती है।

प्राथमिक उपचार. रोगी को निर्विलंब छाया में शीतल स्थान पर लाना चाहिये, कपड़े उतार कर लिटा देना चाहिये, सर कुछ ऊपर रखना चाहिये। विश्राम की परिस्थितियां प्रदान की जाती हैं, सर और हृदय के क्षेत्र को शीतल किया जाता है (ठंडा पानी ढाल कर या ठंडे पानी की पुल्टिस लगा कर)। बहुत जल्द एकबारगी से ठंडा नहीं करना चाहिये। रोगी को विपुल मात्रा में शीतल पेय देना चाहिये, श्वसन को उद्दीपित करने के लिये अमोनियम हाइड्रोक्साइड सुंघाना चाहिये; मुखमार्ग से जेलेनिन की बूंदें, कनवालारिया का टिंचर आदि भी लाभप्रद होते हैं। साँस व्यवधानित होने पर किसी भी रीति से कृत्रिम श्वसन कराना चाहिये।

अस्पताल ले जाते वक्त रोगी को लिटा कर रखना चाहिये।

अलर्क जंतुओं और विषैले सर्पों, कीड़े-मकोड़ों का काटना

अलर्क जंतुओं का काटना. अलर्कता एक बहुत खतरनाक वीरुसजनित रोग है, जिसमें वीरुस मस्तिष्क एवं मेरुमज्जा

की कोशिकाओं को आक्रांत करते हैं। आदमी के शरीर में इन वीरुसों का पैठन अलर्क (पागल) जंतुओं के काटने से होता है। वीरुस कुत्ते और कभी-कभी बिल्ली के लाला-स्राव के साथ निकल कर चर्म या श्लेष्मल झिल्ली के जखम में प्रविष्ट हो जाते हैं। इनका अंतर्शयन-काल 12 से 60 दिन लंबा होता है; रोग 3-5 दिन तक रहता है, फिर अक्सर मृत्यु ही हो जाती है। काटते वक्त संभव है कि जंतु में रोग के बाह्य लक्षण न हों, इसलिये जंतुओं के काटने के अधिकांश केसों को खतरनाक ही मानना चाहिये (अलर्कग्रस्त होने की दृष्टि से)।

जंतु के काटते ही आदमी को तुरंत पास्टर-केंद्र लाना चाहिये, जहां उसे उसी दिन से एंटी-अलर्की टीका का दौर उपलब्ध कराया जा सके।

प्राथमिक उपचार में रक्तस्राव को तुरंत रोकने का प्रयास नहीं करना चाहिये, क्योंकि रक्त के साथ जखम से जानवर की लाला भी बह कर निकल आती है। काटने से बने घाव के गिर्द त्वचा के विस्तृत क्षेत्र को किसी निष्पैठक घोल से संसाधित करना चाहिये (जैसे टिंचर आयडीन, पोटाशियम परमैंगनेट के घोल या एथिल अल्कोहल से); इसके बाद निस्सृपक पट्टी डाल कर घायल को अस्पताल ले जाना चाहिये, जहां घाव का प्राथमिक करोर्जिक संसाधन और धनुर्वात का निरोध किया जा सके।

विषैले सर्प (गेहुँअन, रैटल-सर्प) का काटना (दंश) जीवन के लिये अत्यंत घातक होता है। दंश के तुरंत बाद जलन सी पीड़ा, लाली और अवसृति (त्वचा के नीचे

ही नीचे रक्तस्राव से नीलापन) होती है। सूजन तेजी से बढ़ती है और जल्द ही लसवाही कुंभियों के सहारे-सहारे लाल धारियां उंत्पन्न होती हैं (लसकुंभीशोथ)। लगभग इसके साथ-साथ ही आगरण (विषाक्रांति) के लक्षण विकसित होने लगते हैं: मुँह में सूखापन, प्यास, वमन, अतिसार, निद्रालुता, वितान, वाग्भंग, घोंटने मे कठिनाई और कभी-कभी गतिप्रेरक-तंत्र का लकवा (गेहुँअन के काटने पर)।

प्राथमिक उपचार. दंश के तुरंत बाद दो मिनट के अंदर ही दंश-स्थल से काफी ऊपर कोई रक्तरोधक पाश या ऐंठनयुक्त बंधन कस देते हैं और दंश-स्थल पर इतना गहरा चीरा लगाते हैं कि खून बहने लगे (इसके पहले चाकू को आग में पर्याप्त गरम करके निष्पैठित कर लिया जाता है) और जखम पर रक्त-चोषक कप लगा देते हैं। यदि विशेष आयुरी कप न हो, तो किसी भी नन्ही कटोरी, कप, गिलास आदि का प्रयोग हो सकता है। कप लगाने की रीति निम्न है: लकड़ी के सिरे पर रूई या कपड़ा लपेट कर उसे स्पीरिट में तर कर लेते हैं, फिर उसमें आग लगा कर ज्वाला कप के अंदर 1-2 सेकेंड के लिये प्रविष्ट कराते हैं, फिर उसे फुर्ती से निकाल कर कप से दंश-स्थल को ढक देते हैं। स्तन से दूध चूसने वाले उपकरण का भी उपयोग किया जा सकता है। विष चुस कर निकल आने के बाद जखम को पोटाशियम परमैंगनेट अथवा सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट के घोल से संसाधित करते हैं और उसपर निस्सृपक पट्टी लगाते हैं।

यदि दंश-क्षेत्र में शोफ (सूजन) विकसित हो जाता है या उसमें प्रतिसर्प सीरम ग्राधानित कर दिया जाता है, तो विषचोषण का काम ग्रौर रक्तरोधक पाश बांधने का काम निरर्थक हो जाता है। इस स्थिति में जखम पर निस्सृ-पक पट्टी बांधना ग्रौर ग्रंग को निश्चल कर लेना चाहिये। ग्राहत को विश्राम ग्रौर निश्चलता की स्थिति में रखना चाहिये, दंशित ग्रंग को बर्फ की थैलियों से ठंडा करते रहना चाहिये (ग्रन्य रीतियों से भी ठंडा किया जा सकता है)। दर्द दूर करने के लिये कोई वेदनाहर दवा (ऐस्पीरिन, एनाल्जिन, ग्रमीदोपीरिन) दी जाती है। रोगी को विपुल मात्रा में पेय (दूध, पानी, चाय) देते हैं। ग्रल्को-हल देना बिल्कुल प्रतिसंकेतित है। समय ग्रधिक बीतने पर कंठ में सूजन संभव है, जिससे साँस में गड़बड़ी शुरू हो सकती है, यहां तक कि रुक भी सकती है (साथ में हृदय की गति भी रुक सकती है)। इन स्थितियों में कृत्रिम श्वसन ग्रौर हृदय की बाह्य मालिश सुसंकेतित हैं। कंठ का सूजन ग्रधिक होने पर रोगी की जीवन-रक्षा का एकमात्र उपाय निर्विलंब त्राखेयोच्छेदन हो सकता है।

दुर्घटनाग्रस्त को डाक्टरी सहायता के लिये तुरंत ग्रस्प-ताल ले जाना चाहिये। परिवहन स्ट्रेचर पर सिर्फ लेटी स्थिति में होना चाहिये, क्योंकि रोगी की किसी भी प्रकार की ग्रपनी गति से विष का ग्रपचोषण तीव्र होने लगता है।

सर्प-दंश से ग्रागरित व्यक्ति की सबसे कारगर चिकि-त्सा रीति है—यथासंभव शीघ्र एंटीवेनम (एंटीकोब्रा)

बहुसंयोजी सीरम का आधान कराना। सीरम 2 मिलिलीटर के ऐंपुलों में सुरक्षित रखा जाता है और प्रतित्राणिक (अर्जित अतिसंवेदिता से उत्पन्न) अभिघात रोकने के लिये बेजरेद्का की रीति से आधान कराया जाता है। सीरम आंशिक खुराकों में आधानित किया जाता है: पहले 0.5 मिलिलीटर की सूई दी जाती है। यदि कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, तो बाकी की आधी मात्रा 30 मिनट बाद दी जाती है: बची हुई मात्रा अगले 30 मिनट बाद दी जाती है।

विषैले कीड़े-मकोड़ों का दंश. मधुमक्खियों और ततैयों का दंश बहुत सामान्य घटना है। दंश-स्थल पर जलन जैसी पीड़ा होती है और वह क्षेत्र जल्द ही सूजने लगता है। एक मधुमक्खी का दंश अक्सर खतरनाक नहीं होता, लेकिन बहुसंख्य दंश घातक हो सकते हैं।

सबसे पहले चर्म में से डंक को निकाल कर घाव को प्रतिसृपक घोल से संसाधित करना चाहिये। हाइड्रोकोर्टीजोन मरहम दर्द और सूजन को कम करता है। बहुसंख्य दंश की स्थिति में आहत को प्राथमिक उपचार के बाद अस्पताल ले जाना चाहिये।

बिच्छे का दंश बहुत पीड़ाजनक होता है; दंश-स्थल पर शीघ्र सूजन और लाली बढ़ने लगती है।

प्राथमिक उपचार. दंश-स्थल को किसी प्रतिसृपक घोल से संसाधित कर के निसृपक पट्टी लगानी चाहिये, शीतल पुल्टिस का प्रयोग करना चाहिये। दर्द कम करने के लिये वेदनाहर दवा (अमीदोपीरीन या एनाल्जिन) दी जाती है। बहुत तेज पीड़ा होने पर नर्कोटिक दवा वांछित होती है।

मकड़े के विष से बहुत ही अधिक दर्द और पेशियों का (विशेष कर पेट की पेशियों का) अपतान होने लगता है।

प्राथमिक उपचार. घाव को पोटाशियम परमैंगनेट के घोल से चुपड़ कर वेदनाहर दवा और कैल्सियम ग्लूकोनेट आधानित करते हैं। यदि प्रतिक्रिया तीव्र हो, तो आहत को विशेष एंटीसीरम का टीका देने के लिये उसे अस्पताल ले जाया जाता है।

आँख, कान, नाक, श्वसन मार्ग और जठरांत्र-मार्ग में परज वस्तु

कान में परज वस्तु दो प्रकार की हो सकती है—सजीव और निर्जीव। सजीव परज विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़े होते हैं (खटमल, तिलचट्टा, मक्खी आदि); निर्जीव परज छोटी-मोटी वस्तुएं हो सकती हैं (जैसे—बटन, मोती, अनाज का दाना, बीज, रूई का टुकड़ा आदि)। ये वस्तुएं बाह्य श्रवण मार्ग में प्रविष्ट हो जाती हैं।

कान मे स्थित परज वस्तु से आधिकांशतः कोई पीड़ा नहीं होती और कोई खतरा भी नहीं होता, इसलिये प्राथमिक उपचार की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। यह याद रखना चाहिये कि निकट स्थित लोगों द्वारा वस्तु को निकालने की कोशिश से वस्तु और भीतर चली जा सकती है।

अविशेषज्ञ को ऐसी वस्तुएं निकालने का प्रयत्न बिल्कुल नहीं करना चाहिये, क्योंकि इससे गंभीर जटिलताएं उत्पन्न हो सकती हैं: कर्ण-पट में छेद, मध्य कर्ण में जीवाणुओं का पैठन आदि।

सजीव वस्तुएं कान में अप्रिय आत्मगत अनुभूतियां उत्पन्न कर सकती हैं, जैसे–छेद होने की, जलन और पीड़ा की।

<u>प्राथमिक उपचार.</u> कान में तेल, स्पीरिट (या और कुछ न मिले तो पानी ही) डाल कर स्वस्थ करवट के बल लेट जाना। इससे कीड़ा मर जाता है और आत्मगत अनुभूतियां तुरंत दूर हो जाती हैं। इसके बाद दुर्घटनाग्रस्त को दूसरे करवट के बल लिटा दिया जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि कान में डाले द्रव के साथ कीड़ा भी बह कर निकल जाता है। यदि नहीं निकलता, तो आहत को डाक्टर (कान व ग्रसनी के विशेषज्ञ) के पास ले जाते हैं।

नाक में परज वस्तु अक्सर बच्चों में देखी जाती है, जो अपनी नाक में खुद कोई न कोई वस्तु घुसा लेते हैं, जैसे–गोली, मोती, कागज या रूई का टुकड़ा, बीज, बटन आदि।

<u>प्राथमिक उपचार.</u> पहले तो रोगी को नाक का दूसरा भाग बंद कर के नाक जोर से छिड़कने की सलाह दी जा सकती है। वस्तु को निकालने का काम सिर्फ डाक्टर को ही करना चाहिये। डाक्टर के पास जाने में निर्विलंबता की जरूरत नहीं होती, लेकिन यथासंभव शीघ्र ही चला जाना चाहिये, क्योंकि नाक में अधिक समय तक परज

वस्तु के रहने से शोथ व सूजन होती है, कभीकभी तो व्रण और रक्तस्राव भी होने लगता है।

आँख में परज वस्तु. नन्हीं लेकिन अनुकीली वस्तु (मक्खी, बालू का कण, घास का टुकड़ा आदि) युतिका (आँख की श्लेष्मल झिल्ली) पर तीव्र जलन की अनुभूति उत्पन्न करती है; इससे पलकों का झपकना तेज हो जाता है और अश्रु-स्राव होता है। यदि परज वस्तु को निकाला न जाये तो युतिका में सूजन और लाली उत्पन्न होती है, दृष्टि मंद पड़ जाती है। परज वस्तु अक्सर निचली पलक के भीतर फँसी रहती है।

परज वस्तु को जितना ही शीघ्र निकाला जायेगा, उससे उत्पन्न गड़बड़ियां भी उतनी ही जल्द दूर हो जायेंगी। आहत को आँख मलने से रोकना चाहिये, क्योंकि इससे युतिका में और भी अधिक क्षोभ होता है। आँख का निरीक्षण कर के वस्तु को बाहर निकाल लेना चाहिये। इसके लिये रोगी को ऊपर देखने के लिये कहा जाता है और नीचली पलक को नीचे खींच लिया जाता है, जिससे युतिका का निचला भाग स्पष्ट दिखने लगता है (चित्र 61 a)। वस्तु को रूई के ऐंठे हुए फाहे से निकाला जाता है; फाहा सूखा भी हो सकता है या बोरिक अम्ल में तर भी। ऊपरी पलक से परज वस्तु को निकालना अधिक कठिन होता है, क्योंकि पूरी युतिका को बाहर की ओर पलटना पड़ता है। रोगी को नीचे देखने को कहा जाता है और ऊपरी पलक को दायें हाथ की दो उंगलियों से आगे-नीचे की ओर खींचा जाता है। फिर बायें हाथ की तर्जनी से पलक को
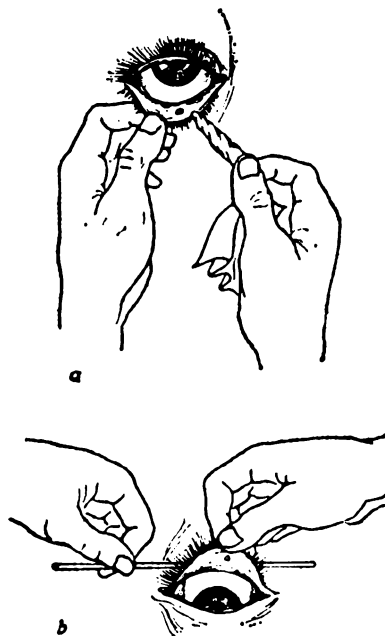
चित्र 61. आँख से परज वस्तु दूर करना। (a) निचली पलक से; (b) ऊपरी पलक से।

नीचे दबाते हुए उसे उलट दिया जाता है (चित्र 61b)। परज वस्तु निकाल लेने के बाद आहत को सामने देखने के लिये कहा जाता है, जिससे पलक अपनी सामान्य स्थिति में लौट आती है। पैंठन रोकने के लिये सुल्फासिल नेट्रियम (सुल्फासेटामीद नैट्रियम) के 3 प्रतिशत सांद्र घोल की

2 या 3 बूंद ग्राँख में डाल दी जाती है। शृंगिका में फंसी (या चुभी) परज वस्तु को खुद निकालने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये, इसके लिये किसी कुशल डाक्टर की सहायता लेनी चाहिये।

यदि परज वस्तु ग्राँख में चुभ जाती है ग्रौर नेत्र-गोलक में घाव हो जाता है, तो प्राथमिक उपचार के रूप में सुल्फासिल नैट्रियम के 3 प्रतिशत सांद्र घोल की 2-3 बूंद ग्राँख में डाल कर गजी की निष्कीटित पट्टी लगा देते हैं। ऐसे ग्राहत को तुरंत ग्रस्पताल ले जाना चाहिये।

श्वसन-मार्ग में परज वस्तु. श्वसन-मार्ग में परज वस्तु के ग्राने से मार्ग पूर्णतया ग्रवरुद्ध हो जा सकता है, जिससे घुटन बढ़ने लगती है। यह दुर्घटना ग्रक्सर बच्चों में देखी जाती है। बड़ों के श्वसन मार्ग में ग्रक्सर खाद्यांश प्रविष्ट हो जाता है; ऐसा खाते वक्त बात करने से होता है ग्रथ-वा ग्रधिग्रसनी की बीमारी से, जिसमें निगलते वक्त कंठ-द्वार पूरी तरह बंद नहीं होता। मुँह में स्थित वस्तु गहरी साँस लेते वक्त हवा के साथ कंठ ग्रौर साँसनली में चली जाती है (चित्र 62), जिससे तेज खाँसी का दौरा पड़ता है। परज वस्तु ग्रक्सर खाँसी से निकल ग्राती है। वस्तु यदि बड़ी होती है, तो स्वर-यंत्र में संकोचन उत्पन्न हो सकता है। इस स्थिति में वस्तु ग्रपनी जगह पर फँसी रह जाती है ग्रौर स्वर-यंत्र का मार्ग बंद हो जाता है, जिससे दम घुटने लगता है।

यदि तेज ग्रौर प्रबल खाँसी से परज वस्तु बाहर नहीं निकल ग्राती, तो उसे सक्रिय रूप से निकालने का प्रयत्न
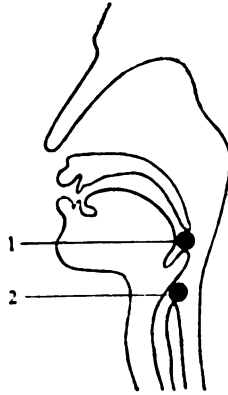
चित्र 62. श्वास-मार्ग में परज वस्तु। 1. कंठ-द्वार पर; 2. कंठ में।

करना पड़ता है। दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति (रोगी) को मुड़े घुटने पर पेट के बल रखा जाता है और सर को यथासंभव नीचे लटका दिया जाता है; फिर हाथ से पीठ पर चोट करते हुए वक्ष-पंजर में झकझोर उत्पन्न करते हैं। यदि कोई लाभ नहीं होता, तो रोगी को टेबुल पर लिटाते हैं और तेजी से नीचे मोड़ कर खुले मुंह के रास्ते ग्रसनी और कंठ के क्षेत्र का निरीक्षण करते हैं (चित्र 63 a)। परज वस्तु दिखने पर उसे चिमटी, उंगलियों आदि से पकड़ कर बाहर निकालते हैं। रोगी को अस्पताल ले जाना चाहिये। श्वसन-मार्ग के पूर्णतया अवरुद्ध हो जाने पर घुटन होने लगती है। इस स्थिति में जीवन-रक्षा का एक ही उपाय है – निर्विलंब त्राखयोच्छेदन (दे. चित्र 38)।
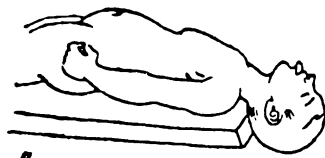
चित्र 63. श्वास-मार्ग से परज वस्तु निकालाने की तकनीक: (a) निष्क्रिय रूप से, (b) सक्रिय रूप से (दुर्घटनाग्रस्त बच्चे की स्थिति)।

जठरांत्र-मार्ग में परज वस्तु. ग्रासनली और जठर में परज वस्तु संयोग से ही प्रविष्ट होती है; यह दुर्घटना अक्सर उन लोगों के साथ होती है, जिन्हें काम के समय छोटी-मोटी वस्तु (काँटी, सूई, क्लिप, बटन आदि) मुँह में रखने की बुरी आदत होती है। खाते वक्त जल्दबाजी

करने से भी ऐसा संभव है। अक्सर मनोरोग से पीड़ित लोग आत्महत्या के लिये कोई चीज निगल लेते हैं, बच्चे भी अनजान में निगलते हैं। छोटी गोल वस्तु अक्सर पूरे जठरांत्र-मार्ग से गुजरकर मल के साथ निकल आती है, लेकिन नुकीली और बड़ी वस्तुएं अंगों को क्षत कर सकती हैं, जठरांत्र-मार्ग के किसी न किसी भाग में फँस कर गंभीर जटिलताएं उत्पन्न कर सकती हैं, जैसे रक्तस्राव, बेधन।

प्राथमिक उपचार. छोटी गोल वस्तु को निगलने पर प्राथमिक उपचार का लक्ष्य होता है जठरांत्र-मार्ग में उसकी गति को तेज करना। इसके लिये रोगी को सेलूलोज से समृद्ध पदार्थ खाने के लिये देना चाहिये, जैसे रोटी, आलू, गोभी, गाजर या शलजम। विरेचक दवा नहीं देनी चाहिये। आगे डाक्टर से भी सलाह लेनी चाहिये। नुकीली बड़ी परज वस्तु जठरांत्र-मार्ग में जाने पर यदि उरोस्थि के पीछे और पेट में दर्द हो, तो रोगी को खाने-पीने के लिये कुछ नहीं देना चाहिये, उसे शीघ्र अस्पताल पहुँचाना चाहिये।

उदरस्थ अंगों के तीव्र रोग

उदरस्थ अंगों में अचानक तेजी से बढ़ते रोग की स्थिति में अक्सर ऐसी जटिलताएं उत्पन्न होती हैं कि निर्विलंब करोर्जिक सहायता की आवश्यकता पड़ सकती है। ऐसे रोगों में परितानिका के शोथ और अंतरुदरीय रक्तस्राव की गिनती होती है; इनमें यथासमय करोर्जिक (शल्य-

चिकित्सकीय) सहायता न मिलने पर रोगी की मृत्यु अवश्यंभावी होती है।

परितानिका-शोथ और अंतरुदरीय रक्तस्राव का तल्पिक चित्र (अर्थात् उदरीय कोटर में भयंकर गड़बड़ी का संकेत देने वाले लक्षणों का संकुल) उग्र उदर नाम से जाना जाता है। किसी भी आयुर-कर्मी को रोगी में उदरीय संकट के प्रारंभिक लक्षण देखते ही उसे इस निदान के साथ शीघ्र अस्पताल में भरती कराना चाहिये, क्योंकि ये लक्षण एक तरह से खतरे की घंटी हैं।

उदरीय संकट का नाम उदरस्थ अंगों की निम्न बहुप्रचलित बीमारियों में लिया जा सकता है: तीव्र उंडुक शोथ, जठर में या पक्वाशय में छेदक (बेधक) घाव या व्रण, तीव्र पित्ताशयशोथ, दलित वर्ध्म, तीव्र आंत्र-अवरोध, उदरस्थ अगों की भीतरी (बंद) क्षतियां, अधोजठरशोथ, गर्भाशयेतर सगर्भता की स्थिति में डिंबनाल में विदार, डिंबाशय में ऐंठन। इन सभी रोगों की एक विशेषता यह है कि रोग-आरंभ के बाद जितनी ही देर से कुशल डाक्टरी सहायता मिलती है, रोगी की अवस्था उतनी ही बदतर होती जाती है और अवांछनीय परिणामों की संख्या बढ़ती जाती है।

इस ग्रुप के अधिकांश रोगों का एक सामान्य लक्षण है – पेट में तीक्ष्ण पीड़ा, यद्यपि पीड़ा की तीव्रता, स्थल, विस्तार और प्रकृति (लगातार, या रह-रह कर, आदि) भिन्न हो सकती है। पीड़ा पूर्ण स्वस्थता की स्थिति में भी अचानक उठ सकती है, या धीरे-धीरे शुरू होती है और

एक निश्चित अवधि के बाद तीव्र प्रकृति ग्रहण करती है। दूसरा लक्षण है—मतली और वमन, जो कभी-कभी अविराम और असाध्य हो जाते हैं। उग्र उदर से ग्रस्त अधिकांश रोगियों में कोष्ठबद्धता और गैसबद्धता देखी जाती है।

उदर में शोथी प्रक्रिया के निम्न लक्षण हैं: उदर की अग्र दीवार की पेशियों में तनाव और शोथित अंग के क्षेत्र में परिस्पर्शन से रोगी को दर्द की अनुभूति। नियमतः शेत्किन-ब्ल्यूमबेर्ग का लक्षण प्रकट होता है। यह परितानिका के शोथ का सबसे स्पष्ट और स्थायी लक्षण है। इसकी जाँच निम्न प्रकार से की जाती है। निरीक्षक हाथ से उदर की अग्र दीवार को सावधानी के साथ धीरे-धीरे दबाता है और एकबारगी से हाथ हटा लेता है। लक्षण को धनात्मक (अर्थात् उपस्थित) तब माना जाता है, जब हाथ हटाने के क्षण रोगी को पेट में तीव्र दर्द महसूस होता है।

अंतरुदरीय रक्तस्राव में तीव्र रक्ताल्पता की संवृत्तियां विकसित होती हैं (विवर्णता, कमजोरी, सर में चक्कर, ठंडा पसीना, तेज नाड़ी लेकिन क्षीण स्पंद, धमनी-दाब में कमी, रक्त में हेमोग्लोबिन के स्तर में कमी) और साथ ही पेट की पेशियों में कुछ तनाव, उसे परिस्पर्श करने पर पीड़ा और शेत्किन-ब्ल्यूमबेर्ग का धनात्मक लक्षण उत्पन्न होता है। अंतरुदरीय रक्तस्राव से काफी कम समय में ही तीव्र रक्ताल्पता और मृत्यु हो सकती है।

यदि उदरस्थ अंगों की उपरोक्त किसी तीव्र बीमारी से ग्रस्त रोगी को यथासमय सहायता नहीं पहुँचायी गयी, तो परितानिकाशोथ विकसित हो जाता है, जो चाहे जिस भी कारण से उत्पन्न हुआ हो, घातक परिणामों को जन्म देता है।

पूयस्रावी परितानिकाशोथ विकसित होने पर रोगी की जीवन-रक्षा बहुत कठिन हो जाती है; परितानिकाशोथ का निरोध, अर्थात् उसका कारण दूर करना अपेक्षाकृत सरल है।

इस प्रकार, "उग्र उदर" नामक ग्रुप के अंदर आने वाली अवस्थाओं को निर्विलंब करोर्जिक केस मानने चाहिये।

उदरीय कोटर में तीव्र शोथ-प्रक्रिया से ग्रस्त रोगी का मुख्य प्राथमिक उपचार है—उसे शीघ्र अस्पताल में भरती करना। इसके अतिरिक्त, रोगी को विश्राम देना चाहिये, पेट पर बर्फ या ठंडे पानी की थैली रखनी चाहिये। रोगी को कुछ खिलाना-पिलाना नहीं चाहिये, जठर-प्रक्षालण नहीं करना चाहिये, धोवक एनेमा और विरेचक दवाएं नहीं देनी चाहिये, क्योंकि इन सब से शोथ-प्रक्रिया के विस्तार को प्रोत्साहन मिलता है।

नर्कोटिक एवं वेदनाहर दवाओं, प्रतिजीवकों और अन्य प्रकार की औषधियों का भी उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि इनसे तल्पिक चित्र धूमिल हो जाता है और निदान बहुत कठिन हो जाता है, चिकित्सा सही नहीं होती या सही समय पर नहीं की जाती।

वृक्क-शूल और तीव्र मूत्ररोध

वृक्क-शूल. कमर में अचानक दर्द का दौरा पड़ता है, जो मानो विकिरणित होता हुआ जंघामूल, जननेंदियों और जांघों तक पहुँच जाता है। इस तरह के दर्द को वृक्क-शूल कहते हैं और इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे – यक्ष्मा (गंठिक्लेश), गोणिका-वृक्कशोथ, अर्बुद या गुल्म और अधिकांशतः पथरी। वृक्क-शूल की विशेषता पीड़ा के स्थान और प्रसार से ही नहीं निर्धारित होती; अन्य लक्षण भी हैं: मूत्र-विसर्जन के समय जलन, बहुमूत्रण, मूत्र के रंग में परिवर्तन आदि।

पीड़ा बहुत तीव्र होती है और उसकी प्रबलता रोगी के शरीर की स्थिति के अनुसार बदलती रहती है। पीड़ा गवीनी (मूत्रवाही नलीका) के अवरुद्ध होने पर (पथरी पड़ने के कारण, पूय के कारण) उसकी पेशियों में अपतान और गोणिका के (वृक्क के विस्तृत भाग के, जिससे गवीनी निकलती है) अत्यधिक लमड़ाव से भी हो सकती है।

पीड़ा दूर करने के लिये ऐसे रोगियों को एट्रोपीन के 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल की कुछ बूंदें, बेलाडोना की टिकिया या जीभ के नीचे शक्कर पर 2-3 बूंद सिस्टेनाल दिया जा सकता है। कमर पर गर्म पानी की थैली रखने और गर्म पानी के टब में स्नान से भी लाभ होता है।

यह याद रखना चाहिये कि दर्द के ऐसे दौरे उदरस्थ अंगों के तीव्र शोथ (तथाकथित "उग्र उदर") में भी

प्रेक्षित हो सकते हैं, लेकिन इस स्थिति में उपरोक्त उपचार बिल्कुल प्रतिसंकेतित हैं। वृक्क-शूल की चिकित्सा-विधि डाक्टर ही चुन सकता है, अतः इन रोगियों को अस्पताल में भरती करना अनिवार्य होता है।

तीव्र मूत्ररोध. तीव्र (लंबे समय तक) मूत्ररोध से भी गंभीर अवस्था विकसित हो सकती है। इसका कारण अक्सर पुरस्थ ग्रंथि में अर्बुद, मूत्राशय में पथरी, मेरुमज्जा का रोग आदि हो सकता है। मूत्ररोध से मूत्राशय की दीवारें लमड़ती हैं, जिससे पेट में प्रबल पीड़ा होती है; यह पीड़ा प्रतिवर्त रूप से अन्य अंगों (आँत, हृदय, फेफड़ों आदि) के भी कार्यों में व्यवधान उत्पन्न कर सकती है।

प्राथमिक उपचार के रूप में चंद कदम उठाये जा सकते हैं, जिनसे कभी-कभी अपतान दूर हो जाता है और रोगी मूत्र-विसर्जन स्वतः कर पाता है। रोगी को एक गिलास ठंडा पानी पिलाते हैं, मूलाधार क्षेत्र के पास गर्म पानी की थैली रखते हैं, पानी की धार गिरते रहने की आवाज प्रस्तुत करते हैं, छोटी धोवक एनेमा देते हैं, बेलाडोना के अर्क से युक्त वर्ति (बत्ती) का उपयोग करते हैं। यदि इन उपायों से लाभ नहीं होता, रोगी को तुरंत अस्पताल पहुँचाते है, जहां मूत्र कैथेटर की सहायता से निकाला जाता है (कैथेटर – रबड़ या धातु की नली, जिसे मूत्रमार्ग से हो कर मूत्राशय में प्रविष्ट कराया जाता है)।

इन्सुल्त (लातीनी: आक्रमण; आयुर में: रक्तसंचार की किसी गड़बड़ी से मस्तिष्क को क्षति) – यह मस्तिष्क और मेरुमज्जा में रक्त-संचार की तीव्र गड़बड़ी है और अतितान रोग एवं मस्तिष्क की रक्तवाही कुंभियों में खीरकठोरन की एक क्लिष्टता के रूप में उत्पन्न होता है (खीरकठोरन – कुंभियों में खोलेस्टेरीन एवं कैल्सियम लवणों के जमाव से उनका संकीर्ण होते जाना)। इन्सुल्त अचानक बिना किसी पूर्व लक्षण के उत्पन्न होता है, यह निद्रा में भी हो सकता है और जागरण में भी। रोगी बेहोश हो जाता है और इस अवधि में वमन, अस्वैच्छिक मल-मूत्र विसर्जन प्रेक्षित होता है। चेहरा रक्तस्फीति से लाल हो उठता है, नाक-कान नीले हो जाते हैं। साँस विशेष प्रकार से व्यवधानित होती है: खरखराहट युक्त तेज हँफनी निस्पंदता में बदलने लगती है, साँस विरल रूप से एकाध बार कर के चलती है। नाड़ी की गति 40-50 स्पंद तक धीमी हो जाती है। अक्सर तुरंत हाथ--पैर का लकवा, चेहरे की असममिति (आधे चेहरे की भावजनक पेशियों का लकवा) और पुतलियों की चौड़ाई में असमरूपता देखने को मिलती है। इन्सुल्त इतना उग्र नहीं भी हो सकता है, लेकिन हाथ-पैर का लकवा और किसी न किसी हद तक वाग्भंग अवश्य प्रेक्षित होता है।

सबसे पहले रोगी को आराम से बिस्तर में लिटाते हैं और साँस में बाधक तंग कपड़ों को ढीला करते हैं, ताजी

हवा आने देते हैं। सर पर बर्फ की थैली या शीतल पानी की पट्टी रखते हैं, पैरों पर गर्म पानी की थैली रखते हैं। पूर्ण विश्राम और शांति की परिस्थितियां बनानी चाहिये। यदि रोगी निगलने में समर्थ हो तो उसे प्रशांत-कारी दवाएं (वालेरिआन का टिंचर या ब्रोमाइड) और धमनी-दाब कम करने की दवाएं (बेंडाजोल हाइड्रोक्लोराइड, पैंपेवेरीन हाइड्रोक्लोराइड) देते हैं। साँस पर निगरानी रखनी चाहिये, श्लथ जीभ के कंठ में गिरने का खतरा दूर करना चाहिये, मुख-कोटर से श्लेष्मा व वमन-द्रव्य साफ कर देना चाहिये। रोगी को खिसकाने तथा अस्पताल ले जाने से पहले डाक्टर की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होता है।

अपस्मारी दौरा मिरगी या अपस्मार नामक एक गंभीर मनोरोग की एक अभिव्यक्ति है। दौरा का वर्णन निम्न है: अचानक बेहोशी, साथ में पहले एकतार और बाद में हुकहुकीनुमा वितान, सर का एक ओर बहुत ज्यादा मुड़ा होना, मुँह में फेन। दौरे के प्रथम सेकेंडों में रोगी गिरता है, जिससे अक्सर चोट भी लगती है। चेहरे पर नीलापन छा जाता है, पुतलियां प्रकाश पर प्रतिक्रिया नहीं करतीं।

दौर 1-3 मिनट के लिये होता है। वितान समाप्त होने पर रोगी को नींद आ जाती है और यह घटना उसे याद नहीं रहती।

रोगी को पूरे दौरे के दरम्यान सहायता की आवश्यकता होती है। वितान के समय रोगी को अपने स्थान से

उठा कर कहीं अन्यत्र ले जाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। सर के नीचे कोई मुलायम चीज रखनी चाहिये, श्वास व्यवधानित करने वाले तंग कपड़े ढीले कर देने चाहिये, दाँत से जीभ कट न जाये, इसके लिये दाँतों पर रूमाल (या कोई कपड़ा) तह कर के रख देते हैं। यदि दौरा बाहर सड़क पर पड़ा है, तो रोगी को वितान खत्म होने के बाद ही घर या अस्पताल पहुँचाते हैं।

अपस्मारी दौरे तथा इन्सुल्त से बेहोशी की अवस्थाओं और रगडंबरी दौरे में अंतर करना आवश्यक है।

रगंडबरी दौरा. यह अक्सर दिन में होता है, इससे पहले रोगी के मन में अप्रिय भावनाओं का उद्वेलन होता रहता है। रगडंबर का रोगी अक्सर आरामदेह जगह तर गिरता है (ताकि चोट न लगे), वितान अव्यवस्थित एवं स्पष्ट नाटकीय रूप से होता है। मुँह में फेन नहीं आता, साँस व्यधानित नही होती, पुतलियां प्रकाश पर प्रतिक्रिया करती हैं। दौरा अनिश्चित अवधि तक चलता है और वह जितना ही लंबा होता है, लोग रोगी पर उतना ही अधिक ध्यान देते हैं। अस्वैच्छिक मूत्र-विसर्जन नियमतः नहीं होता।

वितान समाप्त होने पर नींद या तंद्रा नहीं प्रेक्षित होती, रोगी आराम से अपना काम जारी रख सकता है।

रगडंबरी दौरे में भी रोगी को सहायता की आवश्यकता पड़ती है। उसे बाधा नहीं डालनी चाहिये, शांत स्थल पर लाना चाहिये और अतिरिक्त लोगों को हटा देना चाहिये, अमोनियम हाइड्रोक्लोराइड सुंघाना चाहिये और परेशान नहीं करना चाहिये। ऐसी परिस्थितियों में

रोगी जल्द शांत हो जाता है और दौरा समाप्त हो जाता है।

तीव्र हृत्कुंभिक अपूर्णता

हृदय की तीव्र अपूर्णता (पूरी तरह अपना कार्य नहीं कर सकना) —यह रक्त-संचार की गंभीरतम गड़बड़ियों में से एक है। वह आक्सीजन की दीर्घकालीन भूख (अवाक्सिता) के कारण विकसित हो सकती है, जिसका संबंध निम्न परिस्थितियों से होता है: रक्तहानि, साँस की गड़बड़ी, हृदय की कोई त्रुटि (दुपर्दी संकोचन), चोटज अभिघात, अतितानी रोग, हृत्पेशी का इन्फार्क्त, विषैले द्रव्यों से आगरण।

हृदय की तीव्र अपूर्णता में हृदय की पेशी अपनी संकोचन-क्षमता खो देती है, इसीलिये हृदय उसमें आने वाले रक्त को पंपित कर के वापस शरीर में नहीं भेज पाता; हृदय द्वारा विक्षेपित रक्त की मात्रा बहुत घट जाती है। इसके फलस्वरूप रक्त में थिराव उत्पन्न होता है। यदि बायें निलय की अपूर्णता अधिक होती है, तो रक्त मुख्यतः फेफड़ों में टिका रहता है। यह निम्न लक्षणों में व्यक्त होता है: हँफनी, हृदय की धड़कन में तेजी, काफी अवाक्सिता, अम्लक्लेश, अन्य महत्त्वपूर्ण अंगों (विशेषकर वृक्कों) के कार्य में गड़बड़ी। बायें निलय की अपूर्णता अधिक होने पर फेफड़ों में सूजन भी विकसित हो सकती है।

दायें निलय की अपूर्णता अधिक होने पर रक्त अपने

संचार के वृहत चक्र में थमने लगता है, जिससे शोफ होता है, यकृत बढ़ जाता है, विभिन्न ऊतकों एवं अंगों में रक्त का आगमन और आक्सीजन की आपूर्त्ति कम हो जाती है।

<u>प्राथमिक उपचार.</u> हृदय की तीव्र अपूर्णता में सारा प्रयास हृदय की संकोचन-क्षमता बढ़ाने में लगाना चाहिये। इसके लिये निम्न दवाएं प्रयुक्त हो सकती हैं: स्ट्रोफांथिन, कोर-ग्लीकोन, या डीजीटोक्सिन। स्ट्रोफांथिन 0.05 प्रतिशत सांद्र घोल के रूप में प्रयुक्त होता है: 0.5 मिलिलीटर दवा ग्लुकोज के 40 या 5 प्रतिशत घोल की 20 मिलि-लीटर मात्रा में मिला कर शिरा में सूई से आधानित करते हैं। यदि हृदय की तीव्र अपूर्णता उरोदमन से संबंधित होती है, तो रोगी को नाइट्रोग्लीसेरिन की 1-ग्राम टिकिया जीभ के नीचे रखने को देते हैं। फेफड़ों की कुंभियों में रक्त का थिराव दूर करने के लिये अमीनोफीलिन (युफी-लिन) का उपयोग कारगर रहता है। यह दवा अंतर्शिरीय मार्ग से 2.4 प्रतिशत सांद्र घोल के रूप में दी जा सकती है; अंतर्पेशीय मार्ग से 24 प्रतिशत सांद्र घोल दिया जाता है। अंतर्शिरीय आधान तनु रूप में और धीरे-धीरे किया जाता है। रोगी को कोई मूत्र-रेचक दवा भी देनी चाहिये, जैसे – फूरोसेमिड (लैसिक्स) या नोवूरिट। अवाक्सिता कम करने के लिये आर्द्रित आक्सीजन दी जाती है।

हृदय की तीव्र अपूर्णता में रोगी का परिवहन बहुत सावधानी से करना चाहिये। यदि धमनी-दाब बहुत नहीं घटा है, तो रोगी को कुछ उठी हुई मुद्रा में रखते हैं।

हृदय की ओर रक्त का आगमन कम करने के लिये हाथ-पैर पर पाश बांधना चाहिये, लेकिन इस तरह नहीं कि धमनियां दबें; शिराओं को संपीडित करना चाहिये। याद रखना चाहिये कि हृदय की तीव्र अपूर्णता का कारगर इलाज अस्पताल में ही हो सकता है, अतः रोगी को शीघ्र अस्पताल पहुँचाने के हर संभव उपाय करने चाहिये।

तीव्र कुंभिक अपूर्णता कुंभियों की तानता में तेजी से कमी के कारण होती है। इसमें कुंभियों का भीतरी आयतन उनमें स्थित रक्त के आयतन से ज्यादा हो जाता है। मस्तिष्क समेत शरीर के अन्य महत्त्वपूर्ण अंग रक्त द्वारा लायी गयी आक्सीजन की कमी से पीड़ित होते हैं, जिससे उनके कार्य में गड़बड़ी और यहांतक कि रुकावट भी हो जाती है।

मूर्छा या बेहोशी तीव्र कुंभिक अपूर्णता की एक अभिव्यक्ति है। इसमें मस्तिष्क की ओर रक्त के बहाव में तेजी से कमी के कारण कुछ समय के लिये अचानक चेतना का लोप हो जाता है। अक्सर मूर्छा मानसिक चोट या नार्विक उद्वेलन के साथ होती है। उसकी उत्पत्ति में निम्न घटक भी सहायक होते हैं: क्लांति, रक्ताल्पता, शारीरिक थकावट, सगर्भता व अतितानी रोग जैसी अवस्थाएं। कभी-कभी रोगी मूर्छा से पूर्व मतली, हवा की कमी, सर में चक्कर, आँखों के आगे अंधेरा, कमजोरी आदि महसूस करते हैं। मूर्छा त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियों की विवर्णता और कभी-कभी धमनी-दाब में 70-60 मिलिमीटर पारद-स्तंभ तक की कमी के रूप में व्यक्त होती है।

मूर्छा के समय साँस विरल हो जाती है। नियमतः मूर्छा अल्पकालीन ही होती है–कुछ सेकेंडों के लिये ही, लेकिन कभी-कभी वह मिनट भर या इससे अधिक भी रह सकती है।

प्राथमिक उपचार. रोगी को क्षैतिज स्थिति में रखा जाता है; सर को धड़ से कुछ नीचे कर देते हैं, जिससे सर की ओर रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है और साँस शीघ्र पुनर्स्थापित होती है। तंग कपड़े ढीले कर देने चाहिये। श्वसन-केंद्र और कुंभीप्रेरक-केंद्र को उद्दीपित करने के लिये रोगी को अमोनियम हाइड्रोक्साइड सुंघाया जा सकता है, चेहरे पर ठंडा पानी छिड़का या रगड़ा जा सकता है। अधिकांशतः इन उपायों से रोगी को मूर्छा की अवस्था से उबारने में सहायता मिल जाती है।

अधिक गंभीर स्थितियों में कोर्डिआमीन, काफेईन या स्त्रिखनीन देना चाहिये। होश और साँस लौटने तक रोगी परिवहन के लायक नहीं होता।

निपात. तीव्र कुंभिक अपूर्णता का अधिक गंभीर चरण निपात कहलाता है। इसमें कुंभियों की तानता में इतनी गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है कि धमनी-दाब और हृदय की कार्यशीलता में तेजी से कमी आती है। निपात ऐसे रोगों की एक प्रायिक क्लिष्टता है, जिनमें पीड़ा और आगरण होता है, जैसे टायफड, हैजा, क्लोमशोथ, खाद्य पदार्थ से आगरण, तीव्र अधोवृक्कशोथ, परितानिकाशोथ। गंभीर अभिघात और अत्यधिक रक्तहानि में भी निपात प्रेक्षित होता है। वह संज्ञाहरण के समय भी विकसित

हो सकता है। बहुत प्रबल पीड़ाजनक क्षोभ से भी निपात हो जाता है, जैसे सौर गुंफ (सूर्य-चक्र) तथा मूलाधार के क्षेत्रों में चोट से।

निपातवत अवस्था में रोगी विवर्ण हो जाता है, त्वचा पर ठंडा पसीना छा जाता है, उस पर नीली आभा दिखने लगती है। साँस तेज और सतही होती है। नाड़ी धागे के समान पतली रहती है, धमनी दाब 60 मिलिमीटर पारद-स्तंभ से भी नीचे उतर आता है। यदि आवश्यक कदम नहीं उठाये जायें, तो रोगी की मृत्यु हो जा सकती है।

प्राथमिक उपचार में निपात के कारणों और हृत्कुंभिक अपूर्णता को दूर करने के प्रयास किये जाते हैं। मस्तिष्क में रक्त का आगमन बढ़ाने के लिये रोगी के पैर ऊँचे रखने चाहिये। हाथ-पैर पर कस कर पाश बांधने से भी मस्तिष्क और हृदय की ओर रक्त का प्रवाह बढ़ जाता है

रोगी को निर्विलंब अस्पताल ले जाना चाहिये, जहां निपात उत्पन्न होने के कारणों के अनुसार उसकी चिकित्सा की जाती है। कुंभिक अपूर्णता सबसे स्पष्ट रूप से अभि-घात की अवस्था में व्यक्त होती है (दे. अध्याय 4)।

हृदय रोगी होने पर हृदय की अपूर्णता के साथ-साथ कुंभिक अपूर्णता भी होती है। इन स्थितियों में हृत्पेशी की संकोचन-क्षमता सुधारने वाली दवाओं के साथ कुंभियों को संकुचित करने वाली दवाएं भी दी जाती हैं, जैसे—नोर-आद्रेनालीन, मेजाथोन, एफेड्रिन, प्रेद्नीजोलोन और साथ ही विटामिन, कार्बोक्सीलाज आदि।

क्लोम-शोफ (फेफड़े में शोफ) कई रोगों में एक गंभीरतम क्लिष्टता (सहविकार) के रूप में उत्पन्न होता है ; इसके विविध कारण हो सकते हैं। हृत्पेशी के इन्फार्क्त में क्लोम-शोफ हृदय की अपूर्णता और इससे क्लोमिक कुंभियों से रक्त निकलने में व्यवधान के कारण उत्पन्न होता है। अतितान-रोग या रक्ताल्पता के रोगियों में क्लोम-शोफ मुख्यतः पनपू नर्वतंत्र के उद्दीपन से होता है : इस उद्दीपन के कारण कुंभियों का संकोचन (अपतान) होता है और इसके फलस्वरूप शरीर में रक्त का कुवितरण और फेफड़ों में उसका संचय होने लगता है। यही बात मस्तिष्क की चोटों और उसके रोगों की स्थिति में पायी जाती है। रक्तिल मूत्रण और विषैले रसायनों (क्लोरीन, फोस्जेन) से आगरण में क्लोम-शोफ के विकास में बहुत बड़ी भूमिका क्लोमिक केशिकाओं की बेधिता निभाती है। क्लोम-शोफ का कारण जो भी हो, इससे साँस में व्यवधान और अवाक्सिता का विकास होता है।

क्लोम-शोफ के प्रथम लक्षणों में निम्न की गणना होती है : गंभीर घुटन का दौरा, बेचैनी, नाड़ी का तेज होना। बाद में साँस से खरखराहट और घरघराहट आती है, सफेद या गुलाबी फेनिल कफ के साथ खाँसी होती है। यह फेन फेफड़ों के वर्त्सों में हवा को जाने से रोकता है (वर्त्स – फेफड़े की वायु-नलियों के सिरों पर औंधी कटोरी जैसी बनावट, जिसकी सतह पर रक्त के साथ गैस-विनिमय

होता है) ; इससे रोगी के शरीर में आक्सीजन की भूख बढ़ती है, जिसका एक लक्षण है – त्वचा और श्लेष्मल झिल्लियों का नीला पड़ना।

आक्सीजन की भूख से रक्त-संचार में व्यवधान और भी गहन होता जाता है, द्रव्य-विनिमय की गड़बड़ी से अम्लक्लेश विकसित होता है।

प्राथमिक उपचार. क्लोम-शोफ में अवाक्सिता दूर करने का प्रयास करना चाहिये। सबसे पहले श्वसन-मार्ग साफ करना चाहिये, फेनिल कफ निकालना चाहिये। इसके लिये स्पीरिट के वाष्प के साथ आक्सीजन की साँस दिलाते हैं, जो फेन के विरुद्ध एक कारगर साधन है। क्लोमिक कुंभियों में रक्त की मात्रा कम करने के लिये हाथ और पैर पर (जांघ के क्षेत्र में) पाश बांधना चाहिये। इस काम से सिर्फ शिरीय कुंभियों (शिराओं) को संपीडित करना चाहिये ; धमनियों में रक्त-प्रवाह सामान्य रहना चाहिये। इसीलिये पाश बांधने के बाद उससे नीचे धमनी में स्पंदन हो रहा है या नहीं ,इसकी जाँच अवश्य कर लेनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, क्लोमिक कुंभियों में रक्त की मात्रा घटाने के लिये अनेक दवाएं भी सुसंकेतित हैं : मूत्र-रेचक (मेर्कूरोफीलीन, फूरोसेमिड, या लाजिक्स) और एंटी-अतितान दवाएं। धमनी-दाब कम रहने पर इन दवाओं का उपयोग बड़ी सावधानी के साथ करना चाहिये। क्लोम-शोफ के रोगी को आयुरी सहायता प्रदान करते वक्त यह याद रखना चाहिये कि इसके विकास के अलग-अलग कारण होते हैं। यथा, हृदय की त्रुटि से ग्रस्त रोगी को

क्लोम-शोफ होने पर मोर्फीन का आधान कारगर होता है, लेकिन मस्तिष्क की क्षति अथवा उसके रोग से उत्पन्न क्लोम-शोफ में यह दवा प्रतिसंकेतित है। इसीलिये प्राथमिक उपचार (फेन दूर करने, आक्सीजन की साँस लेने, पाश बांधने) के साथ-साथ डाक्टर को भी अवश्य बुलाना चाहिये, जो क्लोम-शोफ के कारणों को निर्धारित कर के सही व गहन चिकित्सा शुरू कर सकता है।

हृत्पेशी का इन्फार्क्त

हृत्पेशी का इन्फार्क्त अर्थात् हृदय की पेशी के सीमित क्षेत्र में ऊतकों की मृत्यु (विमृति) अनेक रोगियों के लिये घातक होती है। यह किरीटी कुंभियों के खीरक-ठोरन, उनके अपतान या रक्त के थक्कों से उनके अवरोध के फलस्वरूप हृदय में रक्तापूर्त्ति तेजी से घटने के कारण होता है (चित्र 64)। अक्सर हृदय में रक्तापूर्त्ति की कमी उरोदमन के रूप में व्यक्त होती है, जिसमें उरोस्थि के पीछे तीव्र पीड़ा होती है (उरोस्थि: हृदय के सामने ऊपर से नीचे को जाती हड्डी, जिससे पसलियां निकलती हैं)। इस पीड़ा की यथासमय चिकित्सा से हृत्पेशी के इन्फार्क्त का निरोध किया जा सकता है; चिकित्सा रक्तवाही कुंभियों को प्रसारित करने वाली दवाओं से होती है, जैसे—नाइट्रोग्लीसेरिन या पैपेवेरिन से।

हृत्पेशी के इन्फार्क्त की सबसे प्रायिक और गंभीर अभिव्यक्ति तीव्र हृत्कुंभिक अपूर्णता है। यह अवस्था इतनी

खतरनाक है कि वर्तमान समय में इसे हृदज अभिघात मानने लगे हैं। हृत्पेशी के इन्फार्क्त की अन्य क्लिष्टताएं क्लोमों का शोफ और निलयों का स्फुरण (रेशों का अव्यवस्थित लयहीन संकोचन) हैं।

प्राथमिक उपचार के सिद्धांत वे ही हैं, जो हृदय की तीव्र अपूर्णता, अभिघात और क्लोम-शोफ के लिये हैं (देखें – तदनुरूप प्रकरण)। प्रथम युक्तियों में से एक है – मोर्फीन, प्रोमेडोल आदि की सूई से पीड़ा दूर करना (अन्य वेदनाहर दवाएं भी प्रयुक्त हो सकती हैं)। इसके साथ-साथ किरीटी कुंभियों को प्रसारित करने वाली दवाएं भी दी जाती हैं, जैसे – नाइट्रोग्लीसेरिन, वैलीडोल या एमिल नाइट्राइट। रोगी को पूर्ण विश्राम की अवस्था में रखना चाहिये और उसे कोई भी सक्रिय गति नहीं करने देना चाहिये। हृत्पेशी के इन्फार्क्त की आशंका मात्र रोगी को तुरंत अस्पताल में भरती करने का अकाट्य संकेत है, इस काम में रोगी की अवस्था पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

हृत्पेशी के इन्फार्क्त से ग्रस्त रोगी को अस्पताल ले जाने के लिये निर्विलंब आयुरी सेवा की संजीवनी गाड़ी का उपयोग किया जाता है, जिसमें आवश्यकतानुसार संजीवन-कार्य भी किये जा सकते हैं।

आकस्मिक प्रसव

प्रसूति-गृहों का जाल फैले होने और सभी सगर्भा स्त्रियों पर निरंतर निगरानी रखने के बाद भी ऐसी घटनाएं

घटती रहती हैं, जब प्रसव घर में या रेलगाड़ी ग्रथवा हवाई जहाज में होता है। प्राथमिक उपचार करने वाले को सबसे पहले निस्सृपक परिस्थितियां उत्पन्न करनी चाहिये। हाथ ग्रच्छी तरह धो लेना चाहिये, एक कैंची या चाकू निष्कीटित कर के रख लेना चाहिये, पट्टी ग्रादि परि-धान-सामग्रियां तैयार रखनी चाहिये; नाड़ा को बांधने के लिये स्पीरिट या टिंचर ग्रायडीन में तर कर के धागा भी रख लेना चाहिये। यदि शिशु का जन्म निस्पंदता (घुटन)

चित्र 64. हृत्पेशी का इन्फार्क्त (रक्तागमन में रोध मे ऊतक की मृत्यु)। धमनियों का स्कंदक्लेश (काले रंग से दर्शित) ग्रौर विमृति-क्षेत्र (बिंदुकित क्षेत्र)।

के साथ होता है, तो रबड़ की विशेष गेंद द्वारा नाक श्रौर मुँह से गर्भ-द्रव चोषण कर के निकाल लेना चाहिये।

नवजात शिशु को गर्म इस्तरी किये हुए साफ चादर पर रखना चाहिये। जब नाड़े का स्पंदन रुक जाता है, उसे दो स्थलों पर पट्टी के टुकड़े या मजबूत डोरी से बांधा जाता है; पहला स्थल बच्चे की नाभि से 5 सेंटीमीटर श्रौर दूसरा स्थल 10 सेंटीमीटर दूर रखा जाता है। इसके बाद नाड़े को दोनों बंधनों के बीच काट दिया जाता है (चित्र 65)। नाड़े के सिरे को किसी प्रतिसृपक घोल
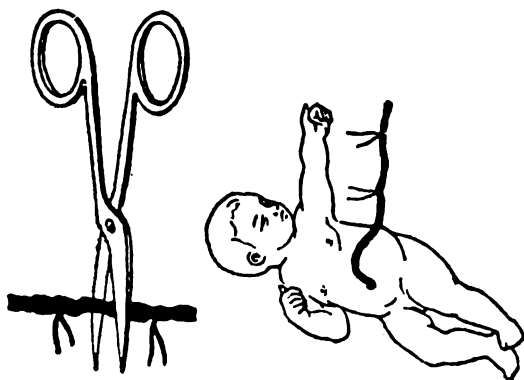
चित्र 65. नाड़ा बांधना श्रौर काटना।

से संसाधित कर के उसपर निष्कीटित पट्टी लगा कर एक डोरी से बांध देते हैं।

यदि शिशु में साँस लेने के लक्षण नहीं हैं, तो मुँह

से मुँह में फूँक कर कृत्रिम श्वसन शुरू कर देना चाहिये, लेकिन इससे पहले उसके मुँह और नाक से सारा गर्भ द्रव रबड़ के गेंदनुमा पंप से निकाल लेना चाहिये।

जच्चा और बच्चा दोनों को यथाशीघ्र प्रसूति-गृह में भरती कर देना चाहिये।

जेर और नाड़े के अवशेष प्रसव-मार्ग से एक घंटे तक में बाहर निकल आने चाहिये। इसे सुरक्षित रख कर डाक्टर को दिखाना चाहिये की पूरा बाहर निकल चुका है या नहीं। जब ये अवशेष समय पर नहीं निकलते, तो गंभीर क्लिष्टताएं उत्पन्न हो सकती हैं। प्रसव के बाद मूलाधार-क्षेत्र को स्वच्छ सूती कपड़े से ढक देते हैं।

अध्याय 12

रोगी की देखभाल: प्राथमिक उपचार के तत्त्व

हर आयुर-कर्मी को प्राथमिक उपचार के कुछ तत्त्वों से अवश्य परिचित होना चाहिये जो रोगी की देखभाल के काम आ सकते हैं। इनमें निम्न की गणना होती है: पानी तथा अन्य द्रव देना, रोगी को गर्म वस्त्रों से ढकना, धोवक एनेमा देना, सर, पेट आदि पर शीतल पुल्टिस रखना।

एनेमा. ऋजु आँत (मलाशय) से हो कर बड़ी आँत में कोई द्रव प्रविष्ट करा के उसे खाली कराने की क्रिया को एनेमा (देना) कहते हैं। इसमें एस्मार्ख के बरतन (भारतीय रबड़ के बैग) अथवा शंकु का उपयोग होता है। 1.5 मीटर तक लंबी नली का एक सिरा एस्मार्ख के बरतन के साथ जोड़ा जाता है; दूसरे सिरे पर टोंटी फिट की जाती है। एनेमा में स्वच्छ गुनगुना पानी (20-30°C) का उपयोग होता है। नली को एक क्लिप से बंद कर दिया जाता है और बरतन में एक लीटर पानी ढाल लिया जाता है। पृष्ठद्वार में नली की टोंटी प्रविष्ट कराने से पूर्व नली को पानी से भर लेना चाहिये। क्लिप थोड़ा खोलने पर बरतन का पानी नली में बची हवा को निकाल

देगा। रोगी बायें करवट के बल लेटता है (यदि वह पानी रोक कर नहीं रख सकता, तो उसे ग्रायल-क्लौथ पर लिटाते हैं) ग्रौर बरतन को दीवार पर टांग देते हैं। टोंटी पर तेल लगा कर उसे चिकना कर लेते हैं ग्रौर बायें हाथ के ग्रंगूठे ग्रौर तर्जनी से नितंबों को एक-दूसरे से ग्रलग करते हैं। दायें हाथ से टोंटी को ऋजु ग्रांँत में बहुत मुलायमियत से प्रविष्ट करते हैं; इसके लिये टोंटी को पेंच की तरह घुमाते हुए ग्रागे ग्रौर ऊपर की ग्रोर ठेलते हैं (करीब 10-12 सेंटीमीटर)। जब टोंटी सही स्थिति में ग्रा जाये तो क्लिप खोल दिया जाता है ग्रौर बरतन का पानी ग्रांँत में बहने लगता है। पानी धीरे-धीरे बहना चाहिये, ग्रन्यथा पीड़ा होगी। जब सारा पानी निकल जाता है, तो क्लिप से नली को पुनः बंद कर दिया जाता है ग्रौर टोंटी को मुलायमियत से निकाल लिया जाता है। रोगी को कुछ मिनटों तक पानी रोक कर रखने को कहा जाता है, ताकि मल ढीला हो जाये। मल कड़ा होने पर पानी ग्रांँत में प्रविष्ट नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में बरतन को ग्रौर ऊँचा टांगा जाता है ग्रौर टोंटी को ग्रौर गहरा ठेल कर उसकी स्थिति बदल दी जाती है या उसे निकाल कर साफ किया जाता है। यदि मल-द्रव्य हर बार टोंटी में फँस कर उसे ग्रवरुद्ध कर देता है, तो ऋजु ग्रांँत में उंगली प्रविष्ट करा कर मल निकाला जाता है (ग्रंगुल-एनेमा) ग्रौर तब धोवक एनेमा दिया जाता है।

यदि रोगी को करवट नहीं लिटाया जा सकता, तो चित्त स्थिति में भी एनेमा दिया जा सकता है। कभी-कभी

पानी में तेल भी मिला दिया जाता है, ताकि मल-विसर्जन में सरलता हो (अंडी का तेल, वैसेलिन, सूरजमुखी का तेल आदि)। पानी में कोई उदासीन साबुन भी मिलाया जा सकता है (एक लीटर पानी में साबुन का एक चम्मच छीजन)।

अलग-थलग केसों में (जैसे अतितान, हृत्कुंभिक अपूर्णता, शोफ आदि होने पर) सामान्य एनेमा प्रतिसंकेतित होता है, क्योंकि इसके पानी का एक अंश आँत द्वारा अपचोषित हो जाता है। इस स्थिति में आँत को अतितानी एनेमा द्वारा खाली कराया जाता है: दस प्रतिशत सांद्र घोल की 50-100 मिलिलीटर मात्रा रबड़ की गेंदनुमा पिचकारी से प्रविष्ट करायी जाती है। रोगी को घोल 20 से 30 मिनट तक रोक कर रखना चाहिये, जिससे आँत का क्रमाकुंचन तेज हो जाता है और आँत की दीवारों से पारस्रवित हो कर द्रव विपुल मात्रा में आँत के भीतर चला आता है।

आँत खाली करने का काम और भी अधिक तीव्रता से किया जा सकता है–आँत को पानी से बार-बार धोने के लिये साइफन एनेमा का उपयोग कर के। साइफन एनेमा में निम्न वस्तुएं होती हैं: 50 मिलिलीटर का एक कीप (शंक्वाकार बरतन), रबड़ की नली, रबड़ की एक लंबी टोंटी और इन्हें जोड़ने वाली एक काँच की नली, जिससे धोवन-जल का निरीक्षण किया जा सके। पूरा तंत्र फिट कर के कीप को पानी से भर देते हैं, नली क्लिप कर दी जाती है, टोंटी पर तेल लगा दिया जाता है।

इसके बाद टोंटी ऋजु आँत में प्रविष्ट करा के (20-25 सेंटीमीटर तक) क्लिप हटा लिया जाता है। पानी आँत में भरने लगता है। जब पानी कीप के सँकरे भाग में पहुँच जाता है, तो उसे रोगी के शरीर से नीचे ला देते हैं, पानी वापस कीप में भर जाता है। पानी बदल कर यह प्रक्रिया तबतक दुहराते हैं, जबतक आँत से निकलने वाला पानी काँच की नली में बिल्कुल साफ नहीं नजर आये।

इसका खयाल रखना चाहिये कि कीप का सारा पानी आँत में न चला जाये, अन्यथा साइफन काम नहीं करेगा, पानी को वापस कीप में लाना कठिन होगा। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि आँत में हवा न चली जाये। जब पानी तीव्रता से प्रविष्ट कराया जाता है, तो पानी का भँवर बनने लगता है, जिसके साथ हवा आँत में प्रविष्ट हो जाती है। इससे बचने के लिये कीप को थोड़ा तिरछा रखा जा सकता है। जिस क्षण आँत से सारा पानी निकल आये, एनेमा का काम बंद कर देना चाहिये। धोवक एनेमा और साइफन एनेमा दोनों के लिये पानी को कमरे के तापक्रम पर होना चाहिये।

गरमाने की क्रियाएं या तो सार्वदैहिक होती हैं, या स्थानिक (शरीर के सीमित स्थल को गरमाने के लिये)। अंतिम का अधिक विस्तृत उपयोग है और वे गर्म पुल्टिसों या गर्म पानी की थैलियों से संपन्न होती हैं।

गरम पुल्टिस या सिंकाई से रक्त का बहाव शुरू हो जाता है; इससे विभिन्न शोथी प्रक्रियाओं के अपचोषण में सहायता मिलती है। घाव, निस्त्वचन अथवा पूयिक शोथ

(जैसे फुंसी) से क्षत चर्म-क्षेत्र पर गरम पुल्टिस नहीं रखनी चाहिये।

गरम पुल्टिस (गरमाहट देने वाली पुल्टिस बनाने) की रीति निम्न है: कपड़े के टुकड़े को कई तहों में मोड़ कर उसे ठंडे (10-15°C) पानी में तर करते है, फिर उसे निचोड़ कर त्वचा पर फैला देते हैं। इसके ऊपर मोमी कागज या ग्रायल क्लौथ बिछाते हैं, जिसकी परिमाप कपड़े से कुछ ग्रधक होती है। मोमी कागज पर रूई की मोटी परत बिछा कर उसे स्थिर रखने के लिये ढीली-ढाली पट्टी बांध देते हैं, ताकि रक्त-संचार में बाधा न पड़े।

पुल्टिस 6-8 घंटे तक रखी जाती है। उसे हटाने के बाद त्वचा तेजी से ठंडी न हो, इसके लिये उस स्थल पर सूखी गजी की पट्टी बांध दी जाती है। कपड़े को 50 प्रतिशत सांद्र स्पीरिट घोल से भी तर किया जा सकता है, जिससे गरमाहट भी ग्रच्छी होती है ग्रौर त्वचा का मसृणन (सूजना ग्रौर ढीला होना) भी नहीं होता।

गर्म पानी की थैली (रबड़ की) या बोतल से शुष्क ताप प्राप्त होता है; इसका उपयोग स्थानिक गर्माहट के लिये भी होता है ग्रौर सार्वदैहिक भी। रबड़ की थैली में किसी भी तापक्रम तक गर्म पानी दो-तिहाई भाग भर देते हैं, फिर थैली को दबा कर हवा निकाल देते हैं ग्रौर ढक्कन कस कर घुमा के बंद कर देते हैं। थैली को उलट कर जाँच लेते हैं कि पानी रिस तो नहीं रहा है। ढक्कन को सुखा कर थैली को तौलिये या कंबल से लपेट कर (ताकि बदन जले नहीं) उसे शरीर के ग्रावश्यक क्षेत्र

पर रखते हैं। एक ही जगह बहुत देर तक थैली रखने मे भी त्वचा जल सकती है। बेहोश रोगी को झुलसन आसानी से हो सकती है; यदि त्वचा की संवेदिता शोफ के कारण कम हो जाती है या नर्व क्षत होते है, तो इस हालत में भी झुलसन का खतरा रहता है। गर्म पानी की थैली कई घंटों तक रखी जा सकती है, पर यह याद रखनी चाहिये कि इससे रोगी का पूरा शरीर भी गर्म होता रहता है।

शीतलकारी क्रियाएं. शीतलकरण का उपयोग स्थानीय रूप से उदरस्थ अंगों के शोथी रोगों अथवा हथ-पैर की शिराओं के रोगों में और सार्वदैहिक परितापन, मस्तिष्क-शोफ तथा अन्य अवस्थाओं में होता है। शीत से शोथ, ऊतकों का शोफ और दर्द कम होता है। रबड़ की थैली में बर्फ या ठंडा पानी भर कर उसका उपयोग शीतलकरण में होता है। थैली से हवा वैसे ही निकालते हैं, जैसे गर्म पानी की थैली से (थैलियां एक ही होती हैं)। ढक्कन कस कर बंद कर दिया जाता है; त्वचा को अत्यधिक ठंडा होने से बचाने के लिये थैली को तौलिये से लपेट देते हैं।

बर्फ की थैली का कई दिनों तक प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन यह याद रखना चाहिये कि थैली त्वचा पर लगातार न पड़ी रहे। हर 30 मिनट के बाद 10-15 मिनट के लिये थैली को हटा लेना चाहिये। थैली की जगह बदल-बदल कर रखने से एक ही स्थल के अतिशीतन का निरोध हो सकता है।

जठर-प्रक्षालन. रोगी को बैठा कर उसका जठर-प्रक्षालन करना सरल होता है (चित्र 66), पर उसे लिटा कर भी किया जा सकता है।

भारतीय रबड़ की बनी विशेष जठर-नली को गीला कर के रोगी के मुँह में प्रविष्ट करा दिया जाता है। रोगी से निगलने जैसी गति करने को कहते हैं; जब वह ऐसा करता है; उस समय नली को आगे बढ़ा कर पहले ग्रासनली में पहुँचाते हैं, फिर जठर में। चूँकि जठर-नली पर सेंटीमीटर की दूरियां अंकित रहती हैं, इसलिये शरीर में उसकी स्थिति ठीक-ठीक निर्धारित की जा सकती है। यदि जठर में कोई तरल पदार्थ होगा, तो वह इस नली के सहारे निकल आयेगा। जठर-नली के बाहरी सिरे पर एक कीप जुड़ा होता है, जिसमें जठर के प्रक्षालन के लिये पानी भरा जाता है। प्रक्षालन की प्रक्रिया कई बार दुहरायी जाती है। यदि विषाक्रांति है, तो पानी में तदनुरूप प्रतिविष या सक्रियकृत कार्बन मिलाया जाता है।

जठर-नली को तभी बाहर निकाला जाता है, जब जठर का सारा तरल द्रव्य निकाला जा चुका होता है।

<u>पेय पदार्थ देना.</u> जब रोगी किसी खास स्थिति में (विशेषकर लेटी स्थिति में) रहने को बाध्य होता है, तो उसे कुछ पिलाना कोई सरल काम नहीं होता। यह काम केटली या किसी अन्य विशेष बरतन या उपकरण से अधिक सुविधाजनक होता है। बरतन में एक-तिहाई भाग द्रव भर देते हैं और रोगी का सर सावधानी के साथ बायें हाथ से थोड़ा सा उठाते हैं और मुँह में बरतन
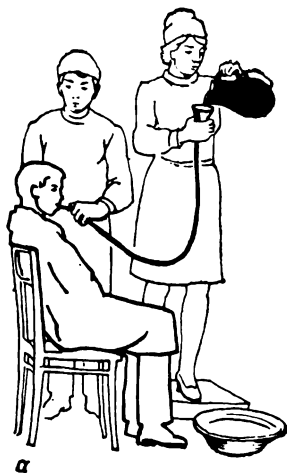
चित्र 66. जठर-प्रक्षालण। (a) जठर में जल प्रविष्ट कराना; (b) जठर से जल निकालना।

की टोंटी प्रविष्ट कराते हैं। द्रव मुँह में ढालना नहीं चाहिये ; रोगी को खुद उसे नन्ही मात्राओं में चूसना चाहिये, ताकि द्रव श्वास-नली में न चला जाये। बेहोश रोगी को बेहतर है कि कुछ पिलाया ही न जाये। यदि केटली न हो, तो रबड़ की किसी नली का उपयोग किया जा सकता है ; इसका एक सिरा रोगी के मुँह में और दूसरा द्रव में घुसा देते हैं। रोगी खुद चूस कर पीता है। यदि नली लचकदार होती है (जैसे रबड़ या प्लास्टिक की), तो अच्छा रहता है।

शौचनी (बेड-पैन) का उपयोग. लेटे रहने को बाध्य रोगी को शौच कराने के लिये विशेष बरतनों का उपयोग होता है ; ये धातु, चीनी मिट्टी (पोर्सेलेन) अथवा रबड़ के बने होते हैं। इन्हें शौचेंद्रियों के नीचे सावधनी से रखा जाता है। रोगी की त्रिकास्थि के नीचे सावधानी से बायां हाथ घुसा कर सावधानी से थोड़ा ऊपर उठाते हैं और रोगी के नीचे दायें हाथ से शौचनी घुसाते हैं। शौच के बाद सफाई का काम करते हैं—मूलाधार-क्षेत्र पर हल्का गर्म पानी ढालते हैं और साथ-साथ रूई के टुकड़े से शौचेंद्रिय को पोंछते भी जाते है (उसके गिर्द की त्वचा को भी)। शौचनी हटा लेते हैं और मूलाधार-क्षेत्र सूखे कपड़े अथवा रूई से पोंछते हैं।

आक्सीजन के तकिये से आक्सीजन देने की तकनीक. श्वसन की अपूर्णता में रोगी को अक्सर आक्सीजन के तकिये से साँस दिलाते हैं। 20 लीटर आयतन वाले तकिये में अक्सर आक्सीजन और कार्बन डायक्साइड का मिश्रण भरा

होता है। तकिये में एक नली लगी होती है, जिसके छेद का ग्राकार (ग्रौर इसीलिये उससे निकलने वाली ग्राक्सीजन की मात्रा भी) नियंत्रित करने के लिये नल लगा होता है। नल की टोंटी पर गजी की दो तह लगा कर उसे मुँह के पास लाते हैं ग्रौर नल खोलते हैं। ग्राक्सीजन दाब के ग्रधीन निकलती है, ग्रतः साँस लेने पर वह सरलता से फेफड़ों में पहुँच जाती है। ग्राक्सीजन देने वाले को रोगी की साँस पर ध्यान देना चाहिये ग्रौर सिर्फ साँस लेते वक्त नल खोलना चाहिये। काम के ग्रंत में ग्राक्सीजन का दाब तकिये को मोड़ कर ग्रथवा उसे दबा कर बढ़ाया जा सकता है। ग्रक्सर एक तकिये से 5-7 मिनट तक काम चलता है। नाक में नली प्रविष्ट करा के ग्राक्सीजन ग्रधिक मितव्ययता से दी जा सकती है।

परिशिष्ट 1

सामान्य विषों से आक्रांति के उपचार

नीचे रेखांकित अक्षरों में सामान्य विषों के नाम दिये गये हैं और उनके साथ साधारण अक्षरों में उनसे आक्रांति के उपचार बताये गये हैं।

अकासिया पीली, नम्रा की झाड़ी. सक्रियकृत कार्बन से मिश्रित जल द्वारा जठर का प्रक्षालण। लावणिक विरेचक (दस्तावर)। विश्राम। शरीर को गर्म रखना।

अनीलीन (अनीलीन रंजक, नाइट्रोबेंजेन, टोलुइडीन). सांस रहने पर: ताजी हवा, आक्सीजन का आश्वास। साँस रुकने पर: कृत्रिम श्वसन। आंतर विषाक्रांति में (खा लेने पर): सक्रियकृत कार्बन मिले जल से जठर का प्रक्षालण, इसके बाद लावणिक विरेचक (30 ग्राम) तथा वैजेलीन तैल 150 मिलिलीटर का आधान। वमनकारी (ऐपोमोर्फेन) देना। दूध, तेल तथा स्पीरिट वर्जित हैं।

अमोनियम हाइड्रोक्साइड. साइट्रिक या एसेटिक अम्ल से मिश्रित प्रचुर जल से जठरप्रक्षालण। मुखमार्ग से: इनमें मे किसी भी अम्ल का 1 प्रतिशतीय (अर्थात 1 प्रतिशत सांद्र) घोल।

आयडीन (आयोडीन), ल्यूगोल का घोल, आयोडोफोर्म. आंतर विषाक्रांति में : सोडियम थायोसल्फेट के 0.5 प्रतिशत सांद्र घोल से जठर-प्रक्षालण या, पीने के लिये – इसी यौगिक का 5 प्रतिशत सांद्र घोल, स्टार्च का पतला घोल, दूध, श्लेष्मल काढ़ा, 1-2 गिलास पानी या कार्बन के जलीय निलंबन में 20 ग्राम मैग्नेशिया का घोल; क्षारीय खनिज जल। गैसीय विषाक्रांति में (श्वास द्वारा शरीर में जाने पर): स्वच्छ हवा, सोडियम हाइड्रोकार्बन के 2 प्रतिशत सांद्र घोल अथवा सोडियम सल्फेट के घोल में आश्वास (सांस लेना)।

एट्रोपीन (बेल्लोडोना, हेनबेन पर्याय खुरासानी अजवायन, धतूरा पर्याय थौर्न एप्पुल). सक्रियकृत कार्बन से मिश्रित जल या पोटाशियम परमैंगनेट के घोल (1:1000) से जठर-प्रक्षलण; फिर एक उदर-नली की सहायता से लावणिक विरेचन का आधान, बिस्तर में विश्राम, सर पर शीतलाई। कमजोरी होने पर: काफेइन की टिकियां। श्वसन में गड़बड़ी होने पर: कृत्रिम श्वसन, आक्सीजन में आश्वास (आक्सीजन देना)।

आर्गेनोफोस्फोरस यौगिक, अर्थात फोस्फोरस के (कार्बनिक) यौगिक (तेत्रा-एथिल-मोनो-थिओपीरो-फोस्फात, थिओफोस, फोस्फोनिउम, त्रिख्लोरोफोन, मालाथिओन, कीटनाशक, त्रिख्लोरमेथाफोस). (इन यौगिकों के नाम में थिओ, पीरो, फोस्फात, ख्लोर की जगह क्रमशः थायो, पाइरो, फोस्फेट, क्लोर अधिक प्रचलित हैं – अनु.) चर्म से संपर्क होने पर: 10 प्रतिशत अमोनियम हाइड्रो-

क्साइड या 5 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट के घोल से धोना। आंतर विषाक्रांति में: कार्बन के जलीय निलंबन और 2 प्रतिशत सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट का घोल विपुल मात्रा में पीना। लावणिक विरेचक। साँस की गड़बड़ी होने पर: आक्सीजन देना, कृत्रिम श्वसन कराना।

कोकेन, डीकेन, प्रोकेन. (अंग्रेजी उच्चारण-केन की जगह लातीनी उच्चारण-काईन से शब्द की व्युत्पत्ति अधिक स्पष्ट प्रतीत होती है – अनु.) सक्रियकृत कार्बन या 0.1 प्रतिशत पोटाशियम परमैंगनेट का घोल मिला कर पानी से जठर का प्रक्षालण; मुखमार्ग से: नित्रोग्लीसेरिन की 2-3 बूंद, गर्म कौफी, शराब। शरीर गर्म करना। आक्सीजन का आश्वास। श्वसन की गड़बड़ी होने और हृदय रुकने पर: हृदय की बाह्य मालिश।

क्लोरीन (ख्लोरीन), क्लोरीन जल, लाइम क्लोरीन, हाइड्रोजन क्लोराइड, परक्लोरिक अम्ल. इनमें साँस लेने पर विषाक्रांतिः विषालु वातावरण से शीघ्र दूर करना, स्वच्छ (ताजी) हवा, आक्सीजन में तथा अमोनियम हाइड्रोक्साइड मिश्रित गर्म जल की वाष्प में साँस लेना। शरीर गर्म करना। मुखमार्ग से (आंतर) विषाक्रांति में: पोटाशियम परमैंगनेट के घोल में सक्रियकृत कार्बन, या 1-3 प्रतिशत हाइड्रोजन पेरोक्साइड, या 5 प्रतिशत सोडियम थायोसल्फेट का घोल मिला कर जठर को शीघ्र प्रक्षालण। आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वसन कराना, आक्सीजन देना।

चूना अनबुझा (कैल्सियम आक्साइड). एसेटिक अम्ल

मिलाकर पानी से जठर प्रक्षालण। मुखमार्ग से: साइट्रिक या एसेटिक अम्ल का 1 प्रतिशत सांद्र घोल, दूध, अंडे की सफेदी।

डीजीटालिस, आडोनिस कोनवालारिआ, आडोनीजीड. सक्रियकृत कार्बन मिलाकर पानी से जठर-प्रक्षालण, शय्या-विश्राम, आक्सीजन में आश्वास, लावणिक विरेचक। मुखमार्ग से एट्रोपीन सल्फेट के 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल की 6-8 बूंद। वमनकारी प्रसाधन प्रतिसंकेतित हैं।

पारा और इसके लवण, पारद (मर्करिक) क्लोराइड, कैलोमेल (रसकपूर). एसेटिक तथा अन्य अम्लीय पेय प्रतिसंकेतित हैं। शीघ्र मुखमार्ग से धातुई प्रतिविष देना। उसी प्रतिविष के जलीय घोल से जठर-प्रक्षालण। आंतर रूप से: सक्रियकृत कार्बन, मैग्नेशिया, दूध, अंडे की सफेदी, श्लेष्मल काढ़ा। हाइड्रोजन पेरोक्साइड या पोटाशियम परमैंगनेट के घोल से हर घंटे कुल्ला करना। शरीर गर्म करना, गर्म पानी के टब में स्नान।

मेथिल अल्कोहल (मेथानोल). विपुल मात्रा में क्षारीय जल, सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट का घोल पीना, इन्हीं घोलों मे जठर का प्रक्षालण। लावणिक विरेचक (दस्तावर)। अंदर: 30 प्रतिशत एथिल अल्कोहल का घोल – शुरू में 100 मिलिलीटर, फिर हर दो घंटे पर 50 मिलिलीटर।

मोर्फीन, कोडेइन, डिअोनीन, अफीम, अम्नोपोन. सक्रियकृत कार्बन या पोटाशियम परमैंगनेट के 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल से बारंबार जठर-प्रक्षालण; लावणिक विरेचक। आक्सीजन में साँस लेना। अंदर (मुखमार्ग से):

एट्रोपीन सल्फेट के घोल की 6-8 बूंद। साँस में गड़बड़ी होने पर: लंबे समय तक कृत्रिम श्वसन। विश्राम; सर पर बर्फ। वमनकारी दवाएं प्रतिसंकेकित हैं।

बेंजेन (बेंजोल), बेंजीन, किरासन, एसेटीलेन. इनके वाष्प से विषाक्रांत होने पर: स्वच्छ हवा, ग्राक्सीजन में साँस, कृत्रिम श्वसन, शरीर गर्म करना! अंदर: काफेइन, ऐस्कार्बिक अम्ल (विटामिन सी)। मुखमार्ग से विषाक्रांति होने पर: उपरोक्त उपचार के अतिरिक्त सक्रियकृत कार्बन के साथ पानी से जठर-प्रक्षालण। विरेचक: अंडी का तेल। पेय: काली कौफी, गर्म दूध।

बोरिक अम्ल. सक्रियकृत कार्बन के साथ पानी से जठर-प्रक्षालण। मुखमार्ग से: एक गिलास पानी में 20 ग्राम जलाया हुआ मैग्नेशिया; चूना-पानी (लाइमवाटर) – 1 बड़ा चम्मच हर 5-10 मिनट पर; दूध; लावणिक विरेचक।

संखिया (आर्सेनिक) और इसके यौगिक. सक्रियकृत कार्बन या जलाये हुए मैगनेशिया का घोल (20 ग्राम प्रति लीटर पानी) या संखिया के प्रतिविष का घोल (2-4 लीटर पानी में 100 मिलिलीटर) पानी में मिला कर जठर का विपुल प्रक्षालण। अंदर: बारंबार हर 5 मिनट पर एक बड़ा चम्मच संखिया-प्रतिविष या धातुई प्रतिविष, मैगनेशिया। लावणिक विरेचक, दूध, तेल। शरीर को गर्म करना, पेट पर गर्म पानी की बोतल।

सियानोजन-यौगिक (पोटाशियम सिआनामीद, सोडियम

सिम्रानामीद, हाइड्रोजन सिम्रानीद). दे. हाइड्रोसिम्रानिक अम्ल।

सीसा (लेड), लेड डायक्साइड, लेड एसेटेट. अंदर: वमनकारी प्रसाधन (एपोमोर्फीन) और सोडियम या मैग्नेशियम सल्फेट का घोल, धातुई प्रतिविष। सोडियम सल्फेट के घोल, कार्बन के जलीय निलंबन या धातुई प्रतिविष के घोल से जठर-प्रक्षालण; लावणिक विरेचक। उदरशूल (कौलिकी पीड़ा) में: एट्रोपीन, नोश्पानी हाइड्रोक्लोराइड (द्रोटावेरीन), गर्म पानी के टब में स्नान।

स्ट्रिक्नीन (नक्स वोमिका अर्थात् वमनकारी बादाम, स्ट्रिक्नोस की विभिन्न जातिओं के बीज). तुरंत कार्बन के जलीय निलंबन और पोटाशियम परमैंगनेट के 0.1 प्रतिशत सांद्र घोल से जठरप्रक्षालण। वमन अवश्य प्रेरित कराना चाहिये। अंदर: सक्रियकृत कार्बन, लावणिक विरेचक। विश्राम।

हाइड्रोसिम्रानिक अम्ल (कड़वा बादाम, चेरी का लूरेल पानी, पोटाशियम सायेनाइड, सायेनिक गैस). श्वसन से विषाक्रांति होने पर: रोगी को जहरीले वातावरण से निकालना। स्वच्छ हवा, एमिल नाइट्रेट या आक्सीजन में साँस लेना। आंतर विषाक्रांति में: पोटेशियम परमैंगनेट के घोल और सक्रियकृत कार्बन, या 1-3 प्रतिशत हाइड्रोजन पेरोक्साइड के घोल, या 5 प्रतिशत सोडियम थायोसल्फेट के घोल से जठर-प्रक्षालण। आवश्यकता तड़ने पर कृत्रिम श्वसन, आक्सीजन से आश्वास।

परिशिष्ट 2

तीव्र विषाक्रांति की विशिष्ट (प्रतिविष-) चिकित्सा

रेखांकित अक्षरों में विषों के नाम दिये गये हैं और उनके साथ सामान्य अक्षरों में – उनके प्रतिविष। नामों की वर्तनी कहीं-कहीं लातीनी उच्चारण के अनुकूल हैं।

अनीलीन, पोटाशियम परमैंगनेट – नीला मेथीलेन (1 प्रतिशत सांद्र), ऐस्कोर्बिक अम्ल (5 प्रतिशत सांद्र घोल)।

अम्ल – सोडियम हाइड्रोकार्बोनेट (4 प्रतिशतीय घोल, अर्थात् 4 प्रतिशत सांद्र घोल)।

ईजोनिआजिड (आइसोनिकोटिनिक अम्ल के हाइड्रासाइड) फ्तीवाजिड – विटामिन बी-छ: (5 प्रतिशतीय घोल)।

एट्रोपीन – पीलोकार्पीन (1 प्रतिशतीय घोल), प्रोजेरीन (नेओस्टिगमीन मेथिलसुल्फात) (0.05 प्रतिशतीय घोल)।

ओर्गानोफोस्फोरस (मोर्फीन, प्रोमेडोल, कोडेइन आदि) – एट्रोपीन सुल्फात (सल्फेट) (0.1 प्रतिशतीय घोल) नालोर्फीन हिद्रोख्लोरीद (हाइड्रोक्लोराइड) (0.5 प्रतिशतीय घोल)।

ओर्गानोफोस्फोरस यौगिक – खोलीनेस्टेराज-सक्रियकारी द्रव्य : डिपीरोक्सिम (त्रिमेदोक्सीम ब्रोमीद, TMB 4) (15 प्रतिशतीय घोल का 1 मिलिलीटर), इजोनित्रोजिन (40 प्रतिशतीय घोल का 3 मिलिलीटर), एट्रोपीन (0.1 प्रतिशतीय घोल)।

कार्बन मोनोक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, कार्बन डाइसल्फाइड – आक्सीजन में साँस लेना।

दवाओं (क्षारवत, निद्रापक) के अविशिष्ट शोषक, भारी धातुओं के यौगिक, आदि – सक्रियकृत कार्बन (कार्बोलेन)।

धातु, भारी (पारा, संखिया, सीसा, तांबा) – ऊनीथोल (BAL, डिमेर्काप्रोलुम) (5 प्रतिशतीय घोल), टेटासिन केल्सियम (सोडियम कैल्सियम एडेटेट) (10 प्रतिशतीय घोल)।

पाखीकार्पीन – प्रोजेरीन (0.05 प्रतिशतीय घोल), ATP (1 प्रतिशतीय घोल), विटामिन बी-एक (5 प्रतिशतीय घोल)।

प्रतिस्कंदक : हेपारिन कादि – प्रोटामीन सुल्फात (1 प्रतिशतीय घोल), विटामिन-के (1 प्रतिशतीय घोल)।

फोर्मालिन – अमोनियम क्लोराइड (3 प्रतिशतीय घोल) या अमोनियम कार्बोनेट (3 प्रतिशतीय घोल)।

बार्बीटूरेट – बेमेग्रीड (0.5 प्रतिशतीय घोल)।

बेरियम और इसके लवण – मैग्नेशियम सल्फेट (30 प्रतिशतीय घोल की 100 मिलिलीटर मात्रा)।

मेथिल अल्कोहल (मेथानोल), एथीलेन ग्लीकोल – एथिल अल्कोहल: 30 प्रतिशतीय घोल मुखमार्ग से; 5 प्रतिशतीय घोल अंतर्शिरीय मार्ग से।

सर्पदंश – विशिष्ट प्रति-सर्पविष।

सिल्वर नाइट्रेट – सोडियम क्लोराइड (10 प्रतिशतीय घोल)

हाइड्रोजन आर्सेनाइड (आर्साइन) – मेर्काप्तीद (40 प्रतिशतीय घोल)।

हाइड्रोसिआनिक अम्ल (प्रूसिक अम्ल) – सोडियम नाइट्राइट (1 प्रतिशतीय घोल), सोडियम थायोसल्फेट (30 प्रतिशतीय घोल), ख्रोमोस्मोन (25 प्रतिशतीय ग्लूकोज-घोल में 1 प्रतिशत मेथीलेन नीला का घोल)।

हृद ग्लूकोजीड – टेटासिन कैल्सियम (10 प्रतिशतीय घोल), पोटाशियम क्लोराइड (0.5 प्रतिशतीय घोल) एट्रोपीन सल्फेट (0.1 प्रतिशतीय घोल)।

परिशिष्ठ 3

आत्मपरीक्षण के लिये प्रश्न

नीचे काल्पनिक परिस्थितियां दी गयी है, जिनमें प्राथमिक उपचार की प्रकृति और सार निर्धारित करना है। संकेत : दे. – देखें ; अ. – अध्याय ; प्र. – प्रकरण।

(1) शीशा गिरने से बाँह की अग्र सतह पर कटने का घाव बन गया है। घाव से शिरीय रक्त की धार निकल रही है। रक्तस्राव रोकने के लिये कोई विशेष प्रयुक्ति उपलब्ध नहीं है। निष्कीटित परिधान-सामग्री भी नहीं है। उपचारकर्त्ता के पास निम्न वस्तुएं हैं : रूमाल, एथाक्रीडीन लैक्टेट (रीवानोल) का घोल, बिजली की इस्तरी, चूल्हे पर खौलती केटली।

प्राथमिक उपचार के कार्यों का क्रम क्या होगा?

उत्तर दे. अ. 1, प्र. : परिधान-सामग्री और उसका निष्कीटन ; अ. 2, प्र : हाथ-पैर पर पट्टियां।

(2) खौलता द्रव गिरने से जांघ और पिंडली पर द्वितीय-तृतीय कोटि की झुलसन उत्पन्न हुई है। उपचारकर्त्ता के पास पानी व निष्कीटित परिधान-सामग्री नहीं है, हाथ

गंदे हैं। उपलब्ध हैं: सेरीजेल की शीशी, पोटाशियम परमैंगनेट के घोल की शीशी, रूमाल।

प्राथमिक उपचार का क्रम बतायें।

उत्तर दे. अ. 1, प्र.: रसायनिक प्रतिसूपक द्रव्य; हाथों का संसाधन और दस्तानों का निष्पैंठन; अ. 2 (हाथ-पैर पर पट्टियां); अ. 3 (निश्चलकरण); अ. 10, प्र.: झुलसन।

(3) कुंद वस्तु से चोट के कारण नाक से काफी खून बह रहा है। उपलब्ध है: रूई और कपड़े की पट्टी (लंबाई 50 सेंटीमीटर, चौड़ाई 5 सेंटीमीटर)।

प्राथमिक उपचार का क्रम क्या होगा?

उत्तर दे. अध्याय 7, प्र: बाह्य एवं आंतर रक्तस्राव की चंद स्थितियों में प्राथमिक उपचार; अ. 2 (चौपुच्छी पट्टियां)।

(4) युवक की छाती में छूरे का घाव लगा है—दायीं हँसुली के नीचे 3×1.5 सेंटीमीटर के आकार का। घाव से फेनिल रक्त निकल रहा है। उपचारकर्त्ता के पास निम्न वस्तुएं हैं: टिंचर आयडीन की शीशी, अनिष्कीटित सेलोफेन की थैली, अनिष्कीटित पट्टी।

प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 2 (वक्ष पर पट्टी); अ. 8, प्र.: सर, वक्ष और उदर के घायल होने पर प्राथमिक उपचार की विशेषताएं।

(5) चाकू से घाव के कारण घुटने के पीछे की धमनी

मे तीव्र रक्तस्राव हो रहा है। ग्रपने वस्त्रों के ग्रतिरक्त ग्रौर कोई राछ या परिधान-सामग्री नहीं है।

प्राथमिक उपचार का क्रम क्या होगा?

उत्तर दे. ग्र. 7, 3 (घायल का परिवहन)।

(6) सड़क पर ग्रापको एक ग्रादमी पड़ा दिखता है, जिसमें जीवन के लक्षण नहीं हैं: होश नहीं है, वक्ष की गति (उतार-चढ़ाव) नहीं दिख रही है, नाड़ी नहीं मिल रही है।

कैसे निर्धारित किया जाये कि ग्रादमी जीवित है या मृत?

उत्तर दे. ग्र. 3।

(7) ग्रापके ग्रागे चल रहा व्यक्ति एक चीख के साथ गिर जाता है; ग्रापके निकट पहुँचते-पहुँचते उसके हाथ-पैर के वितानी झटके शांत हो जाते हैं। निरीक्षण से उसके हाथ में बिजली के खंभे से लटकते तार का नंगा सिरा दिखता है।

प्राथमिक ग्रायुरी सहायता में ग्रापके कार्यों का क्रम क्या होगा?

उत्तर दे. ग्र. 11, प्र.: विद्युघात ग्रौर तड़िदाघात; ग्र. 3; ग्र. 5, प्र. : साँस रुकने पर संजीवन कार्य।

(8) डूबते ग्रादमी को निकालने पर उसे मृतप्राय ग्रवस्था में पाया गया। नाड़ी ग्रौर साँस ग्रनुपस्थित हैं, हृदय की धड़कन सुनाई नहीं दे रही है।

प्राथमिक उपचार का कार्यक्रम निर्धारित करें।

उत्तर दे. ग्र. 11, प्र: डूबना, घुटन, मिट्टी से दब-

ना ; अ. 5, प्र : रक्त-संचार रुकने पर संजीवन कार्य।

(9) पहाड़ी से नीचे की ओर स्की करता हुआ आदमी गिर जाता है ; पिंडली के पास तीव्र पीड़ा होती है, स्थिति बदलने पर पीड़ा बढ़ जाती है। उठने में असमर्थ है, गोड़ अनैसर्गिक रूप से बाहर की ओर मुड़ा हुआ है। त्वचा अक्षत है।

क्षति की प्रकृति कैसी है और प्राथमिक उपचार कैसा होगा ?

उत्तर दे. अ. 9, प्र. : विभंजन का प्राथमिक उपचार।

(10) कार दुर्घटना में दो व्यक्ति घायल होते हैं। एक के वस्त्र रक्त-रंजित हैं, ललाट पर कटने का 3 सेंटीमीटर लंबा घाव है, जिससे रक्तस्राव हो रहा है। आहत होश में लेकिन बेचैन है, साँस और नाड़ी सामान्य है। दूसरे व्यक्ति के शरीर में कोई क्षति नहीं दिख रही है, उसे सरदर्द और मतली की शिकायत है ; दुर्घटनापूर्व की परिस्थितियां उसे याद नहीं हैं।

क्या क्षतियां गंभीर हैं ? किस आहत का प्राथमिक उपचार पहले करना चाहिये और पहले किसे अस्पताल पहुँचाना चाहिये ?

उत्तर दे. अ. 9।

(11) आहत को कोई अज्ञात द्रव पीने के बाद मुंह में, उरोस्थि के पीछे और पेट में तीखा दर्द महसूस हुआ। निरीक्षण के समय वह बेचैन है और दर्द से छटपटा रहा है। उसे दुहरा कर रक्त-मिश्रित वमन होता है। होठों की श्लेष्मल झिल्लियों तथा जीभ पर और मुख-कोटर में

किसी चीज की परत और पीली-हरी खट्ठियां नजर आ रही हैं। साँस व्यवधानित है।

किस चीज से आगरण हुआ है? प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 11, प्रकरण: सांद्र अम्लों और क्षारों से आगरण।

(12) गर्मी और धूप के दिन तट पर विश्रामरत आदमी की तबियत सहसा खराब हो जाती है। सरदर्द, सर में चक्कर, हँफनी और कानों में शोर की अनुभूति होती है। निरीक्षण से पता चलता है: नाड़ी श्लथ है, 120 स्पंद प्रति मिनट उसकी गति है; साँस सतही और प्रति मिनट 40 बार है। शब्द अस्पष्ट हैं।

इस अवस्था का कारण क्या है?

उत्तर दे. अ. 11, प्र.: ऊष्माघात और सौरघात।

(13) आदमी को कान में अचानक छेदने की, दर्द और खड़खड़ाहट की अनुभूति होती है। निरीक्षण से श्रवण-मार्ग में एक कीड़ा नजर आता है।

प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 11, प्र.: आँख, कान, नाक, श्वास-मार्ग और जठरांत्र मार्ग में परज वस्तु।

(14) शौचालय में आहत को सर में चक्कर आया और इसके बाद बेहोशी हुई। निरीक्षण के समय रोगी विवर्ण था, उसे ठंडा पसीना आ रहा था, नाड़ी की गति 130 स्पंद प्रति मिनट थी, स्पंद-शक्ति क्षीण थी। शौचनी

में टार की तरह काले रंग का विपुल द्रव था, जिससे तेज दुर्गंध ग्रा रही थी।

बेहोशी ग्रौर गंभीर ग्रवस्था का कारण क्या था? प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. ग्र. 11, प्र.: उदरस्थ ग्रंगों के तीव्र रोग।

(15) ग्रापको बीमार बच्चे को देखने के लिये बुलाया जाता है। बच्चा बिस्तर में लेटा है। हल्के क्षोभ से सभी पेशियों में वितान प्रेक्षित होता है। खास ध्यान इस बात पर जाता है कि चेहरे की पेशियों में तीव्र ग्रपतान है, मुँह भी नहीं खोला जा रहा है। पैर में खट्ठी के नीचे जखम है।

बच्चे की गंभीर ग्रवस्था का कारण क्या है? प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. ग्र. 8 (धनुर्वात)।

(16) बिजली की रेलगाड़ी में ग्रचानक एक यात्री की तबियत खराब हो जाती है। उरोस्थि के पीछे प्रबल पीड़ा है, जो बायें हाथ ग्रौर गरदन में विकिरणित होती है; हवा की कमी, सर में चक्कर ग्रौर कमजोरी की ग्रनुभूति होती है। चेहरा विवर्ण ग्रौर भयभीत है; नाड़ी क्षीण है, उसकी गति 50 स्पंद प्रति मिनट है; साँस तेज है।

इस गंभीर ग्रवस्था का कारण क्या है? प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. ग्र. 11 में, प्र: हृत्पेशी का इन्फार्क्त।

(17) सड़क-दुर्घटना में एक ग्रादमी के पैर उलटी

गाड़ी के नीचे दब गये। दो घंटे तक उन्हें मुक्त नहीं किया जा सका।

पैरों को बोझ के नीचे से मुक्त करने के बाद प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 11 में।

(18) बच्चा एनाल्जिन की ढेर सारी टिकियां निगल गया।

प्राथमिक उपचार कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 11 में, प्र.: दवाओं और अल्कोहल से आगरण।

(19) आदमी तंग जूतों में सड़क पर लंबे समय तक रह गया, ज्यादा चला-फिरा भी नहीं। हवा का तापक्रम ऋण 10-15 डिग्री सेंटीग्रेड था। घर आने पर बुखार और कँपकँपी शुरू हो गयी, गोड़ों में काफी दर्द होने लगा। गोड़ों का रंग लाल-नीला था, वे शोफित थे और शोफ पिंडलियों की ओर फैल रहा था। गोड़ों की पिछली सतहों पर फोड़े थे, जिनमें श्वेत द्रव भरा था। उंगलियों की त्वचा संवेदना-शून्य है, गोड़ों को छूने पर तेज पीड़ा होती है।

क्षति की प्रकृति कैसी है? प्राथमिक उपचार कैसा होना चाहिये?

उत्तर दे. अ. 10 में, प्र.: तुषारण।

(20) सुरक्षा-नियमों का उल्लंघन करने से मजदूर को गोल आरी से प्रबाहु में चोट लग गयी। प्रबाहु की अग्र सतह के मध्य तिहाई भाग में खुला जखम होता है,

जिससे चमकदार लाल रंग का रक्त आवर्ती रूप से स्पंदमान धार के रूप में बहता है। आहत विवर्ण है, उसे चिपचिपा पसीना आ रहा है।

प्राथमिक उपचार की युक्तियों का क्रम किस बात से निर्धारित होता है? आहत को किस प्रकार का रक्तस्राव हो रहा है और उसे कैसे रोका जा सकता है? बाद में आप क्या करेंगे?

उत्तर दे. अ. 2, 6, 7 में; अ. 3 में (आहत का परिवहन; परिवहन के समय आहत की स्थिति)।

(21) संवातनहीन गैरेज में कार का मोटर ठीक करने वाला आदमी बेहोश पड़ा हुआ है। विवर्ण त्वचा की पृष्ठभूमि में चमकदार लाल धब्बे दिख रहे हैं, साँस थमी हुई है, नाड़ी निर्धारित नहीं हो रही है, पुतलियां विस्फारित हैं, हृदय की धड़कन विरले और बहुत क्षीण सुनायी देती है।

क्या हुआ है? आहत किस अवस्था में है? कौनसा उपाय फौरन शुरू करना चाहिये, प्राथमिक उपचार का क्रम कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 11 में, प्र: कार्बन मोनोक्साइड से आगरण; अ. 5 में, प्र.: साँस रुकने पर संजीवन-कार्य।

(22) पैरों में शिरा-विस्फारण से पीड़ित अधेड़ स्त्री की शिरा सहसा विस्फारण-स्थल पर फट गयी और पिंडली की पार्श्व सतह से ढेर सारा रक्त बहने लगा। घाव से गाढ़े रक्त की धार बह रही है। रक्तहानि बहुत अधिक है, क्योंकि आसपास काफी रक्त गिरा हुआ है। नाड़ी

की गति 100 स्पंद प्रति मिनट है, त्वचा विवर्ण है।

किस प्रकार का रक्तस्राव उत्पन्न हुआ है? उसे रोकने के क्या सिद्धांत हैं? प्राथमिक उपचार का क्रम क्या होगा?

उत्तर दे. अ. 7 में (तीव्र रक्ताल्पता), प्र.: रक्तस्राव के प्रकार; अ. 2 में (पट्टियों के मुख्य प्रकार)।

(23) आपके आगे चलता व्यक्ति सहसा गिर जाता है। उसके निकट जाकर आप देखते हैं कि वह हुकहुकी के साथ साँस ले रहा है, चेहरा नीला पड़ गया है, पुतलियां विस्फारित हैं, नाड़ी निर्धारित नहीं हो रही है, हृदय की धड़कन सुनायी नहीं दे रही है, अर्थात् रक्त-संचार रुकने के सभी लक्षण मौजूद हैं।

प्राथमिक उपचार कैसा होगा? उसका क्रम कैसा होगा? आहत को अस्पताल ले जाने के लिये उसका परिवहन कैसे करेंगे?

उत्तर दे. अ. 5 में, प्र: रक्त-संचार रुकने पर संजीवन कार्य।

(24) मोटी स्त्री फिसल कर नितंबों के बल गिरती है। चोट के समय कमर में बहुत तीखा दर्द शुरू हो गया जिससे वह किसी भी प्रकार की गति नहीं कर सकती। जल्द ही स्त्री ने महसूस किया कि पैर सुन्न हो रहे हैं। अपने शरीर की स्थिति में थोड़ा-सा भी परिवर्तन लाने के प्रयास से प्रबल पीड़ा होती है। तीक्ष्ण पीड़ा पीठ के परिस्पर्शन से भी होती है।

किस प्रकार की क्षति उत्पन्न हुई है? उससे क्या खतरा है? परिवहन के लिये अंग निश्चल करना जरूरी है या

नहीं? आहत का अस्पताल तक परिवहन कैसे किया जाये?

उत्तर दे. अ. 9 में, प्र.: विभंजन का प्राथमिक उपचार (रीढ़ का टूटना)।

(25) अधेड़ व्यक्ति ठोकर खा कर हाथ के बल गिर गया; कलाई में तेज पीड़ा शुरू हो गयी, जो उसमें किसी भी प्रकार की गति से और भी यंत्रणादायक हो जाती है। कलाई की संधि और रश्मिका की पर्याकृति बहुत विकृत हो गयी है।

किस प्रकार की क्षति उत्पन्न हुई है? प्राथमिक उपचार का मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिये?

उत्तर दे. अ. 9 में, प्र.: विभंजन का प्राथमिक उपचार।

(26) ट्रक खाली करते वक्त एक शहतीर लुढ़क कर एक आदमी को दबा दिया। उसे कूल्हे के क्षेत्र में तीव्र पीड़ा हो रही है, पैरों से वह कोई गति नहीं कर पा रहा है। आहत विवर्ण है, त्वचा पर ठंडा चिपचिपा पसीना छाया है, नाड़ी की गति तेज है, पर स्पंद क्षीण हैं।

चोट की प्रकृति क्या है? आहत की गंभीर अवस्था का कारण क्या है? प्राथमिक उपचार का क्रम कैसा होगा?

उत्तर दे. अ. 9 में, प्र.: विभंजन का प्राथमिक उपचार।

(27) धक्का के कारण मोटरसायकिल-सवार की दोनों टांगों (घुटनों और टखनों के बीच के भागों) को चोट लगी। टांग की हड्डियों की आकृति बदल गयी, उनमें

रोगलोचनी सुचलता भी है, जिससे तीव्रतम पीड़ा होती है; टंगास्थि का टूटा हुग्रा नुकीला सिरा बाहर निकल ग्राया है।

ग्राहत को किस प्रकार की क्षति हुई है? प्राथमिक उपचार का क्रम कैसा होगा? जखम के साथ क्या किया जाये? विशेष खपचियों की ग्रनुपस्थिति में पैरों को निश्चल कैसे किया जाये?

उत्तर दे. ग्र. 9 में, प्र.: विभंजन का प्राथमिक उपचार।

(28) ग्रादमी को मोटर का धक्का लग गया। चोट से वह गिरा ग्रौर उसका सर फूटपाथ से टकरा गया। दुर्घटना की उसे याद नहीं है, उसे सरदर्द, सर में चक्कर, मतली ग्रौर वमन की शिकायत है। पश्च कपाल पर कुचला-सा जखम है, श्रवण-मार्ग से रक्त बह रहा है। ग्रस्थि-भंग के स्पष्ट लक्षण नहीं हैं।

ग्राहत की ग्रवस्था गंभीर क्यों है ग्रौर उसे किस प्रकार का प्राथमिक उपचार देना चाहिये? इस तरह की क्षतियों में ग्राहत के परिवहन के नियम क्या हैं?

उत्तर दे. ग्र. 9 में (कपाल ग्रौर मस्तिष्क की क्षतियां)।

(29) पेड़ से गिरने पर बच्चे को वक्ष में किसी कठोर चीज से चोट लग गयी। वह दर्द से कराह रहा है, साँस सतही ग्रौर तेज है। खाँसने या शरीर की स्थिति बदलने में पीड़ा बहुत तेज हो जाती है। वक्ष-पंजर के परिस्पर्शन से भी पीड़ा होती है, चर्म के नीचे मचमच की ग्रावाज ग्राती है।

क्या क्षत हुआ है? क्या यह क्षति खतरनाक है? आहत की सहायता कैसे की जा सकती है?

उत्तर दे. अ. 8 में, प्र.: सर, वक्ष, उदर के घायल होने पर प्राथमिक उपचार की विशेषताएं; अ. 9 में, प्र.: विभंजन का प्राथमिक उपचार (पसलियों में विभंजन)।

(30) आपका पड़ोसी आपसे मदद मांग रहा है। कुछ घंटो से उसके पेट में दर्द हो रहा है, दुहरा कर वमन हुआ था, बुखार 37,5°C हो गया। दर्द कूल्हे के दायें क्षेत्र में हो रहा है। मल-विसर्जन नहीं हुआ था। पेट तना हुआ है और उसे छूने से पीड़ा होती है।

किस बीमारी का अनुमान लगाया जा सकता है? प्राथमिक उपचार कैसा होगा? रोगी को फौरन अस्पताल ले जाने की आवश्यकता है या नहीं?

उत्तर दे. अ. 11 में, प्र.: उदरस्थ अंगों के तीव्र रोग।

(31) हड़बड़ी में खाते समय आदमी अपना नकली दाँत निगल गया। उसकी स्वयं की अनुभूतियों के अनुसार दाँत ग्रासनली में फँसा है। उरोस्थि के पीछे दर्द हो रहा है, साँस लेने में कठिनाई नहीं होती, आवाज साफ है।

क्या यह संभव है कि परज वस्तु ग्रास नली में फँसी रह जाये? क्या फौरन अस्पताल जाना जरूरी है? प्राथमिक उपचार कैसा होना चाहिये?

उत्तर दे. अ. 9 में, प्र.: आँख, कान, नाक, श्वास-मार्ग और जठरांत्र-मार्ग में परज वस्तु।

(32) असावधानी के कारण बच्चे को छत्ते के निकट कई मधुमक्खियों ने विभिन्न स्थलों पर काट लिया।

प्राथमिक उपचार कैसा होना चाहिये? क्या बहुसंख्य दंश होने पर बच्चे को अस्पताल ले जाना जरूरी है?

उत्तर दे. अ. 11 में, प्र.: अलर्क जंतुओं और विषैले सर्पों, कीड़े-मकोड़ों का काटना।

(33) युवा स्त्री आपसे शिकायत करती है कि उसे तीव्र दुर्बलता, सर में चक्कर, मतली, पेट में हल्का दर्द है। स्त्री बहुत विवर्ण है, क्षीण नाड़ी की गति 120 स्पंद प्रति मिनट से भी अधिक है। पेट कुछ फूला हुआ है, परिस्पर्शन से सभी क्षेत्रों में पीड़ा होती है, पेट से हठात हाथ हटा लेने पर पीड़ा तेजी से बढ़ जाती है।

कौन-से रोग का अनुमान किया जा सकता है? क्या प्राथमिक उपचार और अस्पताल में भरती कराने के लिये फौरन परिवहन की आवश्यकता है?

उत्तर दे. अ. 11, प्र.: उदरस्थ अंगों के तीव्र रोग अ. 7 में, प्र.: बाह्य एवं आंतर रक्तस्राव की चंद स्थितियों में प्राथमिक उपचार।

(34) बस में खड़ा एक आदमी अचानक गिर गया; हाथ-पैर, गरदन और चेहरे की पेशियां अव्यवस्थित रूप से संकोचन करने लगीं। वितान के साथ सर एक ओर को तेजी से मुड़ जाता था, मुँह से फेनिल द्रव निकलने लगा। चेहरा नीला और फूला-फूला हो गया, साँस शोरयुक्त और तेज हो गयी। 2-3 मिनट बाद

वितान रूक गया, साँस सोये व्यक्ति जैसी समरूप हो गयी।

आदमी किस रोग से पीड़ित है? दौरा क्यों खतरनाक है? प्राथमिक उपचार कैसा हो?

उत्तर दे. अ. 11 में (अपस्मारी दौरा)।

(35) दवा की दूकान में एक आदमी अपनी पत्नी को प्रसव कराने में सहायता मांगने गया। प्रसव शुरू हो गया था, पानी निकल चुका था। दूकान से प्राथमिक उपचार की कौन-सी वस्तुएं साथ लेनी चाहिये थी? नवजात शिशु की देखभाल और नाड़े का संसाधन कैसे होता है? जच्चा-बच्चा को फिर प्रसूति-गृह भेजना आवश्यक है या नहीं?

उत्तर दे. अ. 11 में, प्र.: आकस्मिक प्रसव।

(36) बच्चा बोतल से कोई अज्ञात द्रव पी गया। मुँह और पेट में तेज दर्द होने लगा। होठों और मुख-कोटर की श्लेष्मल झिल्लियों पर एक महीन भुरभुरी पीली-हरी परत जम गयी। बार-बार रक्त-मिश्रित वमन होता है, साँस व्यवधानित है।

किस प्रकार के द्रव्य से बच्चे का आगरण हुआ है? प्राथमिक उपचार बतायें।

उत्तर दे. अ. 11 में, प्र.: सांद्र अम्लों और क्षारों से आगरण।

(37) लंबे समय से हृदय की त्रुटि के रोगी की अवस्था तेजी से बदतर हो गयी: हवा की कमी की अनुभति उत्पन्न हुई और बढ़ने लगी। हँफनी शुरू हो

गयी। साँस में खरखराहट ग्रा गयी, सफेद फेनिल कफ के साथ खाँसी होने लगी। त्वचा ग्रौर श्लेष्मल झिल्लियां नीली पड़ने लगीं। हृदय का कार्य व्यवधानित होने के लक्षण – रुकावट, लयहीन नाड़ी – प्रकट हुए।

किस तरह की क्लिष्टता उत्पन्न हुई है? प्राथमिक उपचार कैसा होना चाहिये? रोगी को किस स्थिति में रख कर ग्रस्पताल ले जाया जाये?

उत्तर दे. ग्र. 11 में, प्र.: क्लोम-शोफ।

(38) बच्चा बहुत उद्दीपित है, उसकी गतियां झटकेदार ग्रौर बेतरतीब हैं। त्वचा विवर्ण है, नाड़ी बहुत तेज है, पुतलियां विस्फारित हैं, रह-रह कर वमन होता है। ग्रन्य बच्चों से पूछने पर पता चला कि उसने कोई बेर खाये हैं।

किस चीज से ग्रागरण हुग्रा है? प्राथमिक उपचार कैसा होना चाहिये? डाक्टरी सहायता की ग्रावश्यकता है या नहीं?

उत्तर दे. ग्र. 11 में, प्र.: ग्रल्कोहल ग्रौर ग्रौषधियों से ग्रागरण; परिशिष्ट (खुरासानी ग्रजवायन)।

वृक्क (गुर्दा) 114 kidney
वृक्क-शूल 283 renal colic
वृक्कशोथ, गोणिका-283 pyelonephritis
वेदना-स्पंद 116 pain impulses
व्यष्टिक पैकेट 34 individual packet
व्युत्पाद 26 derivative
व्योम, अंतरा-ऊतकीय 166 interstitial space
व्रणज द्रव wound fluid
व्रणन 163 ulceration
शय्याव्रण 27 bedsore
शल्कन 228 peeling
शव-चित्तियां 90 cadaver spots
शव में अकड़न 91 rigor mortis
श्यान 46 viscous
शीतलकारी क्रियाएं 305
शिरा vein
—, अधोजत्रुक 149 subclavian
—; अपस्फारित 165 varicose veins
— -छिद्रन 150 venipuncture
— -विस्फारण varicose node
शिरीय स्तंभन 175 venous stasis
शृंगिका 90 cornea
शोण-ज्वर 179 scarlet fever
शोफ swelling; oedema
—, मस्तिष्क- 147 brain o.